व्यावहारिक हिन्दी

(Practical Hindi)

दिग्पाल सिंह

व्यवहारिक हिन्दी

व्यवहारिक हिन्दी
(Practical Hindi)

दिग्पाल सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5517-5

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिंदी की विशेषता है कि यह जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी भी जाती है। इस की वर्तनी में कोई भ्रम पैदा नहीं होता है, जबकि अंगरेजी की वर्तनी और उच्चारण में बहुत अंतर होता है। यह हिंदी की महानता है कि, कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिंदी अपना स्वरूप बदलती गई है, लेकिन हर हिंदुस्तानी के मुँह में हिंदी जरूर समाई हुई है, अपनी प्रांतीय और स्थानीय भाषा के समावेश से हिंदी में मिठास एवं अपनापन आता गया है। हर 12 किलोमीटर की दूरी पर बदलने वाली भाषाएँ भी हिंदी से सराबोर हैं।

आज के उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा बाजारवादी दृष्टिकोण के कारण भाषाएँ अपनी सीमाएँ लांघ रही हैं और एकदूसरे देश में समाने के लिए लालायित हैं। हाल में चीन ने भारत में अपना बाजार फैलाने के लिए हिंदी की उपयोगिता समझी और वह अपने देश में इस के लिए अपने नागरिकों को प्रेरित कर रहा है, लगभग यही स्थिति यूरोपीय व अफ्रीकी देशों की भी है।

उम्मीद की जानी चाहिए कि आने वाले समय में हिंदी और सरल एवं व्यावहारिक बनेगी और इस के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाएगा।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	जटिलता में कमी	5
	जैसी बोली वैसी लिखावट	6
	आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)	12
	हिन्दी भाषा के विविध रूप	17
	हिंदी भाषा अन्य भाषाओं का प्रभाव	25
2.	**भाषा के विभिन्न रूप**	**26**
	मुहावरे	27
	शब्द के भेद	36
3.	**हिन्दी : भाषिक स्वरूप**	**66**
	समान प्रतीत होने वाले शब्द	66
4.	**हिन्दी : प्राचीन इतिहास**	**99**
	आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत	100
	चारणी-साहित्य	107
	प्रकीर्णक साहित्य	107
	आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	108
	भक्ति कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास	117

कृष्णाश्रयी शाखा 123
कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ 124
ज्ञानाश्रयी मार्गी 128
प्रेमाश्रयी शाखा 128
संत काव्य धारा के प्रमुख कवि 129
कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि 132
हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल' 135
रीति काल में हिंदी साहित्य 137
समृद्धि और विलासिता का काल 139
भारतेंदु युग 143
5. हिन्दी के विविध रूप 155
लिपि 156
हिन्दी की बोलियाँ 158
हिन्दी और कम्प्यूटर 159
हिन्दी और जनसंचार 160
हिन्दी का वैश्विक प्रसार 161
6. हिन्दी : क्षेत्र एवं विकास 163
मैथिली भाषा 173
संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा 178
7. हिन्दी की उपभाषाएँ 188
उपभाषा की पहचान 188
मानक भाषा और उपभाषा का अंतर 189
पश्चिमी हिंदी 190
बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय 199
8. खड़ी बोली की उत्पत्ति एवं इतिहास 201
साहित्यिक सन्दर्भ 203
नामकरण 203
खड़ी बोली का इतिहास 206
9. राजस्थानी बोलियाँ 212
साहित्य 213
राजस्थानी की बोलियाँ 214

1

विषय बोध

भाषा का ज्ञान पूरा तभी माना जाता है जब उसे भाषा के व्याकरण पर विशेष पकड़ हो। सही में कोई भी लेख, कविता, निबंध या कोई भी अन्य रचना मनोरम तभी हो पाती है जब उसमें व्याकरण की त्रुटियाँ न हों। इन सबके बावजूद भी कई बार संदर्भानुसार वातावरण की बोली का भी प्रयोग करना जरूरी हो जाता है, जो कहानी, कविता या लेख को उसका उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है। जिससे कहानी प्रवाहमयी हो जाती है। वैसे कविता में व्याकरण का बंधन तो कम है, किंतु उसमें अलंकारों का महत्व बढ़ जाता है।

इन सबके बावजूद भी हिंदी में कई ऐसे व्यावहारिक पद समा गए हैं, जो अक्सर सुनने में आते हैं। कभी कभी लेखन में भी दीख पड़ते हैं। पर वे व्याकरण व सटीकता की दृष्टि में खरे नहीं उतरते।

उदाहरण के तौर पर बहुत ही प्रचलित वाकया लीजिए... रेलगाड़ी में सफर करते वक्त कोई सहयात्री पूछ ही लेता है – भाई साहब फलाँ स्टेशन कब आएगा ? पूछने वाला शख्स व जवाब देने वाला दोनों जानते हैं कि, सवाल व्याकरण की दृष्टि से व्यवहारिक सही नहीं है। लेकिन जवाब दिया जाता है कि, भाई जी फलाँ बजे के लगभग आएगा। रेल चल रही है, स्टेशन अपनी जगह पर है, किंतु सवाल ऐसे ही पूछा जाता है और जवाब भी ऐसे ही दिया जाता है। भले ही गलत हो किंतु अब यही रवैया नियम बन गया है। ऐसे ही पूछना है और ऐसे ही जवाब देना है।

यदि राह में कोई साथी थैले में कुछ लटकाए जाते मिल गया और आपने पूछ लिया कि यार कहाँ जा रहे हो .. संभवत: जवाब होगा–आटा पिसाने/पिसवाने जा रहा हूँ। आप भी वाकिफ हैं और आपका दोस्त भी, कि पिसाना आटा को नहीं गेहूँ को है फिर भी वह ऐसे ही जवाब देगा और आप ऐसे ही समझते जाएंगे। उस चक्की को जहाँ गेहूँ पीसा जाता है गेहूँ चक्की नहीं बल्कि आटा चक्की कहते हैं। सबको समझ ठीक आ जाता है। मेरी समझ से यह त्रुटिपूर्ण होते हुए भी इतना व्यवहारिक हो गया है कि, इसी तरह सभी सही अर्थ समझ जाते हैं। सौहार्द्र, ब्रह्मा, श्रृंगार (शृंगार), चिह्न (चिन्ह) कुछ ऐसे ही शब्द हैं जिनकी त्रुटिपूर्ण लिपि भी लोगों को सही समझ में आ जाती है।

प्र–ति के परिवर्तनशीलता के नियमातर्गत ही भाषा भी परिवर्तित होती रहती है।

इसी कारण भाषा ने प्राकृत से हिंदी खड़ी बोली तक का सफर तय किया। यह केवल हिंदी के साथ ही नहीं बल्कि विश्व की सभी भाषाओं के साथ हुआ है और होता भी है। इसी परिवर्तन के दौर में हिंदी के कई भ्रामक शब्द व तौर तरीके इसमें घर किए जा रहे हैं। यदि व्यावहारिकता में बह गए, तो ये ही कल रूढ़ शब्द बन कर साहित्य में समाएंगे। यही नियम है। इसकी गति को रोकना किसी के बस में नहीं होता. प्रिंट मीडिया इन शब्दों के रूप विशिष्ट पर जोर देकर सही पद के प्रयोग को बढ़ावा दे सकती है।

उदाहरण के तौर पर शब्द 'कापड़िया" यानी कपड़ेवाला. अक्सर यह कपाड़िया हुआ जाता है। कपड़ा से कापड़िया के बदले लोग कपाड़िया का उच्चारण शायद आसानी से कर लेते हैं। ऐसे ही एक नाम है डिंपल कपाड़िया।

एक शब्द है अभयारण्य–अरण्य जिसमें भय न हो। अक्सर वन्य जीवों को यह सुविधा प्रदान की जाती है कि, वे किसी वन विशेष में बिना किसी भय के विचरण कर सकें. हमारे साथी उच्चारण की गलतियों के कारण इसे अभ्यारण्य कहते व लिखते हैं। जो गलत है। उनके साथियों को चाहिए कि इसमें सुधार करें और उन्हें सही कहना लिखना सिखाएं. छोटी उम्र में तो चल जाता है, किंतु आगे बढ़कर इस तरह की गलतियाँ कष्टकारी हो सकती हैं।

हृषि कपूर शब्द बदलते बदलते ऋषिकपूर हो गया है और रिषि कपूर होने के काफी करीब है। ऋतु (मौसम) बदलकर रितु हो ही गया है। बहुत सारी लड़कियाँ अपना नाम रितु ही लिखती हैं या लिखना पसंद करती है, हो सकता है कि, इसका कारण ऋ लिखने की दुर्गमता ही हो। वो दिन दूर नहीं जब लोग

हृषि कपूर को रिशि कपूर भी लिखेंगे। व्यावहारिक तौर पर यह स्वीकार्य भी हो जाएगा।

शब्द बहुल व बाहुल्य की आपस में भिन्नता का ज्ञान न रखने वाले इन्हे आपस में बदलने में कोई हर्ज महसूस नहीं करते। बाहुल्य एक संज्ञा है और बहुतायत को दर्शाता है। जबकि बहुल एक विशेषण है और अधिकता को सूचित करता है।

वैसे ही फारसी कागज शब्द दस्तावेज के अर्थ में बहुवचन कागजात बन जाता है। जबकि व्यवहार में लोग कागजातों शब्द का प्रयोग करते हैं, जो गलत है। उत्तम शब्द के साथ उत्तमतर व उत्तमोत्तम शब्द चलते हैं, किंतु बहुत उत्तम व अति उत्तम, सर्वोत्तम शब्दों का भी प्रचलन है। वैसे ही किसी के आवभगत के लिए आने वाले के लिए–'आगत' शब्द का प्रयोग होता है। अब आदत सी बन गई है कि, हर कार्य में शुभेच्छा जोड़ी जाए तो उसे सु – आगतम कर दिया जो स्वागतम बन गया। लोगों को इससे तसल्ली नहीं हुई तो और अच्छे स्वागत की सोचे और एक और सु आगे लगा दिया। अब यह हुआ सु–स्वागतम. जरा सोचिए आप चार सुसु लगा दीजिए तो क्या आवभगत बढ़ जाती है। अरे भई स्वागत ठीक ठाक कीजिए स्वागतम ही सब कुछ सँभाल लेगा। इन सुसु – आगतम से कुछ होने वाला नहीं है–भाषा बिगाड़ने व चापलूस कहलाने के अलावा।

इसी कड़ी में एक बात और भी है 108 श्री तिरुपति वेकटेश्वर बालाजी। यहाँ 108 का क्या तात्पर्य रहा, क्या यह चापलूसी की हद नहीं है। श्री मतलब ही संपदा, ऐश्वर्य, मान मर्यादा है। 108 का मतलब की उनका ऐश्वर्य व मान मर्यादा 108 गुना है। यहाँ किसका किसके साथ होड़ चल रहा है। सारे ही भगवान माने जाते हैं तो सब बराबर क्यों नहीं. इन अंध धर्मगुरुओं के पीछे ऐसी हरकतें करते रहेंगे तो लोग भक्त नहीं मूर्ख समझेंगे और उस भगवान को क्या समय लगने वाला है, आपके कर्मों को जानने में. हम भाषा में ऐसे प्रयोग को वर्जित करें। सुनने में तो आया है कि, फलाँ जाति के लोग तीन श्री लगाते हैं तो हमारे जाति में पाँच श्री तो लगने ही चाहिए और ऐसी प्रथा शुरु की गई है।

फुट का बहुवचन फीट व फुटों दोनो चल रहे हैं। यानि उस भाषा से व्याकरण भी साथ लेते रहे हैं। इस पर गूढ़ विचार जरूरी है अन्यथा हिंदी भाषी को न जाने कितने व्याकरण पढ़ने पड़ेंगे और यदि कहीं कोई टकराव रहा तो अजीबोगरीब स्थति पैदा हो जाएगी।

यह तो एक उदाहरण मात्र के लिए लेख है ताकि लोगों की दृष्टि को इस तरफ मोड़ा जाए और ध्यानाकर्षण हो। ऐसे अनेकों उदाहरण होंगे जिन्हें पाठकगण खुद ही खोज समझ लेंगे।

हिंदी के सफर को आगे बढ़ाने में हिंदी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्री महादेवी वर्मा की 'हाट बाजार' की भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हाट बाजार ने हिंदी को जनजन तक पहुंचाने का प्रयास किया है। वास्तव में हिंदी एक भाषा होने के साथ-साथ एक सफर भी है। एक लंबे सफर में हिंदी कई पड़ावों और मोड़ों से गुजरी है। एक नदी की यात्रा है हिंदी, **जिस ने** अपने प्रवाह में कई धाराओं को जोड़ा है।

हिंदी ने अपने संपर्क में आई हर बोली भाषा को अपने में समाया है और इस तरह से हिंदी एक समृद्ध और लोकप्रिय भाषा बनती गई। हिंदी ने असहजता को त्याग कर सहजता को स्वीकारा है, यह हिंदी की विशेषता भी है। 'रंग महल' सुनने व बोलने में सहज और स्वाभाविक लगता है, इसीलिए 'रंग महल' ने 'रंग अट्टालिका' शब्द को स्वीकार नहीं किया है।

सहज अभिव्यक्ति भाषा की विशेषता होती है। इसी सहजता की शृंखला में वर्णमाला में अभूतपूर्व परिवर्तन आते गए हैं, जिस से हिंदी लिखना-पढ़ना आसान हो गया, इस के बारे में विस्तृत बातें निम्न पंक्तियों में साफ होती हैं –

पूर्व में 'ख' का 'रव' लिखा जाता था। इस से कई बार समझने व पढ़ने में भ्रम हो जाता था। इस के लिए कराची में आयोजित हिंदी सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि अगर 'ख' में 'र' के नीचे के हिस्से को 'व' के नीचे मिला कर लिखा जाए तो इस से 'ख' के संबंध में उत्पन्न भ्रम दूर हो जाएगा और इस तरह से 'ख' अस्तित्त्व में आ गया जो एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक था। अब 'रवाना' और 'खाना' में स्पष्ट अंतर नजर आने लगा।

इस सम्मेलन में मौजूद बेढव बनारसी ने हास्य चुटकी लेते हुए कहा था–''वाकई अब तक हम 'सखा' को 'सरवा' ही समझते रहे थे।'' यहां 'सखा' का मतलब 'मित्र' से है और 'सरवा' का अर्थ 'पत्नी का भाई' यानी 'साले' से है।

इसी प्रकार 'घ' और 'म' भी काफी समय तक भ्रम पैदा करते रहे. पहले सभी जगह 'घ' और 'म' का ही उपयोग होता था और वाक्यविन्यास के अनुसार उस के अर्थ 'ध' और 'भ' के लिए निकाला जाता था। जैसे 'धन' को भी 'घन' ही लिखा जाता था और 'भान' को 'मान'. काफी विचारविमर्श के बाद इस का

हल निकाला गया कि 'घ' में घुंडी बना कर 'ध' बनाया गया और 'म' में घुंडी लगा कर 'भ' बनाया गया। अब 'मान' और 'भान' में स्पष्ट अंतर दिखाई देने लगा तथा 'घन' और 'धन' अलग-अलग हो गए।

पूर्व में 'झ' लिखने के लिए 'भ' में 'क' के आखिरी अर्धांश 'क्त' को मिला कर लिखा जाता था, इसे लिखने में समय अधिक लगता था और यह कठिन भी था। इसलिए आगे चल कर इसे 'झ' लिखा जाने लगा जो सर्वस्वीकार्य और सरल हो गया।

एक वर्ण 'रा' को इस तरह लिखा जाता था जो अवैज्ञानिक तथा भ्रम पैदा करने वाला था। आगे चल कर इसे 'ण' के रूप में लिखा जाने लगा, जिस से हिंदी वाक्यांश बनाना, पढ़ना और लिखना आसान व स्पष्ट हो गया।

जटिलता में कमी

पुरानी हिंदी में वर्णमाला के स्वरों में दीर्घ 'ऋ' और 'ऌ' का भी अस्तित्त्व था जिस में से बाद में ऌ को हटा दिया गया और हिंदी का भारीपन कम हो गया। शायद आगे जा कर 'ऋ' को भी खत्म किया जा सकता है क्योंकि 'ऋतु' और 'रितु' के उच्चारण में कोई भेद नहीं रह गया है।

इसी तरह पूर्व में 'क्ष' को 'क्शा', 'त्र' को 'त्र' और 'ज्ञ' को 'ज्' की तरह लिखा जाता था, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए इस में आवश्यक सुधार किए गए और 'क्ष' और 'त्र' को सर्वसहमति से स्वीकारा गया।

वर्तमान समय में हिंदी को सरल, सुलभ व सर्वसाधारण की भाषा बनाने पर जोर दिया जा रहा है, क्योंकि हिंदी विश्वस्तरीय भाषा बन गई है। इसी क्रम में ऐसी वर्तनी को अपनाना न्यायोचित होगा जिस में स्पष्टता अधिक हो और भ्रम नहीं हो।

इस क्रम में 'ड़' अथवा 'ढ़' में से एक अक्षर का उपयोग किया जा सकता है क्योंकि लगभग दोनों ही अक्षर एकसा संकेत देते हैं। हम '़' का उपयोग 'रकार' के लिए करते हैं, अब इसे आसान बनाने के लिए 'प्र' का उपयोग किया जाना ज्यादा सुविधाजनक होगा जैसे 'प्रकार' की जगह 'प्रकार, ''क्रम और भ्रम' को 'करम और भरम' लिखना आसान रहेगा।

हिंदी को आसान बनाने के लिए इस तरह के प्रयोगों को किया जा सकता है, जो आज के कौर्पोरेट समय में काफी लोकप्रिय होगा। आज फेसबुक और ईमेल पर अंगरेजी वर्णमाला का उपयोग देवनागरी उच्चारण करते हुए हिंदी लिखने

में किया जा रहा है, जिसे 'हिंगलिश' कहा जा रहा है। आज यह बहुत लोकप्रिय हो रही है और अनेकानेक लोग इस का उपयोग कर रहे हैं। इसी क्रम में हिंदी देवनागरी में भी नए प्रयोग स्वागतयोग्य होने चाहिए. इसी तरह ' ' का उपयोग जैसे 'गर्म', 'शर्म' में किया जाता है, उस की जगह 'गरम', 'शरम' भी लिखा जाने लगा है। यह प्रचलन में भी है। इस से भी हिंदी लिखने व समझने में आसानी होगी। अब शब्द संबंध को लें, जो हिंदी के जानकार हैं वे तो एक बिंदी ' ं' को 'म्' और दूसरी बिंदी ' ँ' को 'न्' समझ लेंगे लेकिन जब हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की बात करते हैं तब ऐसा 'संबंध' लिखने में कोई दिक्कत नहीं है और यह सर्वमान्य भी होगा। इसी तरह अन्य शब्दों का भी सरलीकरण किया जा सकता है, जिस से अर्थ स्पष्ट हो और उपयोग में आसानी हो।

'संभवतः' शब्द को यदि 'सम्भवतह' लिखेंगे तब भी अर्थ में अंतर नहीं आएगा, बल्कि यह समझने में आसान होगा। इस तरह के प्रयोगों से लेखन में विस्तार अवश्य होगा और भारत के सभी राज्यों व विदेशों में इसे लिखने व समझने में आसानी भी होगी।

यह जान कर आश्चर्य होगा कि पहले हिंदी वर्णमाला में 63 वर्ण थे। इस में गैरजरूरी ध्वनियों को हटा कर और समान ध्वनि को मिला कर 33 व्यंजन तथा 11 वर्ण चलन में रखे गए हैं। इसी के साथ वर्तमान समय में क वर्ग के आखिरी वर्ण (ङ) को और च वर्ग के आखिरी वर्ण (ञ) को प्रयोग से हटा दिया गया है।

जैसी बोली वैसी लिखावट

हिंदी की विशेषता है कि, यह जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी भी जाती है। इस की वर्तनी में कोई भ्रम पैदा नहीं होता है, जबकि अंगरेजी की वर्तनी और उच्चारण में बहुत अंतर होता है। यह हिंदी की महानता है कि, कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिंदी अपना स्वरूप बदलती गई है, लेकिन हर हिंदुस्तानी के मुंह में हिंदी जरूर समाई हुई है, अपनी प्रांतीय और स्थानीय भाषा के समावेश से हिंदी में मिठास एवं अपनापन आता गया है। हर 12 किलोमीटर की दूरी पर बदलने वाली भाषाएं भी हिंदी से सराबोर हैं।

आज के उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा बाजारवादी दृष्टिकोण के कारण भाषाएं अपनी सीमाएं लांघ रही हैं और एकदूसरे देश में समाने के लिए लालायित हैं। हाल में चीन ने भारत में अपना बाजार फैलाने के लिए हिंदी की उपयोगिता

समझी और वह अपने देश में इस के लिए अपने नागरिकों को प्रेरित कर रहा है, लगभग यही स्थिति यूरोपीय व अफ्रीकी देशों की भी है।

उम्मीद की जानी चाहिए कि आने वाले समय में हिंदी और सरल एवं व्यावहारिक बनेगी और इस के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाएगा।

हिन्दी भाषा की डत्पत्ति

'भारत' देश की भौगोलिक सीमाओं तथा उसके लिए प्रयुक्त होने वाले नामों (विशेषणों) में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। ब्रह्मवर्त, भारतखण्ड, जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा भारत इसके पुरातन नाम हैं। हिन्द तथा हिन्दुस्तान शब्द भी इसकी संज्ञा के रूप में प्राचीनकाल से ही व्यवहृत होते रहे हैं। ये दोनों शब्द वस्तुतः ईरानी सम्पर्क से व्युत्पन्न हुए हैं। इनमें भी हिन्दी शब्द को विद्वानों ने हिन्दुस्तान की अपेक्षा पुरातन माना है। पारसियों की प्राचीनतम धार्मिक पुस्तक 'दसातीर' में 'हिन्द' शब्द का उल्लेख मिलता है। पं. रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार ईरान के लोग, महर्षि वेदव्यास के समय में ही इस देश को हिन्द कहने लगे थे। ईरान के शाह गस्तस्य के काल में महर्षि वेदव्यास के ईरान जाने का उल्लेख मिलता है। हिन्दी भाषा कहा जाता हैं।

ऋग्वेद में 'सिन्ध' और 'सप्त सिन्धवः' शब्द नदी और सात नदियों के निमित्त कई बार तथा विशिष्ट प्रदेश के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्द' शब्द का सिन्धु नदी तथा उसके आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक प्रदेश विशेष की संज्ञा के रूप में इस शब्द का प्रयोग महाभारत में भी मिलता है। सम्भवतः इन शब्दों ने याजकों के साथ ईरान की यात्रा की और वहीं हैन्दु-हिन्दू तथा हफ्त हिन्दवः या हफ्त हिन्दवो (अवेस्ता में) रूप में प्रचलित हुए। (उल्लेखनीय है कि, भारतीय आर्यभाषा की 'स' ध्वनि ईरानी में 'ह' ध्वनि के रूप में उच्चारित होती है। (जैसे-सप्त-हफ्त, अहुर-असुर) प्राचीन पह्लवी में हिन्दू, हिन्दुक और हिन्दश शब्द मिलते हैं। मध्यकालीन ईरानी में प्रचलित विशेष प्रत्यय 'ईक' जोड़कर (हिन्दईक) हिन्दीक फिर हिन्दीग शब्द बना।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग

'हिन्दी' शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि, संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ

है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भारवा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई. के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भारवा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई प्रभृति नाम प्रचलित हुए।

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग पंडित विष्णु शर्मा की पुस्तक 'पंचतंत्र' की भाषा के लिए हुआ है। यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। पह्लवी (ईरानी) नरेश नौशेरवाँ (531-579 ई.) के दरबारी कवि वरजवैह (बर्जूयह/बजरोया) ने भारत आकर यह अनुवाद पह्लवी (प्राचीन ईरानी) में किया। नौशेरवाँ के विद्वान् मंत्री बर्जुरमहर ने (वस्तुतः जिनके द्वारा यह अनुवाद करवाया गया था) ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है, यह अनुवाद जबाने हिन्दी से किया गया है।'' ईरानी अनुवाद की लोकप्रियता के उपरान्त इस ग्रन्थ का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और सभी में इसकी भाषा को 'जबाने-हिन्दी' ही कहा गया। 7वीं सदी से लेकर 10वीं सदी तक यह शब्द संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की संज्ञा के रूप में निरन्तर प्रयुक्त होता रहा। तदुपरान्त मुसलमान रचनाकारों ने 'जबाने हिन्दी' के स्थान पर हिन्दी और हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ किया।

हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी के प्रभाव से मानी है, किन्तु कालान्तर में सम्पन्न होने वाले शोध-कार्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि, यह शब्द उनके यहाँ आगमन से पूर्व ही प्रचलित हो गया था। शाहजहाँ (1627-1657 ई.) के समय की पुस्तकों (तारीख-ए-फरिश्ता तथा बादशाहनामा) में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे भी पूर्व स्वामी प्राणनाथ (1581-1694 ई.) ने अपनी पुस्तक 'कुलजम स्वरूप' में 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग भाषा के निमित्त किया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि, इस भाषा का व्यापक प्रचलन यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से ही शुरू हुआ। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी या अन्य नामों

की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग अधिक किया है। डच पादरी जे. केटलार (1715 ई.) ने अपने देशवासियों की सुविधा के लिए हिन्दी व्याकरण लिखा और उसे हिन्दुस्तानी ग्रामर' कहा। कालान्तर में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद वहां के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने भारत की प्रमुख भाषा हिन्दुस्तानी कहा और इससे सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का लेखन किया।

उर्दू का प्रयोग

18वीं शताब्दी में जब उर्दू का प्रयोग एक भाषा विशेष के लिए रूढ़ हो गया तब उर्दू और हिन्दी के मिले-जुले रूप को हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा। किन्तु 19वीं सदी के अन्तिम चरण में हिन्दू-उर्दू को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। तदुपरान्त हिन्दी समर्थकों ने केवल हिन्दी शब्द के प्रयोग पर बल दिया। 1893 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा तथा 1910 ई. में हिन्दी साहित्य की स्थापना इसी से की गई। किन्तु गाँधीजी हिन्दुस्तानी के प्रबल पक्षधर थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे भाषा-विवाद को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक समझते थे। इसके लिखित रूप के लिए वे देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों का प्रचलन चाहते थे। गिलक्राइस्ट के समय तक हिन्दुस्तानी शब्द प्रचलन में रहा किन्तु उनके बाद अंग्रेज विद्वानों ने भी धीरे-धीरे हिन्दी या हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया। 1812 ई. में कैप्टर टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलेज का वार्षिक-विवरण प्रस्तुत करते समय हिन्दी शब्द का आधुनिक अर्थ में सम्भवत: प्रथम प्रयोग किया। उनका वक्तव्य था, "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिकर कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में लिखी जाती है।.....मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि है।.....जिसमें अरबी- फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर प्रान्त की भाषा थी।'

भाषा के रूप में 'हिन्दी' के विविध अर्थ

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि, प्रारम्भ में हिन्दी शब्द क्षेत्र बोधक था। कालान्तर में यह यहाँ की वस्तुओं और निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अन्तत: यह भाषा के लिए रूढ़ हो गया, परन्तु हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में भी आज इसके तीन अर्थ मिलते हैं-(i) व्यापक अर्थ, (ii) सामान्य अर्थ और (iii) विशिष्ट अर्थ।।

सामान्य अर्थ

जॉर्ज ग्रियर्सन एवं सुनीति कुमार चटर्जी प्रभृति भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार केवल पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी की बोलियों को ही हिन्दी भाषा की बोली के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार इनकी मान्यताओं के धरातल पर हिन्दी को 8 (पश्चिमी हिन्दी की 5 और पूर्वी हिन्दी की 3) बोलियों की प्रतिनिधि भाषा मानते हुए उसका उद्‌भव शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंश से माना जा सकता है।

व्यापक अर्थ

अपने व्यापक अर्थ में हिन्दी, (बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार) हिन्दी-प्रदेश में बोली जाने वाली समस्त 18 बोलियों की प्रतिनिधि भाषा है। ये बोलियाँ हैं-

- पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली, बाँगरू (हरियाणवी), ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली
- पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी
- पहाड़ी में पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्यवर्ती पहाड़ी (जौनसारी)
- राजस्थानी में पूर्वी राजस्थानी (ढुंढाड़ी), उत्तरी राजस्थानी (मेवाती), पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) और दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
- बिहारी में मैथिली, महँगी तथा भोजपुरी।

विशिष्ट अर्थ

हिन्दी भाषा का समसामयिक आशय है-खड़ी बोली हिन्दी। भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसे भारत संघ की राजभाषा के रूप में (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351 तक) एवं 8वीं अनुसूची में देश की 18 प्रमुख बोलियों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। परिनिष्ठित हिन्दी, मानक हिन्दी या व्यावहारिक हिन्दी के रूप में व्यवहृत होने वाली यही हिन्दी आज देश के (लगभग) 42 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, साथ ही 30 प्रतिशत अन्य ऐसे लोग भी हैं जिन्हें इसका व्यावहारिक ज्ञान है। इसी कारण यह देश की प्रमुखतम सम्पर्क भाषा है।

'हिन्दी भाषा' का उद्‌भव/उत्पत्ति और विकास

हिन्दी भाषा पूर्णतया वियोगात्मक भाषा है। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध काल में इसका लगभग 40 प्रतिशत स्वरूप स्पष्ट हो गया था। लेकिन एक स्वतन्त्र भाषा

के रूप में इसकी पहचान लगभग 1000 ई. के आस-पास स्थापित होती है। तब से अद्यावधि तक यह विकास के पथ पर निरन्तर गतिशील है। हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बांटा जा सकता है-

आदिकाल (1000 से 1500 ई. तक)

हिन्दी भाषा का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल कहा जा सकता है। सर्वत्र मत्स्यन्याय की परम्परा व्याप्त थी। जर, जोरू और जमीन तथा कथित अभिमान के प्रणेता इन लोगों को पशुवत् हिंसक बना रहे थे। इस विनाशलीला से जहाँ कुछ लोग उत्साहित होते थे, वहीं बहुत-से लोग विक्षुब्ध भी। कुछेक ने इन विसंगतियों से स्वयं को मुक्त रखा। इसलिए भोग एवं योग अपूर्व समन्वय इस युग की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। प्रसंगानुकूल-राजाश्रय, धर्माश्रय में सृजित होने वाली रचनाओं के लिए डिंगल, पिंगल, दक्खिनी, अवधी, ब्रज प्रभृति विविध भाषाएँ, माध्यम भाषा के रूप में अपनायी गयीं। इस अवधि में सृजित साहित्य जो अभी तक उपलब्ध हुआ है वह मुख्य रूप में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में लिखा गया है। प्रारम्भिक व्याकरण हेमचन्द्र के द्वारा लिखा गया, जिसका नाम था-शब्दानुशासन या सिद्ध हेम व्याकरण। इस युग में विकास की दृष्टि से हिन्दी की निम्न ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं-

- अपभ्रंश में 8 स्वर थे-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा ऐ। ये मूल स्वर थे। हिन्दी में नए स्वर विकसित हुए-ऐ तथा और इनका उच्चारण क्रमशः अ ए तथा ओ-रूप में होता था। इन्हें संयुक्त स्वर कहा गया।
- अपभ्रंश में ड़ु और ढ़ व्यंजन नहीं थे जो कि हिन्दी में प्रचलित हुए।
- न्ह, ल्ह, यह जैसे संयुक्त व्यंजन अपने पूर्व व्यंजन के महाप्राण के रूप में प्रचलित हो, मूल व्यंजन बन गए।
- सहायक क्रियाओं एवं उपसर्गों के अलग प्रयोग से हिन्दी की मूल विशिष्टता- वियोगात्मकता, इसके प्रारम्भिक काल में ही प्रभावी दृष्टिगत होने लगी।
- अपेक्षाकृत कम होते हुए नपुंसक लिंग शब्द धीरे-धीरे समाप्त हो गए।
- वाक्य-रचना का स्वरूप सुनिश्चित हो गया।
- संस्कृत के शब्दों का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ा तथा अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो के शब्द भी प्रचुर संख्या में अपनाए गए।

मध्यकाल (1501 से 1800 ई. तक)

यह काल, हिन्दी भाषा और साहित्य की उपलब्धियों को देखते हुए उसका स्वर्णकाल कहा जा सकता है। राजनीतिक स्थिरता, शान्तिपूर्ण वातावरण एवं कलात्मक उत्कर्ष ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। यद्यपि संस्कृत अब भी पाण्डित्य की प्रदर्शिका थी किन्तु प्रतिभाशाली एवं स्वाभिमानी सन्तों एवं भक्तों ने लोक बोलियों (विशेष रूप से ब्रज और अवधी) को अपनाकर उसे भाषा के स्तर तक पहुँचा दिया। कृष्ण भक्तों एवं रामभक्तों, विशेषकर सूरदास और तुलसीदास के सुयोग से विकसित इन दोनों बोलियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य एवं शब्दकोश की प्रभूत श्रीवृद्धि की।

- फारसी भाषा में सम्पर्क के कारण हिन्दी में पाँच नयी ध्वनियाँ प्रचलित हुई- क, ख, ग, ज तथा फ।
- अ से होने वाले शब्दांत में अ का उच्चारण समाप्त होने लगा। जैसे-अर्थात् सम्राट्, तथागत् आदि।
- हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप भी लगभग सुनिश्चित हो गया। अपभ्रंश रूप या तो प्रचलन में समाप्त हो गये अथवा हिन्दी के अपने बन गये।
- मुसलमानों से आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने के कारण उनकी विविध भाषाओं-अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो आदि के लगभग 6000 शब्द हिन्दी में अपना लिए गए।
- हिन्दी भाषा की वियोगितात्मकता लगभग पूरी हो गयी और परसर्ग तथा क्रियाओं आदि का अधिक से अधिक स्वतन्त्र प्रयोग होने लगा।
- सूरदास एवं तुलसीदास के साथ-साथ रीतिकालीन आचार्यों के कारण जहाँ हिन्दी में प्रचुर मात्रा में तत्सम शब्द सम्मिलित एवं प्रचलित हुए वहीं सन्त, सूफियों या मुक्तक परम्परा के रचनाकारों के प्रभाव से तद्भव एवं देशी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ।
- व्यापारिक उद्देश्य से भारत आने वाली विभिन्न यूरोपीय जातियों से सम्पर्क के कारण उनकी भाषाओं-पुर्तगाली, स्पेनिश, डच, फ्रेंच तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्राय: हिन्दी के अपने व्याकरण के अनुसार प्रचुर मात्र में होने लगा।

आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)

इस अवधि को खड़ी बोली हिन्दी का काल कहा जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा और अवधी एक तरफ जनमानस से दूर होकर

विशिष्ट वर्ग की भाषा बन गयी, तो दूसरी तरफ हिन्दी प्रदेश पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक गतिविधियों की सुकरता हेतु 1800 ई. से ही खड़ी बोली को संरक्षण प्रदान करते हुए अपना लिया। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र में कुछ दिनों तक खड़ी बोली गद्यविधा और ब्रजभाषा पद्य-विधा का माध्यम भाषा न रही, लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना की व्यापकता, राजनीतिक घटनाओं, सामाजिक जागरण और प्रेस के अस्तित्त्व में आने के कारण खड़ी बोली साहित्यिक सृजन की एकमात्र भाषा बन गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली हिन्दी के विकास में बंग-भंग के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए 1905 ई. के स्वदेशी आन्दोलन की रचनात्मक भूमिका को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अहिन्दी भाषा-भाषी के क्षेत्र के विशिष्ट जन प्रतिनिधियों ने भी खड़ी बोली को एक स्वर से स्वदेशी (सम्पर्क) भाषा के रूप में स्वीकार किया। फलतः हिन्दी के विद्वानों एवं रचनाकारों के समक्ष उसे एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की चुनौती उपस्थित हुई। इसे इन्होंने पूरे मनोयोग से स्वीकार कर हिन्दी से जुड़ी राष्ट्रीय अपेक्षाओं की पूर्ति कर दिखाया। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी एवं उसमें (उसके माध्यम से) लिखी जाने वाली रचनाओं का परिष्करण एवं परिमार्जन करके छायावाद के आगमन तक उसे हर दृष्टि से सक्षम भाषा बनने का सुयोग प्रस्तुत किया।

- कचहरी में उर्दू भाषा और फारसी लिपि के प्रचलन के कारण 1947 ई. तक क, ख, ग, ज और फ वर्ण तो प्रचलन में रहे, किन्तु धीरे-धीरे क, ख, - क, ख, ग के रूप में प्रयुक्त होने लगे पर ज और फ प्रचलन में अभी भी बने हुए हैं।
- अंग्रेजी के प्रभाव से उसके '0' वर्ण के लिए एक नयी ध्वनि 'ऑ' प्रचलित हुई। जैसे-कॉलेज, डॉक्टर, कॉलगेट आदि। (ऑ का उच्चारण ओ एवं आ के मध्य करने की चेष्टा की जाती है।)
- अंग्रेजी के प्रभाव से एक नया संयुक्त व्यंजन 'ड्र' भी प्रचलन में आया है। जैसे-ड्रिप, ड्रग आदि।
- शब्दांत में 'अ' का उच्चारण लगभग समाप्त हो चुका है। जैसे राम, श्याम आदि।।
- शिक्षा, वाणिज्य, आकाशवाणी, प्रेस तथा दूरदर्शन के प्रभाव से व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो चुका है,

फिर भी वर्तमान में इसके कम-से-कम तीन स्वरूप प्रचलित हैं, जिसे निम्नवत् देखा जा सकता है-

- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त होने वाली साहित्यक हिन्दी।
- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के जनसामान्य या विशिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने वाली हिन्दी। इसके भी कम से कम तीन स्वरूप प्रचलन में है-शिष्ट लोगों कीसे बातचीत में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें आरम्भ से अन्त तक संयम एवं अनुशासन का पुट रहता है, पारिवारिक धरातल पर प्रयुक्त होने वाली हिन्दी, जिसमें थोड़ी उन्मुक्तता और थोड़ा अनुशासन तथा संयम का पुट रहता है एवं मित्रों तथा समवयस्कों के मध्य बातचीत में पूर्ण उन्मुक्तता के साथ प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें अनुशासन या संयम का सर्वथा अभाव होता शासन, विज्ञान, उद्योग, व्यापार, चिकित्सा तथा अन्य प्रमुख क्षेत्रों में माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त होने के कारण हिन्दी भाषा में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का समन्वय हो रहा है।
- ये शब्द विविध माध्यमों से प्राप्त हो रहे हैं, जैसे-ग्रहण, निर्माण, अनकलन (तकनीक, अकादमी, डीजल) और सचर्यन (निस्तन्त्री)।

अन्य शब्दों में हिन्दी-व्युत्पत्ति और अर्थ

- 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित है- (i) परम्परावादी संस्कृत पण्डितों के अनुसार, हिन्दी-हिन् (नष्ट करना) . दु (दुष्ट)। अर्थात् हिन्दू का अर्थ है, जो दुष्टों का विनाश करें (हिनस्ति दुष्टान्) (ii) शब्द कल्पद्रुम के अनुसार, 'हिन्दू' शब्द 'हीन. दुष. डु' से बना है जिसका अर्थ है 'हीनों को दूषित करने वाला (हीन दूषयति)।
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हिन्दू' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 7वीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथचूर्णि' में प्रथम बार मिला है। 'हिन्दू' शब्द फारसी है, जो संस्कृत शब्द सिन्धु का फारसी रूपान्तरण है। 'सिन्धु' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में सामान्य रूप से नदी (सप्त सिंधवः), नदी विशेष तथा नदी के आस-पास के प्रदेश के लिए हुआ है।
- 500 ई. पू. के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी का स्थानीय प्रदेश ईरानी लोगों के हाथों में था।

- संस्कृत के 'सिन्धु' का ईरानी में हिन्दू हो गया जो सिन्धु नदीं के आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।
- कालान्तर में आर्थिक विकास के साथ हिन्दू' का अर्थ 'भारत' हो गया। इसमें 'इ' पर बलाघात के कारण अन्त्य 'उ' का लोप हो गया। (हिन्दू-हिन्द)।
- 'हिन्द' शब्द में विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जोड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। कालान्तर में 'क' लुप्त हो जाने से 'हिन्दी' शब्द बना।
- शहिन्दी व्याकरण की दृष्टि से विशेषण है जिसका मूल अर्थ (सं.) सिन्धु (अवे.) हिन्दु हिन्द हिन्दीक हिन्दी।
- ग्रीक लोगों ने सिन्धु नदी को 'इन्दोस', यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दिके' अथवा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया। 'इन्दिका' शब्द अंग्रेजी आदि में 'इण्डिया' हो गया।
- किसी भी प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में हिन्दी' का प्रयोग नहीं मिलता है। केवल कालकाचार्य द्वारा लिखित जैन महाराष्ट्री में 'हिन्दुग' शब्द मिलता है। (जैसे-'सूरिणा भणियम् रामाणो जेण हिन्दुग देसम् बच्चामोश)।

भाषा के अर्थ में 'हिन्दी शब्द' का प्रयोग व विकास

- भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग फारस और अरब से होता है।
- ईरान के बादशाह नौशेरवाँ (531-579 ई.) ने अपने दरबारी हकीम बाजरोया को भारतीय ग्रन्थ 'पंचतन्त्र' का अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। बाजरोया ने 'कर्कटक और दमनक' के आधार पर अपने अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा।
- 'कलीला व दिमना' की भूमिका नौशेरवाँ के मन्त्री बुजर्च मिहर ने लिखी। भूमिका में कहा गया कि यह अनुवाद 'जबाने-हिन्दी' से किया गया है।
- अरबी-फारसी में 'जबाने-हिन्दी' शब्द का प्रयोग सम्भवत: भारत की समस्त भाषाओं संस्कृत, पालि, प्रा-त, अपभ्रंश के लिए मिलता है।
- भारत के फारसी कवि औफी ने सर्वप्रथम 1228 ई. में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग समस्त भारतीय भाषाओं के लिए न करके भारत की (सम्भवत: मध्यदेश की) देशी भाषाओं के लिए किया।

- तैमूरलंग के पोते शरफुद्दीन यज्दी ने 1424 ई. में अपने ग्रन्थ 'जफरनामा' में विदेशों में हिन्दी भाषा' के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रथम प्रयोग किया।
- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग-1) के अनुसार, 13-14वीं शती में देशी भाषा को 'हिन्दी' या 'हिन्दकी' या 'हिन्दुई' नाम देने में अबुल हसन या अमीर खुसरो का नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।'
- डॉ. भोलानाथ तिवारी एवं उदय नारायण तिवारी ने भाषा के अर्थ में खुसरो द्वारा प्रयुक्त 'हिन्दी' को संदिग्ध माना है। उक्त दोनों विद्वानों ने हिन्दी' शब्द के प्रयोग को 'भारतीय मुसलमान' के अर्थ में रेखांकित किया है।
- डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है, 'खुसरो ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है और 'हिन्दवी' शब्द का 'मध्यदेशीय भाषा' के लिए यह 'हिन्दवी' शब्द वस्तुतः 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' है। हिन्दू ई. = अर्थात् हिन्दुओं की भाषा। 'हिन्दुवी' शब्द के प्रयोग के कुछ दिन बाद 'हिन्दी' (अर्थात् भारतीय मुसलमानों) की भाषा के लिए कदाचित् 'हिन्दी शब्द चल पड़ा।'
- हिन्दी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है-"हिन्दू मग पर पाँव न राखौ। का जो बहुतै हिन्दी भाख्यौ।।'
- 18वीं सदी तक 'हिन्दी' मुसलमानों की भाषा न रहकर हिन्दुओं की भाषा की। ओर झुक रहा था।
- 19वीं सदी मध्य के पूर्व तक 'हिन्दी' का प्रयोग 'उर्दू' या 'रेख्ता' के समानार्थी रूप में चल रहा था।
- 'उर्दू' मूलतः तुर्की शब्द है जिसका अर्थ है 'शाही शिविर' या 'खेमा।
- डॉ. ग्राहम बेल तथा डॉ. ताराचन्द आदि का कहना है कि, 'उर्दू' का भाषा के निश्चित अर्थ में सबसे पुराना प्रयोग मुसहफी में मिलता है-खुदा रक्खे जबाँ हमने सुनी है, मीर-वो-मिरजा की, कहें किस मुँह से हम मुसहफी 'उर्दू' हमारी।

  आजाद ने 'आबे हयात' में ब्रजभाषा से उर्द का जन्म माना है।

  श्रेख्ता' का फारसी में अर्थ 'गिरा हुआ' या 'गिराकर बनाया हुआ ढेर' है।।

  भारत में 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग पहले छंद और संगीत के क्षेत्र में हुआ।

  रेख्ता' नाम 18वीं सदी से प्रारम्भ होकर लगभग 19वीं सदी के मध्य तक उर्दू के लिए चलता रहा।

• हिन्दी का नवीन अर्थ में लिखित प्रयोग सर्वप्रथम कैप्टिन टेलर ने 1812 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में किया।

• वर्तमान में हिन्दी' शब्द मुख्यत: निम्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है- (1) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में 'हिन्दी' का अर्थ है-हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार की भाषा। इस पूरे क्षेत्र को 'हिन्दी प्रदेश' कहते हैं। (2) वर्तमान भारतीय साहित्य में 'हिन्दी' शब्द भारतीय संघ की राजभाषा (संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी-भारतीय संविधान, अनुच्छेद 343) तथा राष्ट्रभाषा के नाम का द्योतक है।

हिन्दी भाषा के विविध रूप

हम अपने भावों और विचारों को कभी-कभी लिखकर दूसरों तक पहुँचाते हैं। जब श्रोता सामने होता है तो उससे बोलकर हम अपनी बात कहते हैं, किन्तु जब सामने नहीं होता तो हम लिखकर उस तक अपनी बात पहुँचाते हैं। इसी आधार पर भाषा के दो रूप हो जाते हैं- (i) उच्चारित या मौखिक भाषा, तथा (ii) लिखित भाषा।

उच्चारित या मौखिक भाषा

'उच्चारित या मौखिक भाषा' भाषा का बोलचाल का रूप है। उच्चारित भाषा का इतिहास मनुष्य के जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ है। जब से मनुष्य ने जन्म लिया होगा, तभी से उसने बोलना आरम्भ कर दिया होगा। उच्चारित भाषा की आधारभूत इकाई 'ध्वनि' है। हर भाषा में अनेक ध्वनियाँ होती हैं। इन्हें ध्वनियों के परस्पर संयोग से तरह-तरह के शब्द बनते हैं, जो वाक्यों में प्रयुक्त किये जाते हैं।'उच्चारित भाषा' वास्तव में भाषा का अस्थाई एवं क्षणिक रूप होता है। उच्चारित भाषा का प्रयोग प्राय: तभी किया जाता है, जब श्रोता वक्ता के सामने होता है।

लिखित भाषा

उच्चारित भाषा की तुलना में लिखित भाषा रूप का इतिहास उतना पुराना नहीं है। जब मनुष्य को यह अनुभव हुआ होगा कि वह अपने भावों और विचारों को स्थायित्व प्रदान करें या उन लोगों तक पहुँचाने की कोशिश करें जो उसके

सामने नहीं है तो उसने लिखित भाषा चिह्नों का सहारा लिया होगा। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्रत्येक उच्चारित ध्वनि के लिए तरह-तरह की आ-ति वाले लिखित चिह्नों की रचना की गई जिनको 'लिपि-चिह्न' या 'वर्ण' कहा जाता है। अत: यहाँ उच्चारित आधारभूत इकाई 'वर्ण' है। लिखित -भाषा, भाषा का स्थायी रूप है, जिसमें हम अपने भाव- विचारों को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सकते हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन लोगों को लिखना-पढ़ना नहीं आता, इसका यह अर्थ नहीं है कि, उन्हें भाषा नहीं आती। वास्तव में हर व्यक्ति जन्म से ही अपनी मातृभाषा को सीख लेता है। कुछ बिना पढ़े-लिखे लोग ऐसे भी होते हैं, जो अनेक भाषाएँ बोल और समझ सकते हैं और उन्हें भाषाओं का जानकार माना जाता है, क्योंकि भाषा का मूल तथा आदि रूप तो 'उच्चारित' ही है, लिखित रूप तो बहुत बाद में विकसित हुआ है।

हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास

भाषा-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है और इसके आरंभ काल से लेकर आज तक हिंदी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने प्रर्याप्त प्रकाश डाला है, तथापि हिंदी भाषा के उद्‌भव की कहानी आज भी हिंदी भाषा विज्ञान के लिए रहस्यमयी बनी हुई है। संसार की कौन सी भाषा आदि भाषा थी और उससे किन-किन हिंदी भाषाओं का किन-किन रूपों में विकास हुआ यह आज भी अनिर्णीत है। अनुमान के आधार पर हिंदी भाषा के उद्‌भव के सम्बन्ध में हिंदी भाषा वैज्ञानिकों ने कुछ प्रारंभिक प्रयास किए हैं और वे ही आज हिंदी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार बने हुए हैं। हिंदी भाषा किसी एक व्यक्ति से उत्पन्न नहीं हुई है, वरन् यह एक विशाल जन समूह की वाणी का सामान्य प्रतिफलन है। इस प्रकार हिंदी भाषा समाज की वाणी का समवायी प्रारूप है। ऐसी स्थिति में किसी भी हिंदी भाषा का अविर्भाव काल को या उद्‌भव को एक निश्चित सीमा रेखा पर नहीं माना जा सकता। यही बात हिन्दी के पक्ष में भी सत्य है।

हिंदी भाषा पर आधुनिक हिंदी भाषा विज्ञान व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से जब हिंदी भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो उनमें एक-दूसरे के बीच आदान-प्रदान के साथ एक -दूसरे को प्रभावित करने और एक-दूसरे से प्रभावित

होने की प्रक्रिया भी चलती रहती है। हिन्दी का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से प्रारंभ होता है। उससे पहले आर्यभाषा भाषा का स्वरूप क्या था इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही भारत में आर्यों का आगमन किस काल से हुआ इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। साधारणतया यह माना जाता है कि, 2000 से 1500 ई. पूर्व भारत के उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे। यहीं पहले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्त सिंधु, जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देश में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहीं से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्यदेश, काशी, कोशल, मगध, विदेह, अंग, बंग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को पराभूत करके उन्होंने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया।

इस प्रकार समस्त उत्तरापथ में अपना राज्य स्थापित करने के बाद आर्य संस्-ति दक्षिणापथ की ओर अग्रसरित हुई और युनानी राजदूत मेगास्थनीज के भारत आने तक आर्य संस्-ति सुदूर दक्षिण में फैल चुकी थी। आर्यों की विजय केवल राजनीतिक विजय मात्र नहीं थी। वे अपने साथ सुविकसित हिंदी भाषा एवं यज्ञ परायण संस्-ति भी लाए थे। उनकी हिंदी भाषा एवं संस्-ति भारत में प्रसार पाने लगी, किन्तु स्थानीय अनार्य जातियों का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगा। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयों से सिन्धु घाटी की जो सभ्यता प्रकाश में आई है, उससे स्पष्ट है कि, यायावर पशुपालक आर्यों के आगमन से पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का बहुत अधिक विकास हो चुका था। अतः यह सम्भव है आर्यों की हिंदी भाषा, संस्-ति एवं धार्मिक विचारों पर अनार्य जाति की संस्-ति एवं संपर्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। अनार्य जातियों के योगदान के कथन से तात्पर्य यह नहीं है कि, हिन्दी अथवा प्रा-तों में जो कुछ है वह आर्यों की ही हिंदी भाषाओं से लिया गया है अथवा आर्यों की सारी संपत्ति प्रा-तों और हिंदी को प्राप्त हो गयी।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि, युग-युग की हिंदी भाषा में यहाँ तक कि वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भी बहुत से अनार्य तत्त्व सम्मिलित थे। भारत में तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अनार्य जातियाँ रहती थीं जिनमें निग्राटु, किरात, ऑस्ट्रिक या निषाद तथा द्रविड़(दस्यु) का प्रसार बहुत व्यापक था। निग्रोटु अनार्य जाति का आगमन अफ्रीका से अवश्य हुआ किन्तु वे समुद्री तट के आस-पास के क्षेत्रों में रहे और वहीं से दक्षिण पूर्वी द्वीपों की ओर निकल गए। मध्यदेश के लोगों से उनका संपर्क नहीं हो पाया। वैदिक

साहित्य में इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। किरात पहाड़ी लोग थे जिनके वंशज आज भी हिमालय प्रदेश के पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए हैं। इन लोगों का आर्यों के साथ संपर्क हुआ। फलस्वरूप इनके बीच संस्–तियों और हिंदी भाषाओं का आदान–प्रदान भी हुआ। यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्–ति परवर्ती आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है। इन्हीं के देवताओं, इनकी पूजा विधि, विश्वासों अन्धविश्वासों के साथ–साथ, मणियों, पर्वतीय फल–फूलों, पशु–पक्षी, उपजों के नाम इन जातियों से ग्रहण किए गए। आग्नेय या निषाद जातियाँ पंजाब के पूर्व में बसी थीं। इनकी संस्–ति ग्रामीण थी और –षि इनका प्रधान कर्म था।

आर्यों ने इन्हीं से –षि कर्म सीखा और उस कर्म में प्रगति की क्योंकि अधिकांश आर्य जातियाँ मध्य एशिया के पहाड़ी प्रदेश में रहती आ रही थीं। नावें चलाना और मछली पकड़ना भी इन निषाद जातियों का अपेक्षा आग्नेय 'हाथी' का जो इतना अधिक महत्व रहा उसका भी यही कारण है। वर्तमान समय में भी राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल, ओड़िशा, असम और उत्तरप्रदेश के पहाड़ी इलाकों में मुंडा, सांथाल, कोल, हो, शबर, खासी, मानख्मेर कुंकू, भूमिज आदि अनेक आदिम जातियाँ फैली हुई हैं जिसकी हिंदी भाषा, बोली और शब्दावली का तलदेश की बोली से सीधा संपर्क रहा। द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्–तिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रहीं।

फलस्वरूप भारत में आर्यों का प्रसार सरलतया संपन्न नहीं हुआ। उनको अनेक प्रा–तिक एवं मनुष्य कृत बाधाओं एवं विरोधों का सामना करना पड़ा। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा आदि की खुदाइयों और बलोचिस्तान में प्राप्त ब्राहुई नाम की द्रविड़ हिंदी भाषा के अवशेषों को देखकर इतिहासकारों का यह निश्चित मत है कि, सिन्धु सौविर आदि प्रदेशों में द्रविड़ जातियों का प्राबल्य था, जिनसे आर्यों को कठिन संघर्ष करना पड़ा। प्रसार के इस कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गई, इस काल क्रम में हिंदी भाषा भी स्थिर नहीं रह सकी, उसके रूप में परिवर्तन विवर्तन होता गया। जैसे भारतीय आर्य हिंदी भाषा में टवर्गीय ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों, कर्मवाच्य में अतिरिक्त क्रिया, वाक्य योजना के कुछ तत्त्व द्रविड़ से आए है।। इस प्रकार इन द्रविड़ संस्–ति, जाति –जनजातियों की संस्–तियों के अलावा समय–समय पर शक, हुण, मंगोल, तुर्क, चीनी, अरब, शान आदि अनेक जातियाँ यहाँ आई और यहाँ की सभ्यता और संस्–ति में

घुलमिल गईं। इन सबने भारतीय हिंदी भाषाओं (हिंदी) के निर्माण और विकास में अपना योगदान दिया।

प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने अपने भावों-विचारों को अपने अंग संकेतों से प्रषित किया होगा बाद में इसमें जब कठिनाई आने लगी तो सभी मनुष्यों ने सामाजिक समझौते के आधार पर विभिन्न भावों, विचारों और पदार्थों के लिए अनेक ध्वन्यात्मक संकेत निश्चित कर लिए। यह कार्य सभी मनुष्यों ने एकत्र होकर विचार विनिमय द्वारा किया। इस प्रकार भाषा का क्रमिक गठन हुआ और एक सामाजिक पृष्ठभूमि में सांकेतिक संस्था द्वारा भाषा की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक भाषा लोगों की आत्मा की निशानी और शक्ति है, जो स्वाभाविक रूप से इसे उन्हें अभिव्यक्त करती है। इसलिए प्रत्येक के अपने विचार-स्वभाव, जीवन, ज्ञान और अनुभव व्यक्त करना का तरीका विकसित होता है। इसलिए किसी राष्ट्र के लिए या मानव समूह- का सबसे बड़ा मूल्य है, अपनी भाषा को संरक्षित करना और इसे एक मजबूत और जीवित संस्-ति का साधन बनाना। एक राष्ट्र, जाति या एक व्यक्ति, जो अपनी भाषा खो देता है, अपना संपूर्ण जीवन या उसका वास्तविक जीवन नहीं जी सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, संस्कृत के उद्भव के बाद, कई नई भाषाएं समय के साथ विकसित हुई और बाद के पूर्ण उन्मूलन के बिंदु तक उनकी स्रोत भाषा को बदल दिया गया।कोई भी सिद्धांत या संभावना इस बात की जानकारी प्रदान नहीं करता है कि, संस्कृत के लिए स्रोत भाषा एशिया माइनर से नहीं बल्कि उपमहाद्वीप के भीतर से आई है, और यह कि संस्कृत का एक पुराना संस्करण ही स्रोत भाषा थी। वैदिक लोगों की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि के बारे में इतिहासकारों के बीच काफी विवाद रहा है।न्यूजीलैंड के ऑकलैंड विश्वविद्यालय की विकासवादी जीवविज्ञानी क्विनटिन एटकिंसन ने अपने शोध के दौरान पाया कि इंडो-यूरोपीयन समूह की भाषाएँ पश्चिमी एशिया के एक ही इलाके में पैदा हुई हैं। उनके अनुसार ऐसा करीब 8000 से 9500 हजार साल पहले हुआ था। शोध के दौरान उन्होंने करीब 100 से ज्यादा प्राचीन और समकालीन भाषाओं का कंप्यूटर के माध्यम से अध्यन किया और पाया कि यह सभी भाषाएँ अनातोलिया के इलाकों में पैदा हुई हैं।

सिंधु सभ्यता मूल रूप से एक भारतीय मामला था, जिस पर बाहर की दुनिया का कम या कोई प्रभाव नहीं था और वे शायद वैदिक लोगों के पहले के चचेरे भाई थे, कुछ द्रविड़ तत्त्वों के साथ पुरानी संस्कृत के रूढ़िवादी रूप

को भाषा के रूप में प्रयोग करते थे, और -षि, धातु विज्ञान, शहरी नियोजन, व्यापार और वाणिज्य के विशेषज्ञ थे।सभ्यता शायद 6000 ईसा पूर्व के आसपास शुरू हुई क्योंकि ईरान के सीमाओं तक, उपमहाद्वीप के विशाल क्षेत्र में खेती और खाद्य एकत्रीकरण समुदाय फैला हुआ है। इसने दो चरणों में अपना चरम स्थान प्राप्त किया। पहले चरण में, शायद लगभग 4500 ईसा पूर्व, यह छोटे गाँव की बस्तियों में विकसित हुआ और फिर 3500 ईसा पूर्व या उससे भी पहले सुव्यवस्थित और समृद्ध शहरी शहरों में विकसित हुआ। सिंधु लोग संभवत: सरस्वती नदी के एक क्षेत्र में रहते थे, जो अब विलुप्त हो चुका है, इससे पहले कि वे अन्य क्षेत्रों में चले गए, जलवायु परिवर्तन से मजबूर हो गए।

संभवत: 2500 ईसा पूर्व के आसपास सिंधु संस्-ति द्वारा वैदिक संस्-ति अपना ली गई और, संस्कृत संचार की प्रमुख भाषा के रूप में, कम से कम समाज के कुलीन और शासक वर्गों के बीच में स्थापित हो चुकी थी। इस समय तक संस्कृत पहले से ही एक पूर्ण विकसित भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी जैसा कि वेदों में पाए गए सबसे पहले के संस्कृत श्लोकों से स्पष्ट होता है।

संस्कृत के प्रत्येक स्वर और व्यंजन में एक विशेष और अविवेकी बल होता है, जो चीजों की प्र-ति और विकास या मानव की पसंद से मौजूद होता है, ये मूलभूत ध्वनियाँ हैं, जो तांत्रिक द्विजमंत्रों के आधार पर निहित हैं और मंत्र की प्रभावकारिता का गठन करती हैं। मूल भाषा के प्रत्येक स्वर और प्रत्येक व्यंजन के कुछ प्राथमिक अर्थ होते थे, जो इस आवश्यक शक्ति या बल से उत्पन्न हुए थे और अन्य व्युत्पन्न अर्थों के आधार थे। स्वरों के साथ, व्यंजन और किसी भी संयोजन के बिना, स्वरों ने स्वयं कई प्राथमिक जड़ें बनाईं, जिनमें से द्वितीयक जड़ों को अन्य व्यंजन के अतिरिक्त विकसित किया गया था। सभी शब्द इन जड़ों से बने थे।

अशोक के समय में दो तरह की प्राकृत प्रचलित थी—एक पश्चिमी, दूसरी पूर्वी। इनमें से प्रत्येक का गुण-धर्म जुदा-जुदा है—प्रत्येक का लक्षण अलग-अलग है। पश्चिमी प्राकृत का मुख्य भेद शौरसेनी है। वह शूरसेन प्रदेश की भाषा थी। गंगा-यमुना के बीच के देश में, और उसके आस पास, उसका प्रचार था। पूर्वी प्राकृत का मुख्य भेद मागधी है। वह उस प्रांत की भाषा थी जो आज कल बिहार कहलाता है। इन दोनों प्रदेशों के बीच में एक और भी भाषा प्रचलित थी। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी और अर्द्ध-मागधी कहलाती थी। सुनते हैं, जैन-तीर्थ कर महावीर इसी अर्द्ध-मागधी में जैन-धर्म का उपदेश देते थे। पुराने

जैन ग्रंथ भी इसी भाषा में हैं। अर्द्ध–मागधी की तरह की और भी भाषा प्रचलित थी। हिंदी की शब्दावली मुख्यत: संस्कृत से ली गई है। अन्य इंडो–आर्यन भाषाओं की तरह हिंदी अपने वर्तमान आकार में 10 वीं शताब्दी के आसपास आकार लेने लगी। लेकिन 14 वीं शताब्दी से पहले यह सौरासेनी अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित था। दिलचस्प बात यह है कि, सौरासेनी ने पंजाबी को भी जन्म दिया।

सबसे पुरानी हिंदी मिस्टिको–भक्ति काव्य–गोरख नाथ 1150 के पद्य और वेणी, महान नाथ पंथ के शिक्षक, और अन्य समकालीन योगी हठ–योग के दर्शन और अभ्यास का उपदेश भी इसी अवधि में दिया गया है। लेकिन उनकी भाषा बहुत बदली हुई है और यह तय करना मुश्किल है कि, इनमें से कितनी रचनाएँ वास्तविक हैं। इन कविताओं में शुद्ध जीवन की आवश्यकता, भौतिक समृद्धि से अलगाव और वास्तविक ज्ञान पर जोर दिया गया, जिसने बाद के काल के भक्त कवियों के लिए जमीन तैयार की। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल का समय 1500 ईसा पूर्व से लेकर 500 ईसापूर्व तक माना गया है इसमें वेदों, ब्राह्मण ग्रंथो एवं पाणनि की अष्टाध्यायी की रचना हुई। हिंदुस्तान की वर्तमान संस्ब–तोत्पन्न भाषाओं का जन्म कोई 1000 ईसवी के लगभग हुआ।मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल 500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी सन तक माना जाता है इस समय लोक भाषा का विकास हुआ और उन्हें पालि (500 ईसा पूर्व से -1 ईसा पूर्व तक) प्राकृत (1 ईसा से 500 ईस्वी तक) अपभ्रंश (500 ईस्वी से 1000 ईस्वी तक) भाषा का नाम दिया गया। अभी तक माना जाता था कि ब्राह्मी लिपि का विकास चौथी से तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्यों ने किया था, पर भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के ताजा उत्खनन से पता चला है कि, तमिलनाडु और श्रीलंका में यह 6ठी सदी ईसा पूर्व से ही विद्यमान थी। यह लिपि प्राचीन सरस्वती लिपि (सिन्धु लिपि) से निकली अत: यह पूर्ववर्ती रूप में भारत में पहले से प्रयोग में थी।

सरस्वती लिपि के प्रचलन से हट जाने के बाद प्राकृत भाषा लिखने के लिये ब्रह्मी लिपि प्रचलन में आई। ब्रह्मी लिपि में संस्कृत में ज्यादा कुछ ऐसा नहीं लिखा गया जो समय की मार झेल सके। भारतीय आचार्यों ने शब्दों की दो स्थितियाँ–सिद्ध एवं असिद्ध दी हैं। इनमें "असिद्ध" शब्द को केवल "शब्द" तथा "सिद्ध" शब्द को "पद" के रूप में परिणत किया जाता है। "सिद्धि" के सुंबत (नाम) एवं तिङंत (क्रिया) तथा "असिद्ध" के कई भेद प्रभेद किए गए हैं। यहाँ तक कि संस्कृत का प्रत्येक शब्द "धातुज" ठहराया गया है। व्याकरण शास्त्र का नामकरण एवं उनकी परिभाषा इसी प्रक्रिया को ध्यान में रख कर की

गई है यथा, शब्दानुशसन (महर्षि पतंजलि एवं आचार्य हेमचंद्र) तथा "व्याक्रियंते विविच्यंते शब्दा: अनेन इति व्याकरणम्" पाश्चात्य विद्वान् धात्वंश को आवश्यक नहीं मानते, वे आधार रूपांशों को नाम एवं आख्यात् दोनों के लिये अलग अलग स्वीकार करते हैं। वस्तुत: बहुत सी भाषाओं के लिये धात्वंश आवश्यक नहीं।

प्रा-तपाली भाषा में लिखे गये मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध उपदेश आज भी सुरक्षित है।जो शब्द संस्कृत से आ कर प्राकृत में मिल गए हैं वे "तत्ब्सम" शब्द कहलाते हैं और मूल प्राकृत शब्द जो सीधे प्राकृत से आए हैं "तद्भव' कहलाते हैं। पहले प्रकार के शब्द बिलकुल संस्कृत हैं। दूसरे प्रकार के प्रारंभिक प्राकृत से आए हैं, अथवा यों कहिए कि वे उस प्राकृत या प्राकृत की उस शाखा से आए हैं जिससे खुद संस्कृत की उत्पत्ति हुई हैं।हिंदी ही पर नहीं, किंतु हिंदुस्तान की प्राय: सभी वर्तमान भाषाओं पर, आज सैकड़ों वर्ष से संस्कृत का प्रभाव पड़ रहा है। संस्कृत के अनंत शब्द आधुनिक भाषाओं में मिल गए हैं। परंतु उसका प्रभाव सिर्फ वर्तमान भाषाओं के शब्द-समूह पर ही पड़ा है।

500 ई. के आसपास उत्तर भारत में, अपभ्रंश बोलियाँ प्राकृत से विकसित हुई। उन्होंने 13 वीं शताब्दी ईस्वी तक एक प्रकार के लिंगुआ फ्रेंका के रूप में कार्य किया और दिल्ली सल्तनत के फारसी शासकों द्वारा हिंदवी के रूप में संदर्भित किया गया, जिन्होंने 1206 से 1526 तक भारत के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर शासन किया। हिंदी भाषा अपभ्रंश के आसपास से बिखर रही थी। 11 वीं शताब्दी ईस्वी, उनमें से अधिकांश 12 वीं तक पूरी तरह से अलग थे, हालांकि कई स्थानों पर अपभ्रंश भाषाएं अभी भी समानांतर में बोली जाती थीं।यह दिल्ली सल्तनत के अधीन था कि फारसी भाषा ने पहले स्थानीय अपभ्रंश बोलियों के साथ मिश्रण करना शुरू किया था, जो बाद में हिंदी और उर्दू भाषा बन गई।

उत्तरी भारत में बोली जाने वाली भाषाएँ, इंडो-ईरानी शाखा के इंडो-आर्यन संस्कृत समूह से पनपी हैं, जो बड़े भारत-यूरोपीय परिवार से संबंधित है। संस्कृत, आज की पूरी तरह से मृत भाषा है, लेकिन संस्कृत और पाली, जो प्राचीन काल से जीवित रहने वाली दो भाषाएँ हैं, आज भी महत्वपूर्ण हैं– संस्कृत भारत और हिंदू धर्म की शास्त्रीय भाषा है, जिसमें अधिकांश धर्मग्रंथ (वृंदावन), महाकाव्य (महाभारत, भगवत गीता) और प्राचीन साहित्य लिखा जाता है। पाली का उपयोग थेरवाद बौद्ध धर्म की प्रचलित और विद्वतापूर्ण भाषा के रूप में किया जाता है, क्योंकि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति सबसे पहले बिहार, भारत में हुई थी। उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाएं इन दो भाषाओं जैसे हिंदी, उर्दू, पुनाजाबी,

गुजराती, बंगाली, मराठी, कश्मीर, सिंधी, कोंकणी, राजस्थानी, असमिया और उड़िया से उपजी हैं।

हिंदी भाषा अन्य भाषाओं का प्रभाव

अपने पूरे इतिहास में, हिंदी ने कई अलग-अलग भाषाओं के उधार लिए शब्दों को अवशोषित किया। खड़ी बोली पर मुख्य बाहरी प्रभाव जो बाद में हिंदुस्तानी बन गया, दिल्ली सल्तनत के प्रशासकों और सैनिकों और बाद में मोगुल साम्राज्य के माध्यम से फारसी था।हिंदुस्तानी में ज्यादातर अरबी शब्द फारसी से आते हैं, जिसमें बहुत सारे अरबी से उधार शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त, चूंकि 1960 के दशक तक पुर्तगाल के पास भारत में क्षेत्र थे, इसलिए हिंदी में "टेबल" (पुर्तगाली मेसा से) या कमीज, "शर्ट", जैसे कैमिसा से पुर्तगाली शब्द की उचित मात्र है।बेशक, अंग्रेजी औपनिवेशीकरण और आधुनिक वैश्वीकरण के माध्यम से, हिंदी में "प्रोफेसर" से "बॉटल" या प्रैफेसर जैसे बोटल जैसे अंग्रेजी शब्द भी अच्छी संख्या में हैं। जाहिर है, अन्य भारतीय भाषाओं ने भी हिंदी को नए शब्दों के साथ प्रदान किया है, जैसे कि हिंदी शब्दों ने अन्य भाषाओं जैसे कि तमिल या मराठी में लिया है।

हिंदी और उर्दू एक भाषा विभाजन या एक पुनर्मिलन?उर्दू को सबसे पहले मुगल साम्राज्य में खड़ी बोली के एक संस्करण के रूप में देखा जाता है, जिसमें जबान-ए उर्दू-ए मुअला, जिसे "अदालत की भाषा (या शिविर)" कहा जाता है। यह हिंदी के समानांतर अस्तित्त्व में था और अंतत: देश की स्थापना के समय पाकिस्तान की आधिकारिक भाषा बन गई उर्दू और हिंदी दोनों को हिंदुस्तानी का रजिस्टर माना जाता है–ये एक ही भाषा के दो संस्करण, जैसे कि ब्रिटिश अंग्रेजी और अमेरिकी अंग्रेजी दोनों अंग्रेजी के रजिस्टर हैं।हिंदी और उर्दू दोनों हिंदुस्तानी भाषाएं हैं। बहुत से लोग हिंदी भाषा सीखने के लिए प्रयास कर रहे हैं क्योंकि भारत अधिक सामाजिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो रहा है, भारत एक वैश्विक महाशक्ति भूमिका में बढ़ रहा है और हिंदी में विश्वगुरु बनने की अपार संभावनाएं हैं। हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्–ति का एक विशाल दर्पण भी है। इसकी मृदु-ध्वनियाँ भारतीय कविता को परिभाषित करती हैं। वास्तव में हिंदी पूरे देश को संगीतमय सम्मोहन से बांधती है और एक जीवंत समाज की परिकल्पना प्रदान करती है।

2

भाषा के विभिन्न रूप

वस्तुतः जितने व्यक्ति हैं, उतनी भाषाएं हैं, कारण यह है कि, किन्हीं दो व्यक्तियों के बोलने का ढंग एक नहीं होता। इसका प्रमाण यह है कि, अंधकार में भी किसी की वाणी सुनकर हम उसे पहचान लेते हैं। यह अन्तर केवल बोलने के ढंग से ही नहीं, उच्चारण, शब्द भंडार, यहां तक कि वाक्य विन्यास में भी देखा जाता है। साहित्य में इसी का अध्ययन शैली के अंतर्गत होता है। प्रेमचंद्र की भाषा प्रसाद से भिन्न है और पन्त की निराला से। हिंदी का प्रयोग तो यों सभी करते हैं, फिर यह अंतर क्यों? जो इन लेखकों या कवियों की रचनाओं से परिचित हैं, वे दो – चार पंक्तियां पढ़ते – पढ़ते भी अन्यास कह देते हैं कि, यह अमुक की भाषा है। प्रेमचंद और प्रसाद की भाषा में किसी को भ्रम नहीं हो सकता। यह इसलिए कि उस भाषा के पीछे उनका व्यक्तित्त्व है व्यक्तित्त्व का यह प्रभाव शिक्षित व्यक्तियों की ही भाषा में नहीं, बल्कि अशिक्षितों की भाषा में भी उसी रूप में पाया जाता है। जिसका जैसा व्यक्तित्त्व है, उसकी भाषा उसी सांचे में ढल जाती है।

इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर भाषा के अनंत रूप हो जाते हैं वस्तुतः उसके अनंत रूप है भी। भाषा का आभिर्भाव व्यक्ति में होता है, इसलिए भाषा की उत्पत्ति का आधार वही है, किंतु उसका प्रेरक तत्त्व समाज है क्योंकि भाषा का उपयोग सामाजिक योग – क्षेम के लिए किया जाता है। भाषा के वैयक्तिक और सामाजिक पक्षों की चर्चा अंशतः पहले भी हो चुकी है। भाषा के रूपों पर

विचार करते समय इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये दोनों पक्ष भाषा के पूरक हैं, एक के बिना दूसरे की सत्ता ही संभव नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति की भाषा भिन्न होती है। यदि इस तथ्य तक ही अपने को सीमित रखें तो भाषा के भी अनंत भेद मानने होंगे। एक दृष्टि से यह सही है, किंतु सामाजिक दृष्टि से विचार न करना दृष्टि की एकांगिता का घोतक होगा।

वक्ता के भेद से भाषा के अनेक रूप हो जाते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति की निरपेक्ष सत्ता नहीं है, उसी प्रकार उसकी भाषा की भी निरपेक्ष सत्ता नहीं है। विभिन्न दृष्टियों से देखने पर एक ही व्यक्ति विभिन्न श्रेणियों में आता है, उदाहरणार्थ, शिक्षा, संस्–ति, व्यवसाय, वातावरण, पर्यावरण, आदि के भेद से व्यक्ति की स्थिति और संस्कार में भेद पड़ता है जिसका अनिवार्य प्रभाव भाषा पर पड़ता है। अंग्रेजी पढ़ें सभी लोग एक ही भाषा का व्यवहार नहीं करते। डॉक्टर की भाषा से वकील की भाषा भिन्न होती है तो इन्जीनियर की भाषा से भाषाविज्ञानी की। स्थूल दृष्टि से देखने पर सभी अधित और शिक्षित हैं, किंतु उनके विशेषीकरण का प्रभाव उनकी भाषा में भी परिलक्षित होता है। भाषा के पार्थक्य में उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त इतिहास, भूगोल, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आदि का भी पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है। भाषा के रूपों का विचार करते समय इन सारी बातों को स्मरण रखना आवश्यक है।

मुहावरे

मुहावरा मूलतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बातचीत करना या उत्तर देना। कुछ लोग मुहावरे को 'रोजमर्रा', 'बोलचाल', 'तर्जेकलाम', या 'इस्तलाह' कहते हैं, किन्तु इनमें से कोई भी शब्द 'मुहावरे' का पूर्ण पर्यायवाची नहीं बन सका। संस्कृत वाङ्मय में मुहावरा का समानार्थक कोई शब्द नहीं पाया जाता। कुछ लोग इसके लिए 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' अथवा 'भाषा–सम्प्रदाय' का प्रयोग करते हैं। वी0एस0 आप्टे ने अपने 'इंगलिश–संस्कृत कोश' में मुहावरे के पर्यायवाची शब्दों में 'वाक–पद्धति', 'वाक् रीति', 'वाक–व्यवहार' और 'विशिष्ट स्वरूप' को लिखा है। पराड़कर जी ने 'वाक–सम्प्रदाय' को मुहावरे का पर्यायवाची माना है। काका कालेलकर ने 'वाक–प्रचार' को 'मुहावरे' के लिए 'रूढ़ि' शब्द का सुझाव दिया है। यूनानी भाषा में 'मुहावरे' को 'ईडियोमा', फ्रेंच में 'इंडियाटिस्मी' और अंग्रेजी में 'ईडिअम' कहते हैं।

मोटे तौर पर जिस सुगठित शब्द-समूह से लक्षणाजन्य और कभी-कभी व्यंजनाजन्य कुछ विशिष्ट अर्थ निकलता है उसे मुहावरा कहते हैं। कई बार यह व्यंग्यात्मक भी होते हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में अद्‌भुत चित्रमयता आती है। मुहावरों के बिना भाषा निस्तेज, नीरस और निष्प्राण हो जाती है। मुहावरे रोजमर्रा के काम के हैं।

हिन्दी भाषा में बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है।

परिचय एवं परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से 'मुहावरे' की परिभाषा की है जिनमें से कुछेक यहाँ दी जा रही हैं–

डॉ. उदय नारायण तिवारी ने लिखा है-

हिन्दी-उर्दू में लक्षण अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही 'मुहावरा' कहते हैं।'

'एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी' में ए0एस0 हॉर्नबी ने लिखा है कि

'मुहावरा' शब्दों का वह क्रम या समूह है जिसमें सब शब्दों का अर्थ एक साथ मिलाकर किया जाता है।

'चौम्बर्स ट्वेन्टीथ सेंचुरी डिक्शनरी' के अनुसार,

किसी भाषा की विशिष्ट अभिव्यंजना-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'ऑक्सफोर्ड कन्साइज डिक्शनरी' के अनुसार,

किसी भाषा की अभिव्यंजना के विशिष्ट रूप को 'मुहावरा' कहते हैं। एक अन्य पक्ष है कि, विशिष्ट शब्दों विचित्र प्रयोगों एवं प्रयोग-सिद्ध विशिष्ट वाक्यांशों वाक्य-पद्धति को 'मुहावरा' कहते हैं।

'मुहावरा' की सबसे अधिक व्यापक तथा सन्तोषजनक परिभाषा डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने निम्न शब्दों में दी है–

प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश या शब्द-समूह को मुहावरा कहते हैं।'

मुहावरे भाषा की नींव के पत्थर हैं जिस पर उसका भव्य भवन आज तक रुका हुआ है और मुहावरे ही उसकी टूट-फूट को ठीक करते हुए गर्मी, सर्दी और बरसात के प्रकोप से अब तक उसकी रक्षा करते चले आ रहे हैं। मुहावरे भाषा को सुदृढ़, गतिशील और रुचिकर बनाते हैं। उनके प्रयोग से भाषा में चित्रमयता आती है जैसे-अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना, दाँतों तले उँगली दबाना, रंगा सियार होना आदि।

मुहावरों का निर्माण

लक्षणा का प्रयोग होने से
शब्दों की तीन शक्तियां होती हैं–
(क) अभिधा,
(ख) लक्षणा, और
(ग) व्यंजना।

जब किसी शब्द या शब्द-समूह का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है, तब वहाँ उसकी अभिधा शक्ति होती है। अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति अर्थ को अभिधेयार्थ या मुख्यार्थ कहते हैं, जैसे 'सिर पर चढ़ना' का अर्थ किसी चीज को किसी स्थान से उठा कर सिर पर रखना होगा। परन्तु जब मुख्यार्थ का बोध न हो और रूढ़ि या प्रसिद्ध के कारण अथवा किसी विशेष प्रयोजन को सूचित करने के लिए, मुख्यार्थ से संबद्ध किसी अन्य अर्थ का ज्ञान हो तब जिस शक्ति के द्वारा ऐसा होता है उसे लक्षणा कहते हैं। यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित होती है। इसीलिए 'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथ ने लिखा है–

मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो यथान्योऽर्थ प्रतीयते।
रूढ़े प्रयोजनाद्वासो लक्षणा शक्तिरर्पिता॥

लक्षणा से 'सिर पर चढ़ने' का अर्थ आदर देना होगा। मम्मट ने भी 'काव्य प्रकाश' में और अधिक बोधगम्य शब्दों में उनके अभिमत का समर्थन किया है। उदाहरणार्थ, ''अंगारों पर लोटना', 'आँख मारना', 'आँखों में रात काटना', 'आग से खेलना', 'आसमान पर दीया जलाना', 'दूध-घी की नदियां बहाना', 'खून चूसना', 'चैन की बंशी बजाना', 'ठहाका लगाना', 'लम्बी बांह होना', 'विजय का डंका बजाना' और शेर बनना' आदि में लक्षणा शक्ति का प्रयोग हुआ है। इसलिए वे मुहावरे हैं। परन्तु इस सन्दर्भ से यह द्रष्टव्य है कि, लक्षणा के समस्त उदाहरण मुहावरे के अन्तर्गत नहीं आ सकते। लक्षणा के केवल वही उदाहरण

मुहावरों के अन्तर्गत आ सकते हैं, जो चिर अभ्यास के कारण रूढ़ या प्रसिद्ध हो गए हैं।

व्यंजना का प्रयोग होने से

जब अभिधा और लक्षणा अपना काम करके विरत हो जाती हैं तब जिस शक्ति से शब्द-समूहों या वाक्यों के किसी अर्थ की सूचना मिलती है उसे 'व्यंजना' कहते हैं। मुहावरों में जो व्यंग्यार्थ रहता है, वह किसी एक शब्द के अर्थ के कारण नहीं बल्कि सब शब्दों के शृंखलित अर्थों के कारण होता है, अथवा यह कहें कि पूरे मुहावरे के अर्थ में रहता है। इस प्रकार 'सिर पर चढ़ना' मुहावरे का व्यंग्यार्थ न तो 'सिर' पर निर्भर करता है न 'चढ़ाने' पर वरन पूरे मुहावरे का अर्थ होता है 'उच्छृंखल, अनुशासनहीन अथवा ढीठ बनाना।' यह व्यंग्यार्थ अभिधेयार्थ तथा लक्षणा अभिव्यक्ति अर्थ से भिन्न होता है।

अलंकारों का प्रयोग

अनेक मुहावरे में अलंकारों का प्रयोग हुआ रहता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि, प्रत्येक मुहावरा अलंकार होता है अथवा प्रत्येक अलंकारयुक्त वाक्यांश मुहावरा होता है। नीचे कुछ मुहावरे दिए जाते हैं जिनमें अलंकारों का प्रयोग हुआ है–

(क) सादृश्यमूलक मुहावरे–लाल अंगारा होना (उपमा), पैसा ही पुरुषत्व और पुरुषत्व ही पैसा है (उपमेयोपमा), अंगार बरसाना (रूपक), सोना सोना ही है (अनन्वय), आदि।

(ख) विरोधामूलक मुहावरे–इधर-उधर करना, ऊंच-नीच देखना, दाएं-बाएं न देखना, पानी से प्यास न बुझना।

(ग) सन्निधि अथवा स्मृतिमूलक मुहावरे–चूड़ी तोड़ना, चूड़ा पहनना, दिया गुल होना, दुकान बढ़ाना, मांग-कोख से भरी-पूरी रहना, आदि।

(घ) शब्दालंकारमूलक मुहावरे अंजर-पंजर ढीले होना, आंय-वायं-शांय बकना, कच्चा-पक्का, देर-सवेर, बोरिया-बिस्तर बांधना, आदि।

कथानकों, किंवदन्तियों, धर्म-कथाओं आदि पर आधारित मुहावरे

कुछ मुहावरे प्रथाओं पर आधारित होते हैं, जैसे– बीड़ा उठाना। मध्य युग में राज-दरबारों में यह प्रथा थी कि जब कोई दुष्कर कार्य करना होता था तब

सामन्तों और वीरों आदि को बुलाकर उन्हें उसके सम्बन्ध में सब बातें बता दी जाती थीं और थाली में पान रख दिया जाता था। जो वीर उस काम को करने का दायित्व अपने ऊपर लेता था, वह थाली से बीड़ा उठा लेता था। कुछ मुहावरे कहानियों पर आधारित होते थे, जैसे टेढ़ी खीर होना, ढपोरशंख होना, सोने का मृग होना, आदि। मुहावरे रोजमर्रा के काम के है।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का जातिवाचक संज्ञाओं की भाँति प्रयोग

कभी-कभी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग जातिवाचक संज्ञाओं की भांति करके मुहावरे बनाए जाते हैं, जैसे– कुंभकरण की नींद, द्रौपदी का चीर, जयचंद होना, युधिष्ठिर बनना, विभीषण होना, हरिश्चन्द्र बनना, आदि।

अस्पष्ट ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

जब मनुष्य प्रबल भावावेश में होते हैं तब उनके मुंह से कुछ अस्पष्ट ध्वनियां निकल जाती हैं, जो बाद में किसी एक अर्थ में रूढ़ हो जाती हैं और मुहावरे कहलाने लगती हैं। ऐसे कुछ भावावेशों और उनमें निकली हुई ध्वनियों के आधार पर बने हुए मुहावरों के उदाहरण निम्नांकित हैं–

(क) हर्ष में–आह-हा, वाह-वाह, आदि।

(ख) दु:ख में–आह निकल पड़ना, सी-सी करना, हाय-हाय मचाना, आदि।

(ग) क्रोध में– उंह-हूं करना, धत् तेरे की, आदि।

(घ) घृणा में–छि-छि करना, थू-थू करना।

मनुष्येतर चौतन्य सृष्टि की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) पशु-वर्ण की ध्वनियों पर आधारित

टर-टर करना, भों-भों करना, में-में करना, आदि।

(ख) पक्षी और कीट-पतंगों की ध्वनियों पर आधारित

कांव-कांव करना, कुकडू-कूं बोलना, भिन्ना जाना आदि।

जड़ वस्तुओं की ध्वनियों पर आधारित मुहावरे

(क) कठोर वस्तुओं की संघर्ष-जन्य ध्वनियों के अनुकरण पर आधारित–फुस-फुस करना, फुस-फुस होना, आदि।

(ख) तरल पदार्थों की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित–कल-कल करना, कुल-कुल करना या होना, गड़-गड़ करना, आदि।

(ग) वायु की गति से उत्पन्न ध्वनि पर आधारित–सर-सराहट होना, सांय-सांय करना, आदि।

शारीरिक चेष्टाओं के आधार पर बने हुए मुहावरे

शारीरिक चेष्टाएं मनोभाव प्रकट करती हैं और उनके आधार पर कुछ मुहावरे बनते हैं, जैसे-छाती कूटना या पीटना, दांत पीसना, नाचने लगना, पूंछ हिलाना, पैर पटकना, मुंह बनाना, मूछों पर ताव देना, आदि।

मनोवैज्ञानिक कारणों से मुहावरों की उत्पत्ति

(क) अचानक किसी संकट में आने से सम्बन्धित मुहावरे–आठों पहर सूली पर रहना, आवे का आवा बिगड़ना, कहीं का न रहना, तकदीर फूटना, आदि। (ख) अतिशयोक्ति की प्रवृत्ति से उद्‌भुत मुहावरे–आसमान के तारे तोड़ना, कलेजा बांसों उझलना, खून की नदियां बहाना, आदि। (ग) भाषा को अलंकृत और प्रभावोत्पादक बनाने के प्रयास से उद्‌भुत मुहावरे–ईद का चांद होना, गूलर का फूल होना, सरसों-सा फूलना, आदि।

किसी शब्द की पुनरावृत्ति पर आधारित मुहावरे

अभी-अभी, छिः-छिः, थुड़ी-थुड़ी करना, छिप-छिप कर, तिल-तिल भर, थोड़ा-थोड़ा करके, आदि।

दो क्रियाओं का योग करके बनाए हुए मुहावरे

उठना-बैठना, खाना-पीना, पढ़ाना-लिखना, आदि।

दो संज्ञाओं को मिलाकर बनाए हुए मुहावरे

कपड़ा-लत्ता, चूल्हा-चौका, दवा-दारू, गाजर-मूली, नदी-नाला, भोजन-वस्त्र, रोजी-रोटी, आदि।

हिन्दी के एक शब्द के साथ उर्दू के दूसरे शब्द का योग करके बनाए हुए मुहावरे

दान-दहेज, मेल मुहब्बत होना, मेल-मुलाकात रखना, दिशा-मैदान जाना, आदि।

अन्य भाषाओं से लिए गए मुहावरे

(क) संस्कृत से–अर्द्धचन्द्राकार लेकर निकालना–अर्द्धचन्द्र दत्वा निस्सारिता (पंचतंत्र)। जले पर नमक छिड़कना–क्षते क्षारमिवासह्यम। (भवभूति)

(ख) फारसी और उर्दू से–एक जान दो काबिल, काफूर हो जाना, कारूं का खजाना, कैफियत तलब करना, शीरो-शकर होना।

(ग) अंग्रेजी से–ताश के महल की तरह ढह जाना–fall or collapse like a house of card: घोड़े के आगे गाड़ी रखना–put the cart before the horse% मूर्खों का स्वर्ग–fool's paradiseA

मुहावरों में शब्दों की अपरिवर्तनीयता

अनेक मुहावरे किसी-न-किसी के अनुभव पर आधारित होते हैं। अतएव यदि उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या उलटफेर किया जाता है तो उनका अनुभव-तत्त्व नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ, 'पानी जाना' एक मुहावरा है, इसके बदले में हम 'जल-जल होना' नहीं कह सकते। ऐसे ही 'गधे को बाप बनाना' की जगह पर 'बैल को बाप बनाना' और 'मटरगश्ती करना' की जगह पर 'गेहूँगश्ती' या 'चनागश्ती' नहीं कहा जा सकता है।

लोकोक्ति

बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है। इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते।

लोकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं, जो किसी खास समूह, उम्र वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान विशेष के भूगोल, संस्-ति, भाषाओं का मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं।

कुछ उदाहरण मुहावरों के है–
नौ दो ग्यारह होना–रफूचक्कर होना या भाग जाना
असमंजस में पड़ना–दुविधा में पड़ना
आँखों का तारा बनना–अधिक प्रिय बनना
आसमान को छूना–अधिक प्रगति कर लेना
किस्मत का मारा होना–भाग्यहीन होना
गर्व से सीना फूल जाना–अभिमान होना
गले लगाना–स्नेह दिखाना
चौन की साँस लेना–निश्चिन्त हो जाना
जबान घिस जाना–कहते कहते थक जाना
टस से मस न होना–निश्चय पर अटल रहना
तहस नहस हो जाना–बर्बाद हो जाना
ताज्जुब होना–आश्चर्य होना
दिल बहलाना–मनोरंजन करना
भागते भूत की लंगोटी भली

वाक्य में प्रयोग

लोकोक्ति का वाक्य में ज्यों का त्यों उपयोग होता है। मुहावरे का उपयोग क्रिया के अनुसार बदल जाता है, लेकिन लोकोक्ति का प्रयोग करते समय इसे बिना बदलाव के रखा जाता है। कभी–कभी काल के अनुसार परिवर्तन सम्भव है।

अंधा पीसे कुत्ते खायें

प्रयोग–पालिका की किराये पर संचालित दुकानों में डीएम को अंधा पीसे कुत्ते खायें की हालत देखने को मिली।

एकार्थक शब्द

एकार्थक (समान अर्थ) प्रतीत होने वाले शब्दों को एकार्थक शब्द कहते हैं। उदाहरण–

	शब्द	अर्थ
1	अपराध	सामाजिक एवं सरकारी कानून का उल्लंघन।
	पाप	नैतिक एवं धार्मिक नियमों को तोड़ना।

2	अमूल्य	जो चीज मूल्य देकर भी प्राप्त न हो सके।
	बहुमूल्य	जिस चीज का बहुत मूल्य देना पड़ा।
3	अस्त्र	जो हथियार हाथ से फेंककर चलाया जाए। जैसे–बाण।
	शस्त्र	जो हथियार हाथ में पकड़े–पकड़े चलाया जाए। जैसे––पाण।
4	आज्ञा	बड़ों का छोटों को कुछ करने के लिए आदेश।
	अनुमति	प्रार्थना करने पर बड़ों द्वारा दी गई सहमति।
5	मंत्रणा	गोपनीय रूप से परामर्श करना।
	परामर्श	पूर्णतया किसी विषय पर विचार–विमर्श कर मत प्रकट करना।
6	स्वागत	किसी के आगमन पर सम्मान।
	अभिनंदन	अपने से बड़ों का विधिवत सम्मान।
7	अहंकार	अपने गुणों पर घमंड करना।
	अभिमान	अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझना।
	दंभ	अयोग्य होते हुए भी अभिमान करना।
8	महिला	कुलीन घराने की स्त्री।
	पत्नी	अपनी विवाहित स्त्री।
	स्त्री	नारी जाति की बोधक।
9	अलौकिक	जो इस जगत में कठिनाई से प्राप्त हो। लोकोत्तर।
	अस्वाभाविक	जो मानव स्वभाव के विपरीत हो।
	असाधारण	सांसारिक होकर भी अधिकता से न मिले। विशेष।
10	आनंद	खुशी का स्थायी और गंभीर भाव।
	आह्लाद	क्षणिक एवं तीव्र आनंद।
	उल्लास	सुख–प्राप्ति की अल्पकालिक क्रिया, उमंग।
	प्रसन्नता	साधारण आनंद का भाव।
11	ईर्ष्या	दूसरे की उन्नति को सहन न कर सकना।
	डाह	ईर्ष्यायुक्त जलन।
	द्वेष	शत्रुता का भाव।
	स्पर्धा	दूसरों की उन्नति देखकर स्वयं उन्नति करने का प्रयास करना।
12	अनुनय	किसी बात पर सहमत होने की प्रार्थना।

	विनय	अनुशासन एवं शिष्टतापूर्ण निवेदन।
	आवेदन	योग्यतानुसार किसी पद के लिए कथन द्वारा प्रस्तुत होना।
	प्रार्थना	किसी कार्य-सिद्धि के लिए विनम्रतापूर्ण कथन।
13	इच्छा	किसी वस्तु को चाहना।
	उत्कंठा	प्रतीक्षायुक्त प्राप्ति की तीव्र इच्छा।
	आशा	प्राप्ति की संभावना के साथ इच्छा का समन्वय।
	स्पृहा	उत्-ष्ट इच्छा।
14	सुंदर	आकर्षक वस्तु।
	चारु	पवित्र और सुंदर वस्तु।
	रुचिर	सुरुचि जाग्रत करने वाली सुंदर वस्तु।
	मनोहर	मन को लुभाने वाली वस्तु।
15	मित्र	समवयस्क, जो अपने प्रति प्यार रखता हो।
	सखा	साथ रहने वाला समवयस्क।
	सगा	आत्मीयता रखने वाला।
	सुहृदय	सुंदर हृदय वाला, जिसका व्यवहार अच्छा हो।
16	अंत:करण	मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार की समष्टि।
	चित्त	स्मृति, विस्मृति, स्वप्न आदि गुणधारी चित्त।
	मन	सुख-दुख की अनुभूति करने वाला।
17	नमस्ते	समान अवस्था वालो को अभिवादन।
	नमस्कार	समान अवस्था वालों को अभिवादन।
	प्रणाम	अपने से बड़ों को अभिवादन।
	अभिवादन	सम्माननीय व्यक्ति को हाथ जोड़ना।
18	अनुज	छोटा भाई।
	अग्रज	बड़ा भाई।
	भाई	छोटे-बड़े दोनों के लिए।

शब्द के भेद

व्युत्पत्ति के आधार पर शब्द-भेद

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द के निम्नलिखित भेद हैं- रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़।

रूढ़–जो शब्द किन्हीं अन्य शब्दों के योग से न बने हों और किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हों तथा जिनके टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता, वे रूढ़ कहलाते हैं। जैसे–कल, पर। इनमें क, ल, प, र का टुकड़े करने पर कुछ अर्थ नहीं हैं। अतः ये निरर्थक हैं।

यौगिक–जो शब्द कई सार्थक शब्दों के मेल से बने हों, वे यौगिक कहलाते हैं। जैसे–देवालय=देव्आलय, राजपुरुष=राज़पुरुष, हिमालय=हिम्आलय, देवदूत=देव्दूत आदि। ये सभी शब्द दो सार्थक शब्दों के मेल से बने हैं।

योगरूढ़–वे शब्द, जो यौगिक तो हैं, किन्तु सामान्य अर्थ को न प्रकट कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं। जैसे–पंकज, दशानन आदि। पंकज=पंक्ज (कीचड़ में उत्पन्न होने वाला) सामान्य अर्थ में प्रचलित न होकर कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अतः पंकज शब्द योगरूढ़ है। इसी प्रकार दश (दस) आनन (मुख) वाला रावण के अर्थ में प्रसिद्ध है।

उत्पत्ति के आधार पर शब्द–भेद

उत्पत्ति के आधार पर शब्द के निम्नलिखित 4भेद हैं–

तत्सम

संस्कृत भाषा के शब्द तत्सम कहलाते हैं। जैसे–अग्नि, क्षेत्र, वायु, ऊपर, रात्रि, सूर्य आदि।

तद्भव

जो शब्द रूप बदलने के बाद संस्कृत से हिन्दी में आए हैं वे तद्भव कहलाते हैं। जैसे–आग (अग्नि), खेत (क्षेत्र), रात (रात्रि), सूरज (सूर्य) आदि।

देशज

जो शब्द क्षेत्रीय प्रभाव के कारण परिस्थिति व आवश्यकतानुसार बनकर प्रचलित हो गए हैं वे देशज कहलाते हैं। जैसे–पगड़ी, गाड़ी, थैला, पेट, खटखटाना आदि।

विदेशज

विदेशी जातियों के संपर्क से उनकी भाषा के बहुत से शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे शब्द विदेशी अथवा विदेशज कहलाते हैं। जैसे–स्कूल,

अनार, आम, कैंची, अचार, पुलिस, टेलीफोन, रिक्शा आदि। ऐसे कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है।

अंग्रेजी- कॉलेज, पैंसिल, रेडियो, टेलीविजन, डॉक्टर, लैटरबक्स, पैन, टिकट, मशीन, सिगरेट, साइकिल, बोतल, फोटो, डाक्टर स्कूल आदि।

फारसी- अनार, चश्मा, जमींदार, दुकान, दरबार, नमक, नमूना, बीमार, बरफ, रूमाल, आदमी, चुगलखोर, गंदगी, चापलूसी आदि।

अरबी- औलाद, अमीर, कत्ल, कलम, कानून, खत, फकीर, रिश्वत, औरत, कैदी, मालिक, गरीब आदि।

तुर्की- कैंची, चाकू, तोप, बारूद, लाश, दारोगा, बहादुर आदि।

पुर्तगाली- अचार, आलपीन, कारतूस, गमला, चाबी, तिजोरी, तौलिया, फीता, साबुन, तंबाकू, कॉफी, कमीज आदि।

फ्रांसीसी- पुलिस, कार्टून, इंजीनियर, कर्फ्यू, बिगुल आदि।

चीनी- तूफान, लीची, चाय, पटाखा आदि।

यूनानी- टेलीफोन, टेलीग्राफ, ऐटम, डेल्टा आदि।

जापानी- रिक्शा आदि।

डच-बम आदि।

प्रयोग के आधार पर शब्द-भेद

प्रयोग के आधार पर शब्द के निम्नलिखित दो भेद होते है-1.विकारी शब्द 2.अविकारी शब्द

1. विकारी शब्द के चार भेद होते है

संज्ञा

सर्वनाम

विशेषण

क्रिया

अविकारी शब्द के चार भेद होते है

क्रिया-विशेषण

संबंधबोधक

समुच्चयबोधक

विस्मयादिबोधक

इन उपर्युक्त आठ प्रकार के शब्दों को भी विकार की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है- 1. विकारी 2. अविकारी

1. विकारी शब्द–जिन शब्दों का रूप-परिवर्तन होता रहता है वे विकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे-कुत्ता, कुत्ते, कुत्तों, मैं मुझे, हमें अच्छा, अच्छे खाता है, खाती है, खाते हैं। इनमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।
2. अविकारी शब्द–जिन शब्दों के रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है वे अविकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे-यहाँ, किन्तु, नित्य और, हे अरे आदि। इनमें क्रिया-विशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक आदि हैं।

अर्थ की दृष्टि से शब्द-भेद

अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं- 1. सार्थक 2. निरर्थक

1. सार्थक शब्द–जिन शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ हो वे शब्द सार्थक शब्द कहलाते हैं। जैसे-रोटी, पानी, ममता, डंडा आदि।
2. निरर्थक शब्द–जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता है वे शब्द निरर्थक कहलाते हैं। जैसे-रोटी-वोटी, पानी-वानी, डंडा-वंडाइनमें वोटी, वानी, वंडा आदि निरर्थक शब्द हैं। निरर्थक शब्दों पर व्याकरण में कोई विचार नहीं किया जाता है।

शब्दार्थ ग्रहण

बच्चा समाज में सामाजिक व्यवहार में आ रहे शब्दों के अर्थ कैसे ग्रहण करता है, इसका अध्ययन भारतीय भाषा चिन्तन में गहराई से हुआ है और अर्थग्रहण की प्रक्रिया को शक्ति के नाम से कहा गया है।

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।

वाक्यस्य शेषाद् विवृत्तेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः --
(न्यायसिद्धांतमुक्तावली-शब्दखंड)

इस कारिका में अर्थग्रहण के आठ साधन माने गए हैं–

1. व्याकरण, 2. उपमान, 3. कोश, 4. आप्त वाक्य

5. वृद्ध व्यवहार-लोक व्यवहार, 6. वाक्य शेष, 7. विवृत्ति, 8. सिद्ध पद सान्निध्य

शब्द-शक्ति

अभिधा, लक्षणा, व्यंजना

प्रत्येक शब्द से जो अर्थ निकलता है, वह अर्थ-बोध कराने वाली शब्द की शक्ति है।

शब्द की तीन शक्तियाँ हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। जिनमें वे शक्तियाँ होती हैं वे शब्द भी तीन प्रकार के होते हैं- वाचक, लक्षक और व्यंजक। इनके अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ।

वाचक शब्द साक्षात संकेतित अर्थ का बोधक होता है। वाचक शब्दों के चार भेद होते हैं- जातिवाचक शब्द, गुणवाचक शब्द (विशेषण), क्रियावाचक तथा द्रव्यवाचक शब्द।

अभिधा शक्ति- मुख्य अर्थ की बोधिका शब्द की प्रथमा शक्ति का नाम अभिधा है। अभिधा शक्ति से पद-पदार्थ का पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात होता है। अभिधा शक्ति से जिन वाचक शब्दों का अर्थ बोध होता है, उन्हें क्रमशः रूढ़ (पेड़, पौधा), यौगिक (पाठशाला, मिठाईवाला) तथा योगरूढ़ (चारपाई) कहा जाता है।

मुख्यार्थ से भिन्न लक्षणा शक्ति द्वारा अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसके अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं। शब्द में यह आरोपित है और अर्थ में इसका स्वाभाविक निवास है। जैसे- 'वह बड़ा शेर है' में 'शेर' बहादुर का लक्ष्यार्थ है।

लक्षणा शक्ति- मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढि-प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं। लक्षणा के लक्षण में तीन बातें मुख्य हैं- मुख्यार्थ की बाधा, मुख्यार्थ का योग, रूढिघ या प्रयोजन।

व्यंजना शक्ति - व्यंजना के दो भेद हैं- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। शाब्दी व्यंजना के दो भेद होते हैं- एक अभिधामूला और दूसरी लक्षणामूला।

व्यंजना

व्यंजना शब्द शक्ति–जब किसी शब्द के अभिप्रेत अर्थ का बोध न तो मुख्यार्थ से होता है और न ही लक्ष्यार्थ से, अपितु कथन के संदर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ से या व्यंग्यार्थ से प्रकट होता हो वहाँ वह शब्द व्यंजक कहलाता है, उसके द्वारा प्रकट होने वाला अर्थ व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ कहलाता है तथा उस शब्द की शक्ति को व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। जैसे–सूरज डूब

गया इस वाक्य का वाच्यार्थ या मुख्यार्थ एक ही रहने पर भी अलग-अलग भावार्थ लगा लिए जाने के कारण यहाँ व्यंजना शब्द शक्ति मानी जाती है। इस शब्द शक्ति को ध्वन्यार्थ इसलिए कहा जाता है कि, इसमें अर्थ ध्वनित होता है। जैसे घंटे पर चोट लगने पर जोर जोर की टंकार होती है, उसके बाद उसमें से मंद-मंद झंकार निकलती है, जो देर तक गूँजती रहती है। उसी प्रकार इस शब्द शक्ति में भी शब्द से पहले मुख्यार्थ का बोध होता है उसके बाद वक्ता, श्रोता और संदर्भ भेद से अन्य अनेक अर्थ ध्वनित होते हैं। जैसे–पुजारी ने कहा, "अरे ! संध्या हो गई" व्यंजना, शब्दशक्ति का एक प्रकार है।

प्रकार

व्यंजना के दो भेद हैं- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना।1 शाब्दी व्यंजना–जहाँ शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है और वह शब्द हटा देने पर व्यंग्यार्थ समाप्त हो जाता है, वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है। जैसे–चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर।। यहाँ वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्दों के कारण व्यंजना सौन्दर्य है। इनके दो-दो अर्थ हैं-राधा, गाय तथा श्रीकृष्ण, बैल यदि वृषभानुजा, हलधर के वीर शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो व्यंजना समाप्त हो जाएगी शाब्दी व्यंजना के भेद - 1 अभिधामूला शाब्दी व्यंजना-जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, वहाँ किस अर्थ विशेष को ग्रहण किया जाए, इसका निर्णय अभिधामूला शाब्दी व्यंजना करती है। अभिधामूला शाब्दी व्यंजना में शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाता है तथा व्यंग्यार्थ का बोध मुख्यार्थ के माध्यम से होता है। जैसे–सोहत नाग न मद बिना, तान बिना नहीं राग यहाँ नाग और राग दोनों शब्द अनेकार्थी हैं, परन्तु 'वियोग' कारण से इनका अर्थ नियंत्रित कर दिया गया है। इसलिए यहाँ पर 'नाग' का अर्थ हाथी और 'राग' का अर्थ रागिनी अब यदि यहाँ नाग का पर्यायवाची भुजंग रख दिया जाए तो यह व्यंग्यार्थी हो जाएगा 2. लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना–जहाँ किसी शब्द के लाक्षणिक अर्थ से उसके व्यंग्यार्थ पर पहुँचा जाए और शब्द का पर्याय रख देने से व्यंजना का लोप हो जाए, वहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना होती है। जैसे - आप तो निरे वैशाखनंदन हैं। आर्थी व्यंजना–जब व्यंजना किसी शब्द विशेष पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित होती है, तो वहाँ आर्थी व्यंजना मानी जाती है। जैसे - अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

यहाँ नीचे वाली पंक्ति से नारी के दो गुणों की व्यंजना होती है–उनका ममत्व भाव एवं कष्ट सहने की क्षमता यहाँ व्यंग्यार्थ शब्द से नहीं अपितु अर्थ से है।

शाब्दी व्यंजना

शाब्दी व्यंजना के दो भेद होते हैं- एक अभिधामूला और दूसरी लक्षणामूला।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

संयोग आदि के द्वारा अनेकार्थ शब्द के प्रकृष्णतोपयोगी एकार्थ के नियंत्रित हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा अन्यार्थ का ज्ञान होता है वह शाब्दी व्यंजना है।

मुखर मनोहर श्याम रंग बरसत मुद अनुरूप।
झूमत मतवारो झमकि बनमाली रसरूप॥

यहाँ 'वनमाली' शब्द मेघ और श्रीकृष्ण दोनों का बोधक है। इसमें एक अर्थ के साथ दूसरे अर्थ का भी बोध हो जाता है। ध्यान दें कि यहाँ 'लेष नहीं। क्योंकि रूढ़ वाच्यार्थ ही इसमें प्रधान है। अन्य अर्थ का आभास-मात्र है। 'लेष में शब्द के दोनों अर्थ अभीष्ट होते है- समान रूप से उस पर कवि का ध्यान रहता है। अनेकार्थ शब्द के किसी एक ही अर्थ के साथ प्रसिद्ध अर्थ भी होते हैं। जैसे-

शंख-चक्र-युत हरि कहे, होत विष्णु को ज्ञान।

'हरि' के सूर्य, सिंह, वानर आदि अनेक अर्थ हैं, कितु शंख-चक्र-युत कहने से यहाँ विष्णु का ही ज्ञान होता है।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है वह प्रयोजन जिस शक्ति द्वारा प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं।

आर्थी व्यंजना

जो शब्दशक्ति वक्ता (कहने वाला), बोद्धव्य (जिससे बात की जाए), वाक्य, अन्य-संनिधि, वाच्य (वक्तव्य), प्रस्ताव (प्रकरण), देश काल, चेष्टा आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है वह आर्थी व्यंजना कही जाती है। इस व्यंजना से सूचित व्यंग्य अर्थजनित होने से अर्थ होता है। अर्थात

किसी शब्द-विशेष पर अवलम्बित नहीं रहता। जैसे- प्रस्तावविशिष्टयोत्पन्नवाच्यसंभवा- में जहाँ प्रस्ताव से अर्थात प्रकरणवश वक्ता के कथन में व्यंग्यार्थ का बोध हो, वहाँ प्रस्ताव वैशिष्टयोत्पन्न आर्थी व्यंजना होती है।

स्वयं सुसजिजत करके क्षण में, प्रियतम को प्राणी के प्रण में,
हमीं भेज देती है रण में क्षात्र-धर्म के नाते। --- मैथिलीशरण गुप्त

इस पद्य से यह व्यंग्यार्थ निकलता है कि, वे कहकर भी जाते तो हम उनके इस पुण्य से कार्य में बाधक नहीं होती। उनका चुपचाप चला जाना उचित नहीं था। यहाँ प्रस्ताव या प्रकरण बुद्धदेव के गृहत्याग का है। यह प्रस्ताव न होने से यह व्यंग्य नहीं निकलता। इसी प्रकार देशवैशिष्टयोत्पन्नवाच्यसंभवा- में जहाँ स्थान की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ प्रकट हो वहाँ यह भेद होता है। जैसे-

ये गिरी सोई जहाँ मधुरी मदमत मयूरन की धुनि छाई।
या बन में कमनीय मृगीन की लोल कलोलनि डोलन भाई॥
सोहे सरितट धारि धनी जल मृच्छन को नभ नीव निकाई।
वंजुल मंजु लतान की चारू चुभीली जहाँ सुखमा सरसाई॥ --
सत्यनारायण कविरत्न

यहाँ रामचन्द्रजी के अपने वनवास के समय की सुख-स्मृतियाँ व्यंजित होती हैं, जो देश-विशेषता से ही प्रकट है। इन पृथक-पृथक विशेषताओं से वर्णन के अनुसार भी व्यंग्य सूचित होता है। शब्द शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन - अभिधा लक्षणा व्यंजना अभिधा में केवल मुख्य अर्थ या लोक प्रसिद्ध अर्थ प्रकट होता है। लक्षणा में शब्द के मुख्यार्थ से हटकर उसी के लक्षण के आधार पर अन्य अर्थ निकाला जाता है। मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न कोई अन्य अर्थ प्रकट होता है। इसका अर्थ निश्चित होता है कोई कल्पना का प्रयोग नहीं होता है। अर्थ निश्चित नहीं होता है, परन्तु अर्थ की दिशा निश्चित होती है अर्थात् लक्षण के आधार पर अर्थ निकाला जाता है। प्रसंग के आधार पर अर्थ का स्वरूप तय होता है। कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। इसके लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। लक्ष्यार्थ निकालने में अभिधा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। अभिधा व लक्षणा दोनों की आवश्यकता पड़ती है। इसमें पाठक या श्रोता वास्तविक अर्थ ग्रहण करता है। मुख्यार्थ से परे लक्षणानुसार अपनी कल्पना और तर्क से अभीष्ट अर्थ तक पहुँचता है। इसमें संकेत भर होता है। बाकी समस्त अर्थ पाठक या श्रोता प्रसंग के आधार पर ग्रहण करता है।

भाषा के तीन रूप होते हैं- वाणी, भाषा और अधिभाषा अर्थात भाषा की स्थिति तीन प्रकार से संभव है -- व्यक्ति में, समुदाय में, और सामान्य अमूर्त रूप में। सामान्य या अमूर्त रूप भाषा की वह व्यापकता है जिसमें भेद का अवकाश नहीं है। वहां पहुंचकर भाषा निरुपाधी हो जाती है, किंतु शेष दो व्यावहारिक हैं और उन पर विचार किया जा सकता है।

1. परिनिष्ठित भाषा–भाषा का आदर्श रूप वह है जिसमें वह एक वृहत्तर समुदाय के विचार - विनिमय का माध्यम बनती है, अर्थात उसका प्रयोग शिक्षा, शासन, और साहित्य रचना के लिए होता है। हिंदी, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी इसी श्रेणी की भाषाएं हैं। भाषा के इस रूप को मानक, आदर्श या परिनिष्ठित कहते हैं। जो अंग्रेजी के ' स्टैंडर्ड ' शब्द का रूपान्तर है। परिनिष्ठित भाषा विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त और व्याकरण से नियंत्रण होती है।

2. विभाषा (बोली)–एक परिनिष्ठित भाषा के अंतर्गत अनेक विभाषाएँ या बोलियां हुआ करती है। भाषा के स्थानीय भेद से प्रयोग भेद में जो अंतर पड़ता है, उसी के आधार पर विभाषा का निर्माण होता है। जैसा हमने अभी देखा है, प्रत्येक व्यक्ति की भाषा दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। ऐसी स्थिति में यह असंभव है कि, बहुत दूर तक भाषा की एकरूपता कायम रखी जा सके। स्वभावत: एक भाषा में भी कुछ दूरी पर भेद दिखायी देने लगता है। यह स्थानीय भेद, जो मुख्यत: भौगोलिक कारणों से प्रेरित होता है, विभाषाओं का सर्जक बनता है। उदाहरणार्थ -

खड़ी बोली - जाता हूँ।
ब्रजभाषा - जात हौं।
भोजपुरी - जात हई।
मगही - जा ही।

इन चारों वाक्यों को देखने से भी भाषा का रूप स्पष्ट हो जाता है स्थान भेद से एक ही क्रिया विभिन्न रूप धारण कर लेती है फिर भी यह ग्रुप इतने भी नहीं है कि, परस्पर समझ में ना आए बोधगम्यता रहते हुए स्थानीय भेद को भी विभाषा कहते हैं। इस कसौटी पर उपरलिखित चारों वाक्य खरे उतरते हैं। यही भेद जब इतना अधिक हो जाता है कि, समझ न आये तो वह विभाषा का नहीं, भाषा का भेद बन जाता है। उदाहरणार्थ,' जाता हूँ' के बदले यदि 'आई गो' कहें तो दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।' जाता हूँ' समझने वाला यदि अंग्रेजी नहीं जानता तो' आई गो' नहीं समझ सकता। भाषा भेद और भी विभाषा भेद का

अन्यतम आधार बोधगम्यता है। प्राय: विभाषाओं में से ही कोई परिस्थिति की अनुकूलता से भाषा बन बैठती है। भाषा और विभाषा का अन्तर बहुव्यापकता और अल्पव्यापकता का है जिसके मूल में भौगोलिक सीमा काम करती है। अंग्रेजी में विभाषा को 'डायलेक्ट ' कहते हैं।

3. अपभाषा–भाषा में ही जब सामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रयोग आ जाते हैं, जो शिष्ट रुचि को अग्राह्य प्रतीत होते हैं तो उनको अपभाषा कहते हैं। अंग्रेजी में इसे स्लैंग कहते हैं। अपभाषा की निम्नलिखित विशेषताएं है–

(क) शास्त्रीय आदर्शों की उपेक्षा- भाषा में शास्त्रीय आदशों जैसे शुद्धता, श्लीलता आदि की रक्षा का आग्रह रहता है, किंतु अपभाषा में नहीं।

(ख) शब्दों के निर्माण के सिद्धांतों की उपेक्षा -भाषा में शब्दों का निर्माण कैसे होगा, इसके व्याकरण - समस्त नियम हैं। उन नियमों को ध्यान में रखकर ही शब्दों का या एक शब्द के अनेक रूपों का निर्माण होता है। अपभाषा में उन नियमों पर ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे, टंडैल या अगड़घत्त आदि शब्द किसी नियम से सिद्ध नहीं है।

(ग) भाषा के शब्दों का अपभाषा में अर्थ-विस्तार दिखता है। भाषा में जो शब्द सामान्यत: जिस रूप में प्रचलित है, रहते हैं, अपभाषा में उससे हटाकर हीन अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं, जैसे उसने उसकी अच्छी हजामत बनायी या मरम्मत की या मारते- मारते कचूमर निकाल दिया या उसने मुझे धसा दिया। कोई मक्खन लगाना उससे सीखें या एक इसी बल पर वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया।

(घ) अपभाषा कुछ विशेष श्रेणियों, सामाजिक वर्गों या समवयस्कों में प्रचलित रहती है अर्थात अपभाषा के प्रयोगों के लिए वर्ग- विशेष, समाज विशेष या वय - विशेष की सीमा देखी जाती है। एक खास तरह का प्रयोग इस सीमा में विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है।

अपभाषा की इन विशेषताओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि, उसका निर्माण शैक्षिक, सांस्–तिक और सामाजिक तत्त्वों से होता है जिनमें लोग - मर्यादा और शिष्ट रूचि को प्राय: ध्यान में नहीं रखा जाता या जान-बूझकर उनकी उपेक्षा की जाती है। अपभाषा के प्रयोगों पर विचार करने से प्रयोक्ता के शैक्षिक, मानसिक स्तर आदि का आसानी से पता लग जाता है। किसी भी भाषा के अंतर्गत अपभाषा की श्रेणी में आनेवाले प्रयोगों का अध्ययन भाषाविज्ञान की दृष्टि से बड़ा

उपादेय सिद्ध हो सकता है, क्योंकि उससे जीवन एवं समाज के अनेक पक्षों पर प्रकाश पड़ने की संभावना रहती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि नवीनता, विनोद, उच्छृंखलता, संस्कारहीनता आदि अनेक कारण अपभाषा के प्रेरक हुआ करते हैं। सामान्यत: अपभाषा शिष्ट भाषा में गृहीत नहीं होती, किंतु जब कोई प्रयोग बहुत चल पड़ता है तो उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि, वह शिष्ट भाषा में प्रवेश पा जाता है।

4. विशिष्ट (व्यावसायिक) भाषा

समाज कोई अरूप वस्तु नहीं है। व्यक्ति को जब सामाजिक प्राणी कहा जाता है तो समाज के किसी विशिष्ट रूप को ही ध्यान में रखकर। समाज में उसकी कोई - न- कोई स्थिति होती है, वह कोई- न- कोई काम करता है। व्यवसाय के अनुसार अनेक श्रेणियाँ बन जाती है, जैसे, किसान, लोहार, बढ़ई, जुलाहा, सोनार, दर्जी, कुम्हार, शिकारी, मल्लाह, डॉक्टर, वकील, अध्यापक, दुकानदार, पंडित, पुजारी, मौलवी आदि। इन सभी व्यवसायों के अलग- अलग शब्दावली होती है। यह शब्दवाली एक तरह से वैसी ही प्राविधिक या परिभाषिक हो जाती है जैसे साहित्य, दर्शन, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिकी, रसायन आदि की, अर्थात् किसी व्यवसाय की शब्दावली उसी में चलती है। आप किसी की भाषा सुनकर आसानी से निर्णय कर सकते हैं कि, वह किस व्यवसाय का व्यक्ति है।

दर्जी की भाषा मौलाना आजाद की भाषा से भिन्न कुछ इस प्रकार की होती है, 'पहले कच्चा करके तब बखिया करना और आस्तीन की मोहरी नाखूनी सीना। काज बनाकर बटन भी टाँक देना।'

अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। इन कतिपय उदाहरणों सें स्पष्ट हो गया होगा कि शिक्षा और संस्-ति के साथ व्यवसाय का भी असर भाषा पर कितना पड़ता है। जो जिस व्यवसाय में है, वह उसकी बँधी शब्दावली से मुक्त हो सके, यह असम्भव है। कहने को ऊपर के सभी उदाहरण हिन्दी के है फिर भी इनमे परस्पर कितना अन्तर है। इन उदाहरणों की शब्दावली में जो अन्तर है वह क्यो है ? किसी की भाषा में अंग्रेजी शब्दो का बाहुल्य है तो किसी की भाषा में संस्कृत शब्दों का और किसी की भाषा में अरबी - फारसी शब्दों का।

5. कूटभाषा

भाषा सामान्यत: अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम है अर्थात् भाषा का प्रयोग अभिव्यंजन के लिए होता है, किंतु भाषा का एक और उपयोग है।

संसार में जितना मिथ्या - भाषण होता है, वह सब किसी- न- किसी बात को छुपाने के लिए ही। अगर छिपाना उद्देश्य नहीं होता तो मिथ्या भाषण की कोई आवश्यकता न थी और मात्रा की दृष्टि से मिथ्या - भाषण कुछ कम नहीं होता। इसलिए एक विद्वान ने कहा है कि, भाषा का काम बात को बताना नहीं, छिपाना है। अलंकारशास्त्र में व्याजोक्ति या छेकापहनुति आदि अलंकार गोपन के आधार पर ही खड़े है।

सामान्य भाषा में जहाँ बोध्यता और अबोध्यता दोनों, क्योंकि उसमे कुछ तो बताना अभीष्ट होता है और कुछ छिपाना। कूट- भाषा के दो प्रमुख प्रयोजन है - (1) मनोरंजन और (2) गोपन। कविता में कूट - भाषा का प्रयोग होता है वह मनोरंजन के लिए ही। सुर के कूट इसके उदाहरण हैं। अनेक बार बालक या सयाने भी शब्दों को उलटकर बोलते हैं, जैसे बालक रोटी मांगते समय ' टीरो ' कहकर या भात को ' तभा ' या पानी को ' नीपा ' कहकर अपना बौद्धिक उत्कर्ष दिखाना चाहते हैं। मनोरंजन के साथ कूटभाषा का दूसरा और सम्भवत: अधिक उपयोगी पक्ष हैं किसी वस्तु का गोपन। अपराधी, चोर, विद्रोही या गुप्तचर भाषा का जो प्रयोग करते हैं वह अपनी बात छिपाने के उद्देश्य से ही। उन संकेतों से जो परिचित हैं वह तो उनका अर्थ समझ पाता है और जो अपरिचित हैं उसके लिए वे निरर्थक प्रमाणित होते हैं। उदाहरणार्थ, चोरी करने जाना चोरों के यहां ' बारात जाना ' कहा जाता है। जेल को कुछ चोर ' ससुराल ' कहते हैं। सिद्ध है कि, बारात या ससुराल का जो प्रचलित अर्थ है, उससे भिन्न अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग अभिप्रेत है या इसका एकमात्र उद्देश्य है अपने अभिप्राय को केवल उसी व्यक्ति को बताना जो आत्मीय हो।

कूटभाषा का प्रयोग कई रूपों में होता है- (1) कूटभाषा का व्यापक प्रयोग संकेतिक रूप में होता है। इसमें शब्द का प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर उसे किसी दूसरी वस्तु का संकेत मान लिया जाता है या जैसे, चोर के लिए ' बारात ' जेल के लिए ' ससुराल '। इसी तरह ' इनकी पूरी खातिरदारी करना ' का सांकेतिक अर्थ है ' इसकी अच्छी मरम्मत करना।' आज रत्नाकर आने वाले हैं या उनके लिए रस का प्रबंध करो, यह वाक्य कोई चोर अपने साथी से इस उद्देश्य से कह सकता है कि, आज कोई मालदार (रत्नाकर) आने वाला है या उसे मारने के लिए विष (रस) का प्रबन्ध करना चाहिए। सेना की टुकड़ियों में इसी तरह विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न संकेत दे दिए जाते हैं। शाम का शिविर से जब सैनिक बाहर जाने लगते हैं तो उन्हें कोई संकेत दे दिया जाता है। लौटने

पर उस संकेत के बोलने के बाद ही वे शिविर में घुसने की अनुमति पाते हैं। यदि ऐसा न किया जाये तो शत्रु - दल के सैनिक भी वेश बदलकर भीतर घुस आ सकते हैं ओर सारा रहस्य जान ले सकते हैं या तोड़-फोड़ कर सकते हैं। ये सैनिक संकेत प्राय: प्रतिदिन बदल दिए जाते हैं जैसे आज ' हंस ' रखा गया तो कल ' हाथी '। अब जितने लोग शिविर के बाहर जायेगे, वे लौटते ही पहरे के संतरी के सामने ' हंस ' या ' हाथी ' का उच्चारण करेंगे जो इस बात का सूचक होगा कि वे अपनी सेना के अंग हैं। यह कहने के बाद ही उन्हें भीतर जाने की स्वी-ति मिलती है। ये संकेत अत्यंत गुप्त रखे जाते हैं।

कूटभाषा का सांकेतिक प्रयोग समुदाय - विशेष के परस्पर समझने की चीज है। जो समुदाय इस भाषा का प्रयोग करता है वह पहले से विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न संकेत गढ़ लेता है, समझ लेता है और तब समय पर उनका प्रयोग करता है। कूटभाषा में ध्वनि या पद का सामान्यत: परिवर्तन नहीं होता, केवल शब्द - भंडार संकेतिक होता है। कभी- कभी प्रचलित शब्द को अधिक अबोध्य बनाने के लिए ध्वनि में भी परिवर्तन किया जा सकता है, लेकिन सामान्यत: शब्द- परिवर्तन से ही काम चल जाता है।

(2) कूटभाषा का दूसरा रूप वर्ण–विपर्यय में देखने को मिलता है। यह संकेतिक कूटभाषा की अपेक्षा अधिक सुगम होती है और थोड़ी बुद्धि लगाने पर समझ में आ जाती है जैसे पूर्वोक्त उदाहरण ' टीरो ' = रोटी, ' तभा ' = भात य ' नीपा ' = पानी। वर्ण - विपर्ययमूलक भाषा का उपयोग गोपन और मनोरंजन दोनों के लिए होता है। अधिक गोपनीय वस्तु को वर्ण - विपर्यत के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें बात खुल जाने की आशंका रहती है। गोपनीयता की रक्षा संकेतिक भाषा से ही अच्छी तरह हो पाती है। वर्ण - विपर्यय अधिकतर उत्सुकता या मनोरंजन की भावना व्यक्त की जाती है।

(3) कूटभाषा का एक प्रचलित रूप यह है कि, अक्षरों के साथ किसी दूसरे अक्षर को जोड़कर उन्हें एक दूसरे से अलग कर दिया जाता है और अबोध्य बना दिया जाता है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी भी अक्षर को जोड़ा जा सकता है। मुझे याद है कि, बचपन में अपने कई साथियों को मैं इस तरह की कूटभाषा का प्रयोग करते देखता था, जिसका थोड़ा बहुत अभ्यास मैंने भी किया था। किसी अक्षर के प्रयोग के अनुसार, यदि चि का प्रयोग हो तो इसे ' चिकारी ' या ट का प्रयोग हो तो ' टकारी ' आदि नामों से पुकारते थे।

(4) हमारे बचपन में एक अंकात्मक कूटभाषा प्रचलित थी। उस समय उसका प्रयोग बहुत प्रिय लगता था। अंकात्मक कूटभाषा अपेक्षाकृत अधिक कठिन होती है, वर्ण - विपर्यय या चिकारी - टकारी जैसे सुगम नहीं। वह रहस्यत्मकता में एक प्रकार से सांकेतिक भाषा के समीप पड़ती है।

(6) त्रिम भाषा

त्रिम भाषा उसे कहते हैं, जो स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हुई हो बल्कि जिस गढ़कर बनाया गया हो। संसार में भाषाओं की अधिकता के कारण बोधगम्यता में बड़ी बाधा पड़ती है और जब तक एक-दूसरे की भाषाएं ज्ञात न हों तब तक परस्पर बात करना सम्भव नहीं है। इसको लेकर राजनीतिक, वाणिज्य, व्यवसाय, भ्रमण आदि में बहुत असुविधाएँ होती है। भाषा- भेद-जनित असुविधाओं को दूर कर अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए एक सामान्य भाषा प्रस्तुत करना ही -त्रिम भाषा के अविष्कार का उद्देश्य है। अत: चाहें तो -त्रिम भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी कह सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विगत दो शताब्दियों में सैकड़ों भाषाएं बनाई गयीं, किंतु उनमें अधिकतर उत्पत्ति के साथ ही गतायु हो गयीं। आज एक ही -त्रिम भाषा जी रही है और वह है एसपेरांतो। संसार में एसपेरांतो का प्रयोग करने वालों की संख्या अस्सी लाख बतायी जाती है। यूरोप में इस भाषा को बहुत लोग शौक से सीखते हैं। -त्रिम भाषा का उद्देश्य बहुत ऊंचा है, इसमें कोई संदेह नहीं और यदि इसको सभी लोग अपना सके तो निश्चित ही भाषा- भेद- जनित कठिनाई मिट जाएगी जो आज मनुष्य मनुष्य के बीच दीवार बनकर खड़ी है। किंतु यह लक्ष्य जितना ऊंचा है उतना ही दुरुह भी है। -त्रिम भाषा को अपनाने में कुछ कठिनाइयाँ तो स्पष्ट है--

(1) त्रिम भाषा दैनिक व्यवहार के लिए ही उपयुक्त, कामचलाऊ, है। इसमें गंभीर विषयों की आलोचना- प्रत्यालोचना संभव नहीं है।

(2) त्रिम भाषा में साहित्य रचना सम्भव नहीं है, कारण कि इस भाषा का संबंध मनुष्य के व्यक्तित्त्व के विकास के साथ नहीं है। हृदय के भावों, आवेगों, संवेदनों की अभिव्यक्ति निसर्ग - सिद्ध भाषा में ही संभव है, किसी -त्रिम और अपरागत भाषा में नहीं। अंग्रेजी का उदाहरण हमारे सामने है। अंग्रेजी की साधना में सारा जीवन व्यतीत करने वाले भी अपनी आशा-आकांक्षा अंग्रेजी में व्यक्त करने में पूर्णत: सफल नहीं हो सके। रवींद्रनाथ ठाकुर के जैसा कवि भी बंगला के द्वारा ही स्थायी कीर्ति का भागी बना।

अंग्रेजी में लिखने की कोशिश बहुत ने की, मगर अंग्रेजी साहित्य में उनको कोई स्थान नहीं मिल पाया। इसके प्रतिकूल अपनी भाषा में लिखने वाले, भले ही उनकी अपनी भाषा की साधना अंग्रेजी की तुलना में बड़ी हल्की रही, अमर हो गये। यह इसलिए कि अंग्रेजी हमारे रक्त और मांस, हमारे हृदय और आत्मा की भाषा नहीं है। वह अमरबेल की तरह ऊपर से फैली है, अतः उसमें जीवन के रस का अभाव है। यही स्थिति एसपेरांतो को भी लेकर होगी। हिंदी, बंगला, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, आदि भाषाओं को माता के दूध के साथ पचाने वाला व्यक्ति बाद को सीखी गयी भाषा में अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त नहीं कर सकता।

(3) अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम और गौरव का भाव भी एसपेरांतो के व्यापक ग्रहण में बाधक सिद्ध होगा। जिस तरह अपना देश प्यारा होता है, उसी तरह अपनी भाषा भी। उसके प्रति सहज आकर्षण और प्रेम होता है, जो प्रायः पक्षपात की सीमा छूने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी सर्वथा अपरिचित भाषा को मातृभाषा के बदले अपना लेना सरल नहीं है।

(4) भाषा भेद को मिटाने की जिस भावना से एसपेरांतो का जन्म हुआ है वह भी आगे चलकर बाधित होगा, कारण कि जो जिस भाषा को बोलने वाला है वह एसपेरांतो की ध्वनियों का उच्चारण उसी रूप में करेगा, क्योंकि उसके संस्कार और अभ्यास वैसे ही बने हैं। उदाहरणार्थ, एसपेरांतो कहेंगे तो अंग्रेज ' एसपेरेंटों '। यह उच्चारण - भेद कालान्तर में एसपेरांतो में भी अनेक विभाषाओं के निर्माण का प्रेरक होगा, जो किसी दिन परस्पर अबोध्यता की कोटि में पहुँच जा सकती है। इस तरह जिस लक्ष्य को ध्यान में रखकर इस अंतर्राष्ट्रीय भाषा का निर्माण हुआ है वह कहाँ तक सिद्ध होगा, यह कहना कठिन है।

7. मिश्रित भाषा

हल्के-फुल्के व्यापारिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक मिश्रित भाषा का उपयोग होता है। उदाहरणार्थ, पिजिन इंग्लिश को लीजिए जिसका प्रयोग चीन में होता है। पिजिन इंग्लिश में शब्द अंग्रेजी के रहते हैं, किंतु ध्वनि- प्रक्रिया और व्याकरण चीनी का। यह भाषा संप्रेषण संबंधी स्थूल, प्रारम्भिक बातों तक सीमित है। किसी चीज का भाव - मोल कर लेना, कुछ खरीद लेना, कुछ बेच लेना आदि कार्य ही इसके द्वारा सिद्ध हो पाते हैं। इसमें दर्शन या विज्ञान या साहित्य

की रचना संभव नहीं है। इसी तरह भूमध्यसागर के बंदरगाहों में साबीर नाम की एक भाषा का प्रयोग होता है जिसमें फ्रांसीसी, स्पेनी, इतालवी, ग्रीक और अरबी का मिश्रण है। इन भाषाओं से कुछ वस्तुओं के नाम ले लिए गए हैं और उन्हें मिलाकर एक खिचड़ी भाषा तैयार कर ली गई है जिससे सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है।

भाषा का उद्देश्य केवल अभिव्यंजन ही नहीं गोपन भी है और भौगोलिक, वैयक्तिक, व्यवसायिक आदि दृष्टियों से उसके अनेक रुप हो जाते हैं। उपयुक्त भेदों में अन्य सारे भेद भी समाहित हो जाते हैं। प्रान्तीय भाषा, राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा आदि भेद अमान्य है, क्योंकि इनमें रूप- भेद नहीं होता। उदाहरणार्थ, राजभाषा और राष्ट्रभाषा की विभाजक रेखा क्या होगी?

भाषाओं के संबंध में एक मौलिक तथ्य है कि, न तो कोई भाषा सरल होती है न कठिन, न अच्छी, न बुरी। सरलता - कठिनता का प्रश्न, अच्छाई-बुराई का प्रश्न अभ्यास और संस्कार से सम्बद्ध है। जो भाषा आपको कठिन लगती है वह उसे कठिन नहीं लगती जिसकी वह मृतभाषा है, क्योंकि वह उसे जन्म से और सहज भाव से सीखे हुए हैं। इसी प्रकार अपनी भाषा हर आदमी को अच्छी लगती है। दोष दूसरे की भाषा में दीखते हैं, अपनी भाषा में नहीं। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृष्टि में दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सुंदर है, वैसे ही अपनी भाषा भी दूसरी भाषा की अपेक्षा अधिक पूर्ण, सरल और अच्छी मालूम पड़ती है। अतः भाषा अच्छी या बुरी नहीं होती। भाषा बुरी तब कही जाएगी जब उससे काम न चल सके अर्थात अभिव्यंजना समुचित रुप में न हो सके। आज अंग्रेजी को लेकर यह समस्या उठ खड़ी हुई है। बारह वर्ष सिरतोड़ परिश्रम करने पर भी शुद्ध अंग्रेजी लिखने या बोलने वाले दुर्लभ हो गए हैं। इस दृष्टि से अंग्रेजी बुरी कही जाएगी, क्योंकि हमारी अभिव्यंजना में वह साधक न होकर बाधक बन रही है।

दूसरी बात ध्यान में रखने की यह है कि, भाषा का सतत विकास ही होता है। विद्वानों की दृष्टि में जो 'अपभ्रष्ट ' है वह भी भाषाविज्ञान की दृष्टि से विकास ही है। व्याकरण के मानदंडों से हट जाने पर भाषा अपभ्रष्ट (गिरी हुई) लगती है, किंतु भाषाविज्ञान उसे 'अपभ्रष्ट ' न कहकर ' विकसित ' कहेगा, क्योंकि वह परिवर्तन कुछ अनिवार्य कारणों से प्रेरित और नियंत्रित होता है। हम बूढ़े हो गए, इसका यह अर्थ कहां हुआ कि हम गिर गये ? यह तो विकासजनित रूप- परिवर्तन हुआ। इसी तरह यदि आज की भाषा दो सौ वर्षों के बाद बदल

जाती है तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह भाषा गिर गयी, बल्कि उसमें प्राकृतिक परिवर्तन हो गया जो सृष्टि का अपरिहार्य क्रम है। जैसे नदी की धारा कभी नहीं रुकती, सदा आगे बढ़ती जाती है, वैसे ही भाषा का प्रवाह भी कभी नहीं रुकता, सदा आगे बढ़ती जाती है, विकास के इस अनिवार्य प्रवाह को अपभ्रंश कहना भाषावैज्ञानिक दृष्टि से असंगत है।

'प्रशासन में हिंदी के व्यावहारिक संदर्भों' की बात करते हैं तो पाते हैं कि, 217 वर्षों की प्रशासनिक हिंदी अपने मानस-पुत्रों की अकर्मण्यता से कराह रही है और प्रशासन में हिंदी सेवियों की मनोदशा 'बत्तीस दाँतों के बीच एक जीभवया' जैसी है। जीभ दाँतों/मुँह की साफ-सफाई का हर संभव प्रयास करती रहती है, किंतु जैसे ही दाँतों का दाव लगता है वे जीभ को चोट पहुँचाने से कभी नहीं चूकते हैं। ठीक वैसे ही हिंदी के दुश्मन तथा-कथित हिंदी-वाले ही हैं, जो हिंदी के नाम पर औने-पौने का खेल खेल रहे हैं, आखिरकार यह सिलसिला कब रूकेगा और कब हिंदी उन कुचक्रकारों से स्वतंत्र होगी यह यक्ष प्रश्न है।

प्रशासन में हिंदी के अनुप्रयोगों के संबंध में कह सकते हैं कि, भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में हिंदी को जो स्वी-ति मिली उसकी पृष्ठभूमि में हिंदी की युग-युगों से आती हुई परंपरा और उसके वैज्ञानिक स्वरूप की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सबसे पहले मराठों के प्रशासन में हिंदी का प्रयोग राजभाषा के रूप में व्यापक रूप से स्वीकृत था। हैदरअली और टीपू सुल्तान इसको सुदूर केरल तक ले गये। यही नहीं टीपू की कोचीन के राजा के साथ जो संधि हुई उसके अनुसार हिंदुस्तानी-हिंदी सिखाने की व्यवस्था के सुदृढ़ प्रबंध करने की बात कारगर तौर पर लागू की गयी थी। डॉ. केलकर के शोध प्रबंध के अनुसार ताड कलेक्शन में छियासी प्रकार के सरकारी पत्रों का उल्लेख है। अंग्रेजों के शासन काल में (1798.12.21) द्वारा संपूर्ण भारत में हिंदी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया था। हिंदी के विकास में गिलक्रिस्ट तथा फोर्ट विलियम कालेजों की भी महती भूमिका रही है।

इतना ही नहीं, फ्रेडरिक पिन्काट ने 1868 में हिंदी की लड़ाई प्रारंम्भ कर दी थी और ग्रिफिथ ने 1878 में यह घोषणा कर दी थी कि 'इस देश की भाषा हिंदी है।' 26 जनवरी 1882 को सिविल सर्विस के अधिकारियों के लिए हिंदी को अनिवार्य कर दिया गया था। 1928 में पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में तैयार 'नेहरू रिपोर्ट' द्वारा 'हिंदी' को सर्वमान्य भाषा घोषित कर दिया गया था। पं. जवाहरलाल नेहरू ने 1937 में स्पष्ट कर दिया था कि हर

प्रांत की सरकारी काम काज के लिए उस प्रांत की भाषा होनी चाहिये और हिंदी, सभी प्रांतों की सरकारी भाषा होगी। 217 साल बीत गये तब से अब तक हम सब हिंदी का दर्द बांटने का स्वांग भरने के लिए यदा-कदा एकत्रित होते हैं ! आखिर कब तक हिंदी का मातम मनायेंगे आप और हम। राजनीति की भाषा और भाषा की राजनीति ने मानो मिलकर हिंदी की नियति का अपहरण कर लिया है।

जवाहरलाल नेहरू ने करीब पाँच दशक पहले कहा था कि 'मैं अंग्रेजी का इसलिए विरोधी हूँ क्योंकि अंग्रेजी जानने वाला व्यक्ति अपने को दूसरों से बड़ा मानने लगता हैं और उसकी दूसरी क्लास-सी बन जाती है यह दुर्भाग्यपूर्ण है। भारत को कमाल पाशा जैसी भाषा -नीति और दृढ़ इच्छा-शक्ति की सख्त जरूरत है। किंतु हिंदी भाषा को किसी विशिष्ट जातीय-संस्-ति, समूह या विचारधारा से जोड़ने से बचना होगा तभी यह आपसी बोधगम्यता से व्यापक जन संप्रेषण की सर्व स्वीकार्य भाषा बन कर भारतीय मानस के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करेगी। विषय की अनिवार्यता और अनुकुलता की दृष्टि से हिंदी से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों का संक्षेप में जिक्र करना जरुरी है जिनमें प्रमुख रूप से अनुच्छेद 343 से लेकर 351 के अंतर्गत हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में अपनाने की प्रतिबद्धताओं का उल्लेख है। अनुच्छेद 351 में वर्णित है कि, हिंदी का प्रसार संघ का कर्तव्य होगा। किंतु हिंदी का राष्ट्रीय एकीकरण में सबसे शक्तिशाली योगदान होने के बावजूद अधिनियम 1963, राजभाषा संकल्प 1968, अधिनियम 1976 यथा संशोधित 1987 सभी अधिनियम हिंदी के साथ न्याय नहीं कर पाये, कितना दुखद है !

कश्मीर से कन्या कुमारी तक भारतवासियों के संप्रेषण का सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम अंग्रेजी के बजाए हिंदी का ही कोई एक स्वरूप है। हिंदी की थाती हमारे राष्ट्रीय दिशा बोध का प्रश्न है। जिस देश के नागरिकों में भाषायी-निष्ठा की कमी हो उन्हें कदापि मान-सम्मान नहीं मिलता वे सदैव गुलाम ही रहते हैं। हिंदी और भारतीय भाषाओं को समान मंच पर लाना एक भगीरथ प्रयास की तरह है। इसके तीन सूत्र हैं हिंदी को प्रमुख भाषा मानना, भारतीय भाषाओं के साथ उसके द्विभाषी स्वरूप को प्रमुखता देना और अंग्रेजी को तत्काल प्रभाव से तिलांजली देना। देश में 1.8 फीसदी लोग 98.2 लोगों पर शासन कर रहे हैं, उनका आँकड़ा दिन-प्रतिदिन सिकुड़ रहा है, अब केवल अंग्रेजीदां व्यवस्था पर आखरी चोट करने का समय है। कहते हैं जब बौने लोगों

की लंबी-लंबी परछाई पड़ने लगें तो समझना चाहिए कि सूर्यास्त का समय हो रहा है। तय यह करना है कि, यह सूर्यास्त अंग्रेजी का हो।

शंकर के विचारों की ऊँचाई, तुलसी के आचरण की गहराई और राम के प्रण की सच्चाई, कृष्ण का निष्काम भाव, बुद्ध का उद्धार मंत्र, महावीर के एकाधिकार मंत्र, मोहम्मद के विश्वास-मंत्र, ईसा का प्रेम धर्म एवं वैदिक साहित्य के रहस्य और बाजारवाद की इस दुनिया में सबसे बड़ी भाषा है हिंदी। मैंने मनुष्य के अंत:मन में छिपी हुई हिंदी की उस महिमा को नाना रूपों में अंकित करके रखा है, जिसे सब देख नहीं पाते। हमें अंग्रेजी की उपेक्षा करनी होगी, अपेक्षा दु:ख का कारण है और उपेक्षा से विरोध मर जाता है। हिंदी भाषा, हिंदी का मान-सम्मान मनुष्य को मनुष्य से जोडने के लिए है, तोड़ने के लिए कतई नहीं। भाषा, समाज-व्यवहार का माध्यम है, प्रशासनिक कार्यो में निपुणता युक्त शब्दावली का निर्माण भाषा के लिए प्राण-वायु है। प्रशासन के विविध प्रकायों में भाषा की अर्थ-दीप्तियों का प्रयोग जरूरी है। इसके माध्यम से शासन-प्रशासन के विविध प्रयोजन अभिव्यक्त होते हैं, पूरित होते हैं। प्रत्येक भाषा उस भाषायी समुदाय और राष्ट्र की प्रशासनिक शक्ति का आधार होती है और हिंदी इन सब में पूर्ण सक्षम है।

भाषिक-व्यवहार से ही राजनीति और प्रशासनिक संबंध कायम होते हैं। भाषा मानवीय क्षमता के विस्तार का मूल-स्रोत है, उसमें अपार संभावनाएँ होती है। भाषा में अंतर्निहित अपार संभावनाओं की तलाश और जांच-पड़ताल करनी पड़ती है। भाषा की इन संभावनाओं की तलाश में इच्छा-शक्ति का विशेष महत्व है जिसके आधार पर भाषा के विस्तार की गूढतम संभावनाओं को तलाशने के सार्थक कदम उठाने के लिए जरुरी है मानसिक-तब्दीलियों की प्रबल इच्छाशक्ति हो। क्या हमने कभी ऐसा किया है ? शायद नहीं। आज समय यही मांग कर रहा है कि, हम सभी भारतीय अपने इस गुरूतर उत्तरदायित्व को स्वीकारें कि हिंदी आजीविका, रोजी रोटी, प्रशासनिक निपुणता में किसी तरह से पिछड़ी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि, उसे पिछड़ता हुए महसूस करने वाले हिंदी-कर्मियों, शिक्षार्थियों-सेवियों, बुद्धिजीवियों, नौकरशाहों, टेक्नोक्रेट्स के मन-मस्तिष्क में यह धारणा बैठ सके, उत्पन्न कर सके, सृजित कर सके कि हिंदी केवल राष्ट्रीय स्तर की भाषा नहीं है, वह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बोली -समझी, पढी-लिखी, अध्ययन-अध्यापन और शासन-प्रशासन किये जाने वाली गरिमामयी भाषा है।

शब्दार्थ ग्रहण की सहिष्णुता, उदारता आत्मीयता के स्तर पर हिंदी भाषा काफी समृद्ध है और अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करने की संभावनाओं की शक्ति इसमें सर्वाधिक है। इसके लिए हमें हिंदी के बहुमुखी आयामों को पहचानकर उन्हें स्वीकार करना होगा और नयी व्यवहार मूलक, प्रशासन मूलक, उद्योग-व्यापार-व्यवसाय मूलक, प्रयोग मूलक तथा रोजगार मूलक दृष्टि को विकसित करना होगा। साथ ही, हमें विज्ञान-प्रौद्योगिकी, गणितीय-संगणतीय, अनेकानेक प्रयोजनमूलक और व्यावहारमूलक क्षेत्रों में हिंदी की पैठ कराने की संकल्प शक्ति की महती जरूरत है। इसमें अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है, हमें हिंदी और भारतीय भाषाओं में अनुवाद की प्रक्रिया कारगर तरीके से लागू करनी होगी और यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहनी चाहिए, क्योंकि हिंदी जितनी बड़ी भाषा के लिए यह बहुत जरूरी है कि, उसमें विश्व भर से श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम और ज्ञानवर्धक साहित्य अनुवाद के माध्यम से आता रहे।

हिंदी अपनी वैश्विक पहचान बनाने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रही है, लेकिन तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षण की दिशा में अनेक स्तुत्य प्रयासों के बावजूद अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। हिंदी में तकनीकी या वैज्ञानिक शिक्षण का न होना, हिंदी माध्यम में वैज्ञानिक शिक्षा के मार्ग में चुनौतियाँ हैं। हिंदी में अनुवाद के रूप में या अनुसंधान के रूप में अनेक नए शब्दों की सर्जना हुई है, हो रही है, लेकिन अधिकांश मामले में उसकी बुनावट जटिल है, इसे स्वीकारना होगा। हिंदी की तकनीकी शब्दावली को समृद्ध करने के लिए यह अति आवश्यक है कि, हम सरल अनुवाद की संस्-ति को प्रोत्साहित करते रहें। अनुवाद ही वह सर्वोत्तम प्रविधि है, जो हिंदी के तकनीकी शिक्षण का आधार बनेगी। अनुवाद एक पुल है, जो दो भाषिक संस्-तियों को जोड़ देता है। हिंदी की तकनीकी या वैज्ञानिक-चिकित्सकीय शिक्षण में अनुवाद का अप्रतिम योगदान रहेगा। अनुवाद के सहारे ही विदेशी या स्वदेशी भाषाओं के अनेक शब्द हिंदी में आते हैं और नया संस्कार ग्रहण करते हैं। कोई भाषा तभी समृद्ध होती है, जब वह अन्य भाषाओं के शब्द भी ग्रहण करती चले। हिंदी में शब्द आते हैं और नया संस्कार ग्रहण करते हैं। हिंदी भाषा में आकर अँगरेजी के कुछ शब्द समरस होते हैं, तो यह खुशी की बात है। लेकिन इस चक्कर में हमारे मूल शब्द ही हाशिये पर चले जाएँ, तकनीकी शब्दावली सरल होगी, तभी स्वीकार्य होगी। विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षण के लिए गढ़े जाने वाले शब्दों के साथ भाषाविद् इस बात का भी ध्यान रखें कि उसे लोक-स्वी-ति

मिले। नए तकनीकी शब्द अगर किताबी बन कर रह गए, तो उनकी उपादेयता क्या रहेगी ?

हिंदी के प्रति मन की संवेदनशीलता स्वाभाविक एवं सबल है, भाषायी चेतना मौलिक है, इसमें संदेह नहीं। हिंदी में चेतना-शक्ति के विकास की कहानी रोचक है, इसमें गांधी, लाल पाल बाल, भगत सिंह इत्यादि शिरोमणि शहीदों के अंतर्ध्यान रूप और रूचि के साथ पलते-चलते है। भाषायी चेतना के विकास की चार दिशाएँ हैं एक, उपयोग की अनंत संभावनाएँ, दूसरी आत्मीय-आनंद की प्र-ति, तीसरी अभिव्यक्ति और चौथी, सृजनात्मकता युक्त अर्थ-दीप्तियाँ। प्रशासन के मूल्यांकन की एक विधा है, वह लोकहित से कितनी दूर है और लोक भाषा के कितना समीप। प्रशासन सब स्थितियों में रहता है, कहीं प्रवृत जैसे हिंदी की प्रशासनिक युक्तियाँ, कहीं संस्कृत जैसे तमिल, तेलगू-मलयालम, हिंदी इत्यादि की गंगा यमुना की पवित्रता और कावेरी की निर्मलता की प्रशासनिक संस्-तियाँ, कहीं विकृत जैसे अंग्रेजियत का दामन थामे मुट्ठी भर हुक्मरान, कहीं सुकृत जैसे प्रशासनिक चेतना में मन के संस्कार से विज्ञान, दर्शन, धार्मिक सिद्धान्त, नीति के विधान एवं सुरूचि के पोषक अलंकरण व सज्याओं का विकास, कहीं कुकृत जैसे भारतीय जनमानस पर थोपा अंग्रेजीराज।

परिणामस्वरूप समाज का यह अल्प वर्ग अजीब सी ऐंठ में जन-मन से अलग ऊपर दूर हो जाता है और जयशंकर प्रसाद के स्कंदगुप्त के स्वकथन 'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन' अपनी ही बनायी हुई विधियों में उलझा हुआ एवं क्लिष्ट और सब कुछ शास्त्र सम्मत न होने के कारण थोड़े ही लोगों तक सीमित। प्रशासनिक-सौंदर्य प्रा-तिक अवस्था में ही पनप सकता है और बन रही संस्-ति के दम घोंटु जलावरण में भर जाता है। जन भाषा जन-मन की संपदा है और जन-मन जीवन के विधान को शास्त्र, धर्म के रूप में स्वी-ति देता है, दे सकता है, क्योंकि जन भाषा में ही मन का मोचन होता है और आनंदातिरेक का अनुभव। भाषा में पराया कुछ नहीं होता और प्रशासन में अपनापन दोष हो सकता है। प्रशासक निजी दृष्टिकोण, आग्रह-पूर्वाग्रह, जातपात, स्वार्थ आत्मरति से जितना ऊपर उठता है उतना ही वह सर्व स्वीकृत सत्य के उदघाटन का सामर्थ्य रखता है। बुद्धि निजता के संकोच को स्वीकार नहीं करती य उसके लिए जो सच है, वह चाहे प्रिय हो या अप्रिय, हमारी कोमल भावनाओं से टकराता है या नहीं, हमारी नैतिक -धार्मिक सामाजिक-जातीय-मूल्य चेतना को मान्य हो या न हो हम उसे पूर्वाग्रह वश

स्वीकार करें या अस्वीकार, वह सच है, सच ही रहेगा। इस शाश्वत सत्य में हिंदी जैसी निज भाषा 'चार चाँद लगा' देती है।

भाषा और प्रशासन मूलतः अभिव्यक्ति का माध्यम है, किंतु दोनों में समन्वय और संतुलन के कदम की स्थिति होना जरूरी है क्योंकि जो कुछ भी आत्मा के चेतन-अचेतन अंतराल में, मन के गाम्भीर्य में, बुद्धि के स्फुरणों में, शरीर के लय-रोमांच में, हृदय के उबाल एवं सम्पूर्ण जीवन के स्पंदनों में भाषिक अभिव्यक्ति है वह है जन भाषा। जो अपने सशक्त संकेतों से मन की अपनी चाह को, रूप के लिए अमिट पिपासा को, आँखों के सामने प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखती है। 'अपनी' होने से वह भाषा प्रिय होती है, वह लय संतुलन-संवाद आदि रूप-गुणों से समृद्ध होती है, सांकेतिक ध्वनियों से संबधित होने के कारण वह जीवन के समूचे भीतरी व गहरे अनुनाद में लय का संचार करती है और यह भाषा 'शासक' की जितनी अपनी होती है उतनी ही अपनी 'शासित' की भी। फिर दोनों एक दूसरे के पूरक क्यों नहीं हो सकते हैं! यह हिंदी के शासकीय भाषा होने का सच है, जो उसकी छवि को सत्यम, शिवम् और सुंदरम की शाश्वतता प्रदान करता है। शासकीय गुणों से सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण हिंदी का वर्तमान तो सुदृढ है ही भविष्य भी उज्ज्वल नजर आता है। सिर्फ हिंदी को शासकीय कार्यो में अपनाने में जो कमी है, उसे दूर करना है, आओ हिंदी को आत्मीयता से अपनाये और भाषायी निष्ठा का दायित्व निभायें। इसकी कार्य-योजना के तीन सोपान हैं -

1. संवैधानिक स्थिति,
2. प्रशासनिक दायित्व,
3. पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का प्रयोजन।

हिंदी और राष्ट्रीयता का आपस में अनूठा संबंध है। यदि आप हिंदी का सम्मान नहीं करते तो समझो आप देश की राष्ट्रीयता का भी सम्मान नहीं करते। संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लेखित हिंदी और सभी राष्ट्रीय भाषाओं का एक समान सम्मान करेंगे तो देश का सम्मान भी होगा। जिस देश के नागरिक अपनी, अपने देश की भाषा को नहीं बोलते उन्हें कदापि सम्मान नहीं मिलता, वे हमेशा गुलाम ही रहते हैं। राजभाषा अधिनियमों में वर्णित प्रावधान के तहत हिंदी के अनुप्रयोग की जिम्मेदारी संस्था प्रधानों की है जिसमें हिंदी सेवियों की भूमिका अग्रणी एवं सक्रियता युक्त होने चाहिए। देखा यह गया है कि, हिंदी सेवी ही अपनी जिम्मेदारियों को ठीक से नहीं निभा रहे हैं। उन्हें चाहिए कि वे प्रशासन

में पत्रावलियों के एक स्थान से दूसरे स्थान तक पंहुचाने की प्रभावी निगरानी-व्यवस्था का निरीक्षण-पुनरीक्षण करें। जरूरत के मुताबिक नियंत्रण बिंदु बनाये जाये ताकि चूक और त्रुटियों को पकड़ा जा सके और दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों की पहचान कर उनकी सेवा-पुस्तिका/पंजिकाओं में इनकी प्रविष्टियाँ की जाय और प्रतिकूल प्रविष्टियों को मूल्यांकन और पदोन्नति में अवश्य आँका जाय।

राजभाषा कार्यो के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण के तरीकों और तकनीकों में यथोचित बदलाव किये जायें और कार्य-विभाजन की पद्धति एवं प्रशासनिक कार्यो में हिंदी के अनुप्रयोग के उन्नयन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करना होगा ताकि हिंदी के अनुप्रयोग की क्रियान्विति एवं प्रगति का मूल्यांकन हो सके किंतु इसके लिए प्रयास रचनात्मक होने चाहिए न कि विध्वंसात्मक। प्रशासनिक योजनाओं को क्रियान्वित करने के उत्तरदायित्व में नियोजन, समन्वय, पर्यवेक्षण, संप्रेषण, निर्देशन, नेतृत्व और निर्णय प्रक्रिया में हिंदी सेवियों को प्रमुखता दिये जाने के प्रावधान हों। हिंदी कर्मियों की कार्य-प्रक्रिया, पद्धतियों और कार्य-विधि संबंधी दोषों और त्रुटियों के लिए संगठनात्मक तौर-तरीकों के अध्ययन विश्लेषण के लिए उच्च स्तरीय समिति गठित करके ऐसे प्रावधान किये जाये कि वह समिति अपनी सिफारिशों और अनुशंसाओं के केन्द्रीय मंत्रिमंडल के माध्यम से सीधे राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करवायें और उनकी अनुपालना सुनिश्चित हो।

हिंदी तंत्र की कार्य कुशलता में अभिवृद्धि के दृष्टिकोण को अपनाने, उच्च अधिकारी द्वारा नीचे के अधिकारी के कार्यो में हस्तक्षेप कर बाधा उपस्थित नहीं करनी चाहिए। बल्कि, प्रशासनिक व्यवस्था तथा प्रक्रिया को हिंदी के विकास कार्यों की आवश्यकताओं या मांगों के अनुसार ढाला जाय। प्रस्तावित सुधारों को प्रशासनिक एवं राजनीतिक चुनौतियों के अनुरूप बनाया जाये और कार्य-कुशलता सुधारने, प्रशासनिक कार्यो में हिंदी के अनुप्रयोगों में संतुलन बनाने के कारगर उपाय हों।

हिंदी के प्रति भाषायी निष्ठा की गंभीरता को प्रशासकों को समझाया जाय। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के परिक्षेत्रों में यथोचित कठोर प्रावधान बनाकर हिंदी के बहुआयामी अनुप्रयोगों को सुनिश्चित, पारदर्शी और जवाबदेह बनाया जाये। हिंदी के अनुप्रयोग में बाधा डालने वाले अधिकारियों एवं संस्थाओं के विरूद्ध कठोर-से कठोरतम कार्यवाही के प्रावधान हो और सभी विभागों तथा मंत्रालयों के कर्मचारियों/अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदनों

में प्रविष्टि हो एवं उनकी पदोन्नतियों के समय हिंदी के प्रभावी अनुप्रयोग को अवश्य ध्यान में रखा जाये। राजभाषा हिंदी की स्थिति में सुधार लाने की दृष्टि से शासनिक और प्रशासनिक अनुभव के आधार पर चार स्तरीय सुधार के लिए निम्नांकित सुझाव है, जिन्हें पाँच उपवर्गों में रखा जा सकता है–

(1) कानूनी दायित्व का परिक्षेत्र, इसमें आने वाले सभी विषयों के लिए विभाग के मंत्री और सचिव दोनों कानूनी रूप से उत्तरदायी हो,

(2) राजनीतिक दायित्व का परिक्षेत्र, इसमें मंत्री को मत्रिमंडलीय नीतियों के साथ संयुक्त किया जाये अर्थात वह सबके साथ संयुक्त रूप से उत्तरदायी माना जाय,

(3) विभागीय दायित्व का परिक्षेत्र– इसमें मंत्री अपने विभाग के लिए बनायी गयी नीतियों में हिंदी के प्रगामी अनुप्रयोग के नीति-निर्धारण और परिनिर्माण में विभागीय सचिवों को पाबन्द करें और स्वयं उत्तरदायी रहें,

(4) प्रशासनिक दायित्व का परिक्षेत्र– इसमें सचिवों को नीतियों तथा स्पष्ट निर्णयों के अतिरिक्त किये जाने वाले सभी कार्यों के लिए कानूनी एवं प्रशासनिक रूप से उत्तरदायी समझा जाय,

(5) सबसे पहले केंद्रीय राजभाषा संवर्ग सेवा की स्थापना तत्काल हो एवं राजभाषा से जुड़े सभी पदों को इसकी कार्यविधि के अंतर्गत लाया जाये और इस वर्ग की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट और प्रतिपुष्टि इसी संवर्ग के अधिकारियों द्वारा अनिवार्य रूप से भरी जावे।

साथ ही, भारतीय भाषाओं की शब्दावली और अर्थ-दीप्तियों को आत्मसात करने के प्रति हिंदी का खुला आमंत्रण, पुनर्रचना और सोच के नये तरीकों सहित प्रशासनिक क्रियाओं का पर्यवेक्षण, समन्वय, संगठन तथा नियंत्रण हिंदी के प्रगामी अनुप्रयोग में महत्वपूर्ण कारक है।

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने ठीक ही कहा है कि, 'हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा और प्रशासनिक कार्यदायित्वों के निवर्हन के रूप् में निपुण बनाने का कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना ऊपर से दिखलायी पड़ता है। हिंदी प्रेमियों का कार्य-उचित है कि, वे हिंदी को सभी जगह प्रतिष्ठित करने के लिए अपने प्रयत्नों में तेजी लाएं।' परिस्थिति अनुकूल है इसका लाभ उठाकर आगे बढ़ना चाहिये। प्रशासन के स्तर का मापन उसकी क्रियान्वय- शक्ति द्वारा होता है। किसी भी राष्ट्र की शासन व्यवस्था, लोकहित की दशा, विकेन्द्रीकरण की भावना और जन भाषा के अनुप्रयोग इत्यादि से पता चल जाता है कि, उस

राष्ट्र की उन्नति किस स्तर और किस दिशा में प्रभावित हो रही है। वास्तविक प्रशासन की उच्च क्षमता वही है, जो किसी क्षुद्रवासना को उद्दीप्त किये बिना माधुर्य की, सामंजस्य की और सौहार्द की अनुभूति करा सके और यह स्व-भाषा में ही संभव है।

गाँधीजी ने कहा है कि, 'सत्ता का उपयोग इस ढ़ंग से हो जो फूल की तरह महसूस हो, उसकी सुगंध दूर तक फैले, किसी पर बोझ न लगे और यह कार्य तभी संभव है। जब सत्ता का माध्यम लोकभाषा हो और प्रशासन और लोक भाषा में उसकी अभिव्यक्ति का ऋतु संबंध सामान्य हों, जो प्रशासन सभी के भीतर असीम, नानात्व के भीतर एकत्व का संकेत कर सके वही अधिक और लोक कल्याणकारी प्रशासन की अनुभूति करा सकता है।' प्रशासन में लोकभाषा के अनुप्रयोग की कला में सामान्य और विशेष, प्रत्यय और प्रस्तुति, उद्देय और साधन के भेद के समाधान की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती क्योंकि भेद अतार्किक बृद्धि द्वारा किया जाता है, किंतु यह सब भाषायी निष्ठा द्वारा संभंव है।

भाषायी निष्ठा के आलंबन और अनुभव से ऐसी अलौकिक मानसिक स्थिति हो जाती है कि, शरीर का 'वसन और रक्त-संचार भी अवरूद्ध हो जाता है और हम एक निश्चित जागृत चेतना में प्रतिष्ठित जो जाते है और यह केवल हिंदी के अपनाने से संभव है। भाषा प्रियमण्डना होती है, भारतीय-चेतना की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति का माध्यम हिंदी ही है, इसकी सर्वोपरि नैसर्गिकता और वैज्ञानिकता, सुस्पष्टता, अर्थ-दीप्तियों की समग्रता, राष्ट्रीय एकता युक्त संवेदना से समूची आत्मा मुखर हो उठती है। इसमें प्रशासन का मर्म प्र-ति और कार्य-संस्-ति के बीच का विलक्षण आकर्षण है।

कार्य-संस्-ति 'मां' की भांति है, जो प्रत्येक प्रशासनिक-संस्कार को जन्म देती है, किंतु 'मां' की गोद में लौट आने की प्रवृति कभी नहीं भरती और अंत में हिंदी 'मां' की भांति सबको अपने में समेट लेती है। हिंदी में जहां एक ओर उपेक्षा की व्यथा है, वहीं दूसरी ओर उसमें प्रशासनिक भाषा बनने की उत्कण्ठा है क्योंकि हिंदी लोक-मानस की प्र-ति में है, इसमें मुक्त, सरल, सरस भावनाओं की लय से आंदोलित, संस्-ति शालीन, अनुशासन एवं प्रशासनिक निपुणता है जिसमें संतुलन, भाषायी-सामंजस्य समविभक्तता जैसे गुणों का उत्कर्ष है। हिंदी सबको भाती है, आओ! हिंदी का दामन थामे क्योंकि इसमें मन एवं बुद्धि के अद्भुत आराम-विराम एवं विश्राम का अनुभव होता है।

भारत में भले ही अनेक राज्य हैं जिनकी अपनी-अपनी भाषाएँ हैं, फिर भी हिंदी देश भर में बोली समझी जाने वाली भाषा है। उसका एक सबसे बड़ा कारण यह है कि, हिंदी एक उदार भाषा है, जो विविध भाषाओं के शब्दों को अपने खजाने में ऐसे समेट लेती है जैसे वह शब्द उसके ही बालक हों।

भाषा की इस विविधता के बीच अंग्रेजी भी शामिल है यहाँ जितनी बहुतायत से प्रांतीय भाषाएँ बोली समझी जाती हैं, संभवत: उससे ज्यादा अंग्रेजी का प्रयोग होता है। सच पूछा जाए, तो उनके बीच अंग्रेजी संपर्क भाषा की तरह अपनी भूमिका निभाती है जैसे कि उत्तर भारत में एक तमिल भाषी से संवाद सिर्फ इसलिए आसान है कि, अंग्रेजी दोनों के बीच समझी जाने वाली भाषा की तरह मौजूद है अब यह बात अलग है कि, यहाँ अंग्रेजी का व्यवहारिक रूप उतना खरा और शुद्ध नहीं होता कि मास्टर जी उसमें पास होने भर भी नंबर दे सकें लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है, संवाद तो हो ही जाता है न3 बस और क्या चाहिए।

अब आइये इस बात को परखते हैं कि, बोलचाल की हिंदी में अंग्रेजी के शब्द कैसे ज्यों के त्यों आ कर ऐसे बस गए हैं, मानो वह हिंदी के ही शब्द हों अरे भाई, जब हिंदी के बीच अंग्रेजी अपने ही रूप में बे रोकटोक बोली जाएगी तो शब्दों की इस आवाजाही को कौन रोक सकता है, और कौन इस पर एतराज उठा सकता है? कई बार तो ऐसा देखा गया है कि, किसी अर्थ के लिए अंग्रेजी शब्द इतना प्रचलित हो जाता है कि, अगर उसकी जगह उसी अर्थ का हिंदी शब्द बोला जाए तो समझने में कठिनाई आ जाती हैं। एक प्रसंग बताता हूँ।

लखनऊ में एक बार में रिक्शे वाले से 'विश्वविद्यालय' चलने के लिए कह बैठा वह परेशान हो गया, कहाँ है बाबूजी? कितनी दूर पड़ता है, आप बताइयेगा तो चलेंगे फिर जब मैंने यूनिवर्सिटी कहा तो वह तपाक से बोला, "अरे बाबूजी, बैठिये पहले ही हिंदी में क्यों नहीं बताया?" ऐसे कितने ही शब्द हैं, जो केवल अंग्रेजी नाम से बोले जाएं तो आसानी से समझे जाएंगे लीजिये सुनिए, 'सिनेमा हॉल', 'लाइब्रेरी', 'रजिस्ट्रेशन' अब प्रेक्षाग्रह, पुस्तकालय/वाचनालय या पंजीकरण कह के देख लीजिये या तो हंसी का पात्र बनेंगे या समझे ही नहीं जायेंगे कुछ अर्थ तो ऐसे हैं जिनके लिए सरल प्रचलित हिंदी शब्द बता पाना ही बहुत कठिन होगा जैसे, स्टेशन, प्लेटफॉर्म, टिकट, ऑटोरिक्शा, बस, सिगरेट कितने गिनाये जिएँ? आप सोचिये, क्या किसी एक के लिए भी आप कोई ऐसा हिंदी शब्द बता सकते हैं, जो मजाक भर न हो? छोड़िये, दिमाग पर जोर न

डालिए यह उदाहरण हिंदी की अलोकप्रियता को नहीं बल्कि हिंदी की उदारता को दर्शाते हैं सरलता या कठिनाई का सवाल नहीं है, सवाल इस बात का है कि, प्रचलन में क्या शब्द है? अब देखिये, एक शब्द है, 'स्टेटिसटिक्स' उसके लिए हिंदी शब्द है 'सांख्यिकी' आप किस शब्द को सरल कहेंगे? मुझे खूब याद है कि, अपने छोटे भाई को 'स्टेटिसटिक्स' शब्द का उच्चारण सिखाने में बहुत हंसी भरी मेहनत करनी पड़ी थी फिर भी 'स्टेटिसटिक्स' खूब बोला समझा जाता है और 'सांख्यिकी' केवल हिंदी के सरकारी दस्तावेजों में ठहरता है।

कुल मिला कर नतीजा यही है कि, हिंदी की संपदा में अंग्रेजी के शब्द बाकायदा सम्मानपूर्वक बैठे हैं कोई इसे बुरा या गलत नहीं मानता सच कहा जाय तो हिंदी में न केवल अंग्रेजी शब्द खूब जुड़े है, बल्कि दूसरी भारतीय भाषाओं के शब्द भी लोगों की जुबान पर आसानी चढ़े हुए हैं।

हम दैनंदिन व्यवहार में उसी भाषा में बात करना पसंद करते हैं जिसमें बोलने, स्वयं को अभिव्यक्त करने में हमें कोई हिचक न हो, किसी प्रकार की कुंठा न हो, जिसमें हम बेझिझक खुल कर अपनी बात कह सकें और जब दो व्यक्तियों के बीच कोई एक सामान्य भाषा न हो तो जाहिर है उसे एक ऐसी सम्पर्क भाषा का सहारा लेना ही पड़ेगा जिसमें वे दोनों आपसी संप्रेषण कर सकें। भारत जैसे विविध भाषी देश में जहां केवल गिनी-चुनी जनता को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है और जहां भाषागत स्वरूप में इतनी अधिक भिन्नता है और एक प्रांतीय भाषा जानने वाला दूसरे राज्य की भाषा का एक शब्द भी नहीं समझ सके तो ऐसे में देश के सर्वाधिक क्षेत्र में, सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली-समझने वाली भाषा के रूप में हिंदी ही ऐसी कड़ी बन सकती थी। कहना न होगा कि हिंदी अपनी इस जन-सम्पर्क की भूमिका में पूरी तरह से खरी उतरी है।

सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसमें हिंदी का विकास सहज रूप से करने की बजाए निर्देशों और आदेशों के अर्थ में ज्यादा किया गया है। संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने, राजभाषा अधिनियम एवं नियम बनने के बाद 1970 से आज लेकर हिंदी के कार्य को लगभग पांच दशक पूरे होने को हैं। उस दौरान राजभाषा हिंदी का मूल उद्देश्य बैंकों की समूची कार्य संस्-ति में भाषिक परिवर्तन लाना था, ताकि देश की आम जनता के बीच संवाद एवं कामकाज की भाषा हिंदी हो सके। हिंदी अधिकारियों से संप्रेषण अधिकारी के रूप में काम की अपेक्षा थी जो दो भाषाओं को जोड़कर सेतु के रूप में काम करें। पर तमाम प्रयासों, नीति, नियमों के बावजूद बैंकों एवं सरकारी

कार्यालयों में मूल रूप में हिंदी में कामकाज का दायरा काफी सीमित है। सदियों से अंग्रेजी में कामकाज की जो प्रथा बनी हुई थी उससे अलग हटकर हिंदी में स्वतंत्र रूप से काम करने की प्रवृत्ति आज भी नदारद है। संपर्क एवं व्यवहार में चाहे हिंदी का भरपूर इस्तेमाल हो रहा है पर हिंदी में जितना भी लिखित काम हो रहा है वह अनुवाद के जरिए ही हो रहा है। अनुवाद की इस संस्–ति की वजह से हिंदी अनुवाद आधारित पिछलग्गू भाषा बनकर ही रह गई है और हर काम को अनुवाद के जरिए करने के कारण सरकारी कार्यालयों एवं बैंकों में हिंदी का एक –त्रिम, बोझिल और अटपटा स्वरूप ही दिखाई देता है। हिंदी के क्लिष्ट रूप को स्पष्ट करनेवाला एक चुटकुला प्रचलित है, एक बार एक सज्जन रेलवे स्टेशन से बाहर आये और एक रिक्शेवाले से पूछा– परिसदन चलोगे? रिक्शे वाला चकरा गया बोला, साहब हम ठहरे अनपढ़, हमें अंगेजी नहीं आती, हिंदी में बोलिए, तब उन सज्जन ने कहा सर्किट हाउस' चलोगे? इस पर रिक्शे वाला तुरंत समझकर बोला हां जरूर चलूंगा।'

इस बोझिल एवं अटपटे स्वरूप का मुख्य कारण है प्रशासन को दी गई हिंदी संबंधी औपचारिकताएं– कितना करना है, कब करना है, कैसे करना है आदि अर्थात आंकड़ों का खेल। कार्यालय के काम में स्वाभाविक भाषा की जगह अनुदित भाषा के प्रयोग के कारण विकृत हिंग्लिश' का एक रूप विकसित हो गया है। अंग्रेजी जानने वालों की बात तो दूर, हिंदी जानने वाले भी इस भाषा के बवंडर में गोते खाते नजर आते हैं और हिंदी के नाम पर क्लिष्टता का लेबल चस्पा हो गया है। इसे कठिन बनाने में तथाकथित हिंदीदां ज्ञानवीरों का भी बड़ा हाथ है, जो कथ्य की बजाए शब्दों से जूझते रहे और मक्षिका स्थाने मक्षिका' वाली हिंदी गढ़ते रहे। लेकिन अब पिछले कुछ सालों से इसमें अनुवाद की जगह पुनर्सृजन या पुनर्लेखन की बात उठी है। जहाँ–तहाँ इस पर विचार भी हुआ है। कुछ सुपरिणाम भी देखने में आए हैं और लगता है कि, यदि इस प्रक्रिया को सही रूप में अपना लिया जाए तो सरकारी हिंदी वाली बात खत्म हो सकती है और कामकाज में भाषा के उपयोग को लेकर नयी संभावनाओं को ढूंढा जा सकता है।

भाषा की दृष्टि से भले ही कुछ सुधार की जरूरत हो किंतु इसे मानने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए कि प्रशासन के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कठिन परिस्थितियों के चलते भी हिंदी किसी हद तक अपनी जगह बनाने में सफल हुई है। प्रशासन में हिंदी के प्रयोग की विफलता को लेकर कुछ लोग अक्सर

विलाप-सा करते रहते हैं। ऐसा लगता है कि, यह भी एक तरह की अतिवादी प्रतिक्रिया है। हमें समय के साथ उभर रही नयी संभावनाओं पर भी अपनी नजर रखनी चाहिए।

आज न्यायालयों ने संविधान में दर्ज क्षेत्रीय भाषाओं में कागज-पत्रों को स्वीकार करना शुरू कर दिया है। कुछ हिंदीभाषी राज्यों की अदालतों ने तो काफी कार्रवाई भी हिंदी में करनी आरंभ कर दी है जिनमें निर्णय देना तक शामिल है। पर देखा जाए तो यह सुधार अभी निचली अदालतों एवं जिला और सेशन अदालतों तक सीमित है। उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय के गलियारों में अभी हिंदी की गूंज नहीं है। धीरे-धीरे ही सही, पर न्याय के क्षेत्र में भाषा को भी न्याय की अपेक्षा है। यहां यह उल्लेखनीय है कि, जनता के बीच व्यवहार की भाषा के रूप में हिंदी के कामकाज का दायरा अत्यंत व्यापक और विविध है। इसमें केवल आपसी संप्रेषण नहीं बल्कि मार्केट में उत्पादों के विज्ञापन, जनता के बीच अपनी योजनाओं और उपलब्धियों का प्रचार, मनोरंजन और प्रौद्योगिकी के प्रयोग का क्षेत्र भी शामिल है। बैंकिंग क्षेत्र में वाणिज्य, लेखा, विधि, अर्थशास्त्र आदि विषयों से जुड़ी सामग्री के साथ साथ -षि, लघु उद्योग और आम आदमी यानी ग्राहकों से जुड़े न जाने कितने क्षेत्र हैं, जो समूचे कामकाज का हिस्सा हैं।

प्रौद्योगिकी के विकास के साथ इंटरनेट, मोबाइल, एटीएम आदि न जाने कितनी तरह के और माध्यम हैं, जो ग्राहकों से संवाद के क्षेत्र हैं जहां इनसे जुड़ी जानकारी को सहज सरल, समझने आनेवाली भाषा में अभिव्यक्त करना जटिल और चुनौतिपूर्ण है। ऐसे में स्वाभाविक रूप से उन क्षेत्रों में प्रचलित शब्द हिंदी में अपना लिये जाते हैं और अंतत: वे हिंदी का एक हिस्सा बन जाते हैं। यह सहज प्रयोग से विकसित हो रही भाषा का रूप है, जो अनुवाद की भाषा से बहुत अलग है।

इस बात में दो राय नहीं हो सकती कि किसी उपभोक्ता वस्तु के विज्ञापन या उसके प्रयोग संबंधी निर्देश देने वाली भाषा और किसी सरकारी कार्यालय द्वारा जारी विज्ञापन की भाषा में जमीन आसमान का अंतर होता है। कारण बहुत ही सरल है - पहली स्थिति में उद्देश्य उपभोक्ता वस्तु की बिक्री और उस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की आम बोल चाल की भाषा में अपने सामान को जनता तक पहुंचाने का प्रयास है। जबकि दूसरी स्थिति में अंग्रेजी में मूल रूप से तैयार विज्ञापन को राजभाषा संबंधी अनुदेशों के कारण हिंदी में अनुवाद कर प्रस्तुत

करना है। पहली स्थिति में स्व-भावना, स्व-प्रयास शामिल है, जबकि दूसरी स्थिति महज कागजी कार्रवाई के लिए की गयी लीपा-पोती है।

आज व्यवसाय की तेज शक्तियों ने जनता को लुभाने, आकर्षित करने के लिए भाषा को बदल दिया है। नई व्यावसायिक हिन्दी को इस तथ्य का नोटिस लेना चाहिए। जिस रूप में व्यावसायिक हिन्दी की कल्पना की जाती है वह नए बाजार की नई व्यावसायिक हिन्दी से मेल नहीं खाती। इस क्रम में उपलब्ध और निर्धारित व्यावसायिक हिन्दी को नए बाजार के अनुकूल दुरुस्त किया जाना चाहिए। कठिन अनुवादों की जगह प्रायः प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को यथावत या थोड़ा घिस के रखा जा सकता है। मसलन, कॉल मनी के लिए शीध्रावधि द्रव्य' मुद्रा की जगह 'कॉल मनी' ही चलाया जाए तो वह जुबान पर ज्यादा चढ़ेगा। 'कन्फिस्केमशन' के लिए 'अधिहरण' की जगह कन्फिमस्केशिन ही रहने दिया जा सकता है।

कंपनी डिलीवरी, सप्लाई, प्रोजेक्शन, शेयर, स्टॉक, इन्फ्लेशन, हैकर्स, ई-कॉमर्स, ई-बिजनेस, अखबार, आदि शब्द देखते-देखते प्रचलन में आए हैं। बढ़ते भ्रष्ट्राचार से 'किक बैंक' मनी लांडरिंग, जैसे शब्द को हिन्दी में चला दिया। शेयरों के नाम, कंपनियों के नाम सभी अंग्रेजी में ही चलते हैं। इसी में से नई भाषा बनती है। आज वक्त की यही जरूरत है कि, व्यवसायों और बाजार के बीच नयी बन रही हिन्दी का व्यापक सर्वेक्षण किया जाए और नई शब्दावली गढ़ी जाये।

3

हिन्दी : भाषिक स्वरूप

दुनिया भर में अनेक प्रकार की भाषाएं बोली जाती है। अलग-अलग क्षेत्रों के लोग अलग-अलग प्रकार की भाषा काम में लेते हैं। संसार में हजारों की संख्या में भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। इन भाषाओं का विकास संसार के अलग-अलग क्षेत्रों में हुआ है। मनुष्य के लिए इन सब भाषाओं को सीखना संभव नहीं है।

हिंदी व्याकरण, हिंदी भाषा को शुद्ध रूप में लिखने और बोलने संबंधी नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र है। यह हिंदी भाषा के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसमें हिंदी के सभी स्वरूपों का चार खंडों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है, यथा- वर्ण विचार के अंतर्गत ध्वनि और वर्ण तथा शब्द विचार के अंतर्गत शब्द के विविध पक्षों संबंधी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य संबंधी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्यिक रचनाओं के शिल्पगत पक्षों पर विचार किया गया है।

समान प्रतीत होने वाले शब्द

शब्दों की पहचान के अनेक रूप हैं। इनमें से एक रूप वह है जिसमें दो शब्द सामान्यत: एक जैसे लगते हैं, परन्तु उन शब्दों के अर्थ समान नहीं होते। इनका प्रयोग (असावधानी के कारण) एक-दूसरे के स्थान पर कर दिया जाता

है। वस्तुत: ये दोनों शब्द अलग-अलग हैं। इस वर्ग के लगभग ढाई-सौ शब्द-युग्म नीचे दिये जा रहे हैं।

अगर-अगरु

'अगर' विदेशी शब्द है, इसका प्रयोग 'यदि' के स्थान पर होता है। 'अगरु' सुगन्धित वृक्ष की लकड़ी का नाम है, इसका उपयोग पूजा में सुगन्धि के लिए होता है। व्यापारी-लोग प्राय: 'अगरु को 'अगर' भी बोलते और लिखते हैं, यथा 'अगर-बत्ती'।

अग्रज-अंग्रेज

अग्रज=अग्रज, पहिले (=अग्र) जन्म लेने वाला पुरुष, बड़ा भाई। इसका विलोम शब्द अनुज= अनुज बनता है। 'अग्रज और अनुज दोनों ने, तनिक परस्पर अवलोका'-(पंचवटी)।

'अंग्रेज' ग्रेट ब्रिटेन में रहनेवाली एक जाति का नाम है। अंग्रेजी इसी जाति की भाषा को कहते हैं।

अचल-आंचल

अचल= अचल, पर्वत, जो चलता न हो। यथा 'हिमालय', 'विन्ध्याचल' आदि।

'आंचल' शब्द का अर्थ भाग अथवा क्षेत्र है। कपड़े के भाग (विशेषत: नारी के वस्त्र के भाग) को आंचल कहते हैं, यथा 'छोड़ दो, आंचल, जमाना क्या कहोगा'। क्षेत्र के अर्थ के प्रयोग हैं-'उत्तरांचल', 'पूर्वांचल' आदि। इस अर्थ में विशेषण 'आंचलिक' बनता है, 'आंचलिक उपन्यास', 'आंचलिक संस्-ति' आदि।

अजात-आजाद

अजात=अजात, जिसने जन्म ही न लिया हो। यथा 'अजातशत्रु' अर्थात् जिसके शत्रु ने जन्म ही न लिया हो अर्थात् 'सर्वप्रिय'। इतिहास में प्रसिद्ध एक राजा का नाम भी है।

'आजाद' विदेशी शब्द है, अर्थ है 'स्वतन्त्र' (प्राय: राजनीतिक स्वतंत्रता के अर्थ में)। नेताजी ने अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए जो सेना खड़ी की थी उसका नाम 'आजाद हिन्द फौज' था।

अनल-अनिल

'अनल' अग्नि को कहते हैं। यथा दाव़अनल=दावानल, जठऱअनल=जठरानल।

'अनिल' वायु को कहते हैं। यथा मलय़अनिल=मलयानिल।

अन्तर-अन्त

'अन्तर' शब्द का प्रयोग 'भिन्नता' अथवा 'दूरी' के लिए होता है। 'पुस्तक के प्रथम तथा द्वितीय संस्करणों में बहुत अन्तर है', 'दिल्ली से कलकत्ते का अन्तर....'।

'अन्त' भी तत्सम है। यथा 'अन्तर्जातीय', 'अन्तर्देशीय' आदि।

'अन्त' का प्रयोग 'अन्तः' के रूप में भी होता है, यथा 'अन्तःकरण'।

अनुकरण-अनुसरण

'अनुकरण' अथवा 'अनु-ति' शब्द का अर्थ 'नकल' है। यह नकल किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार की होती है, उससे प्रभावित होने पर।

अनुसरण=अनुसरण, आंख बंद करके किसी के पीछे चलना।

अनुकरण में पहिले हम प्रभावित होते हैं, फिर उसका-सा व्यवहार करते है। 'अनुकरण' में सोचना-समझना प्रभावित होना नहीं होता।

अनुकूल-अनुरूप

'अनुकूल' शब्द का विलोम 'प्रतिकूल' है। प्रायः अनुकूल व्यवहार मानसिकता पर निर्भर है। 'अनुकूल' को मित्र तथा 'प्रतिकूल' को शत्रु समझा जाता है।

अनुरूप=अनुरूप शब्द का व्यवहार ऐच्छिक तथा बाह्य होता है।

अनुसार-अनुस्वार

अनुसार=अनुसार, अनुसरण करते हुए, 'अकोर्डिंग टु'। 'सूचना के अनुसार वे यहां छह बजे पहुंच रहे हैं। 'अनुस्वार' व्याकरण-शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। 'अनुस्वार' वर्ग के पंचम व्यंजन का प्रतिनिधि है, इसका उच्चारण पूर्ववर्ती स्वर के पश्चात् होता है। सामान्य भाषा में अनुस्वार को 'बिन्दु' तथा अनुनासिक को 'अर्द्धबिन्दु' (अथवा 'चन्द्रबिन्दु') भी कह दिया जाता है। अनुस्वार तथा

अनुनासिक का अन्तर स्पष्ट न होने के कारण (भूल से) 'गांधी' को 'गाँधी' तथा 'हँसी' को 'हंसी' लिख दिया जाता है।

अपेक्षा-उपेक्षा

'अपेक्षा' का प्रयोग तुलना के प्रसंग में होता है।

'उपेक्षा' का अर्थ 'उदासीनता' है।

'इस युवक को माता की अपेक्षा पिता से अधिक उपेक्षा मिलती रही है'।

अनैतिक-अवैतनिक

अ+नैतिक=अनैतिक, नैतिक आचरण के विपरीत, अन-इथीकल।

अ+वैतनिक=अवैतनिक, जिस कार्य के करने में वेतन न स्वीकार किया गया हो, ऑनरेरी।

अभाव-प्रभाव

अ+भाव=अभाव, कमी अथवा लोप। 'इसमें उत्साह का अभाव है।'

प्र+भाव=प्रभाव, असर। 'उसके प्रभाव में यह भी धूम्र-पान करने लगा है'।

भाषा, व्याकरण और बोली

परिभाषा- भाषा अभिव्यक्ति का एक ऐसा समर्थ साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार जाना सकता है।

संसार में अनेक भाषाएँ हैं। जैसे-हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, फ्रैंच, चीनी, जर्मन इत्यादि।भाषा के प्रकार- भाषा दो प्रकार की होती है-

1. मौखिक भाषा।
2. लिखित भाषा।

आमने-सामने बैठे व्यक्ति परस्पर बातचीत करते हैं अथवा कोई व्यक्ति भाषण आदि द्वारा अपने विचार प्रकट करता है तो उसे भाषा का मौखिक रूप कहते हैं।

जब व्यक्ति किसी दूर बैठे व्यक्ति को पत्र द्वारा अथवा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में लेख द्वारा अपने विचार प्रकट करता है तब उसे भाषा का लिखित रूप कहते हैं।

व्याकरण

मनुष्य मौखिक एवं लिखित भाषा में अपने विचार प्रकट कर सकता है और करता रहा है, किन्तु इससे भाषा का कोई निश्चित एवं शुद्ध स्वरूप स्थिर नहीं हो सकता। भाषा के शुद्ध और स्थायी रूप को निश्चित करने के लिए नियमबद्ध योजना की आवश्यकता होती है और उस नियमबद्ध योजना को हम व्याकरण कहते हैं।

परिभाषा- व्याकरण वह शास्त्र है जिसके द्वारा किसी भी भाषा के शब्दों और वाक्यों के शुद्ध स्वरूपों एवं शुद्ध प्रयोगों का विशद ज्ञान कराया जाता है।

भाषा और व्याकरण का संबंध- कोई भी मनुष्य शुद्ध भाषा का पूर्ण ज्ञान व्याकरण के बिना प्राप्त नहीं कर सकता। अतः भाषा और व्याकरण का घनिष्ठ संबंध हैं वह भाषा में उच्चारण, शब्द-प्रयोग, वाक्य-गठन तथा अर्थों के प्रयोग के रूप को निश्चित करता है।

व्याकरण के विभाग- व्याकरण के चार अंग निर्धारित किये गये हैं-

1. वर्ण-विचार।
2. शब्द-विचार।
3. पद-विचार।
4. वाक्य विचार।

बोली

भाषा का क्षेत्रीय रूप बोली कहलाता है। अर्थात् देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषा बोली कहलाती है और किसी भी क्षेत्रीय बोली का लिखित रूप में स्थिर साहित्य वहाँ की भाषा कहलाता है।

लिपि

किसी भी भाषा के लिखने की विधि को 'लिपि' कहते हैं। हिन्दी और संस्कृत भाषा की लिपि का नाम देवनागरी है। अंग्रेजी भाषा की लिपि 'रोमन', उर्दू भाषा की लिपि फारसी, और पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है।

साहित्य

ज्ञान-राशि का संचित कोश ही साहित्य है। साहित्य ही किसी भी देश, जाति और वर्ग को जीवंत रखने का- उसके अतीत रूपों को दर्शाने का एकमात्र

साक्ष्य होता है। यह मानव की अनुभूति के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करता है और पाठकों एवं श्रोताओं के हृदय में एक अलौकिक अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति उत्पन्न करता है।

वर्ण-विचार

परिभाषा-हिन्दी भाषा में प्रयुक्त सबसे छोटी ध्वनि वर्ण कहलाती है। जैसे-अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, क्, ख् आदि।

वर्णमाला–वर्णों के समुदाय को ही वर्णमाला कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला में 44 वर्ण हैं। उच्चारण और प्रयोग के आधार पर हिन्दी वर्णमाला के दो भेद किए गए हैं-

1. स्वर
2. व्यंजन।

1. स्वर–जिन वर्णों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से होता हो और जो व्यंजनों के उच्चारण में सहायक हों वे स्वर कहलाते है। ये संख्या में ग्यारह हैं-

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।उच्चारण के समय की दृष्टि से स्वर के तीन भेद किए गए हैं-

1. ह्रस्व स्वर।
2. दीर्घ स्वर।
3. प्लुत स्वर।

1. ह्रस्व स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में कम-से-कम समय लगता हैं उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। ये चार हैं- अ, इ, उ, ऋ। इन्हें मूल स्वर भी कहते हैं।

2. दीर्घ स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व स्वरों से दुगुना समय लगता है उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। ये हिन्दी में सात हैं- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

विशेष–दीर्घ स्वरों को ह्रस्व स्वरों का दीर्घ रूप नहीं समझना चाहिए। यहाँ दीर्घ शब्द का प्रयोग उच्चारण में लगने वाले समय को आधार मानकर किया गया है।

3. प्लुत स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वरों से भी अधिक समय लगता है उन्हें प्लुत स्वर कहते हैं। प्राय: इनका प्रयोग दूर से बुलाने में किया जाता है।

मात्राएँ

स्वरों के बदले हुए स्वरूप को मात्रा कहते हैं स्वरों की मात्राएँ निम्नलिखित हैं-

स्वर मात्राएँ शब्द अ ◌ कम

आ ◌ा काम

इ ◌ि किसलय

ई ◌ी खीर

उ ◌ु गुलाब

ऊ ◌ू भूल

ऋ ◌ृ तृण

ए ◌े केश

ऐ ◌ै है

ओ ◌ो चोर

औ ◌ौ चौखट

अ वर्ण (स्वर) की कोई मात्रा नहीं होती। व्यंजनों का अपना स्वरूप निम्नलिखित हैं-

क् च् छ् ज् झ् त् थ् ध् आदि।

अ लगने पर व्यंजनों के नीचे का (हल) चिह्न हट जाता है। तब ये इस प्रकार लिखे जाते हैं-

क च छ ज झ त थ ध आदि।

व्यंजन

जिन वर्णों के पूर्ण उच्चारण के लिए स्वरों की सहायता ली जाती है वे व्यंजन कहलाते हैं। अर्थात व्यंजन बिना स्वरों की सहायता के बोले ही नहीं जा सकते। ये संख्या में 33 हैं। इसके निम्नलिखित तीन भेद हैं-

1. स्पर्श
2. अंत:स्थ
3. ऊष्म

1. स्पर्श—इन्हें पाँच वर्गों में रखा गया है और हर वर्ग में पाँच-पाँच व्यंजन हैं। हर वर्ग का नाम पहले वर्ग के अनुसार रखा गया है जैसे-

कवर्ग- क् ख् ग् घ् ङ्
चवर्ग- च् छ् ज् झ् ञ्
टवर्ग- ट् ठ् ड् ढ् ण् (ड़् ढ़्)
तवर्ग- त् थ् द् ध् न्
पवर्ग- प् फ् ब् भ् म्

2.अंत:स्थ-

ये निम्नलिखित चार हैं-

य् ‍ल् व्

3.ऊष्म-

ये निम्नलिखित चार हैं-

श् ष् स् ह् वैसे तो जहाँ भी दो अथवा दो से अधिक व्यंजन मिल जाते हैं वे संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं, किन्तु देवनागरी लिपि में संयोग के बाद रूप-परिवर्तन हो जाने के कारण इन तीन को गिनाया गया है। ये दो-दो व्यंजनों से मिलकर बने हैं। जैसे-क्ष=क्‌ष अक्षर, ज्ञ=ज्ञय ज्ञान, त्र=त्‌+र नक्षत्र कुछ लोग क्ष् त्‌ ‍और ज्ञ् को भी हिन्दी वर्णमाला में गिनते हैं, पर ये संयुक्त व्यंजन हैं। अत: इन्हें वर्णमाला में गिनना उचित प्रतीत नहीं होता।

अनुस्वार-इसका प्रयोग पंचम वर्ण के स्थान पर होता है। इसका चिन्ह (a) है। जैसे- सम्भव=संभव, सन्जय=संजय, गङ्गा=गंगा।

विसर्ग-इसका उच्चारण ह् के समान होता है। इसका चिह्न (:) है। जैसे-अत:, प्रात:।

चंद्रबिंदु-जब किसी स्वर का उच्चारण नासिका और मुख दोनों से किया जाता है तब उसके ऊपर चंद्रबिंदु (ँ) लगा दिया जाता है।

यह अनुनासिक कहलाता है। जैसे-हँसना, आँख। हिन्दी वर्णमाला में 11 स्वर तथा 33 व्यंजन गिनाए जाते हैं, परन्तु इनमें ड़्, ढ़् अं तथा अ: जोड़ने पर हिन्दी के वर्णों की कुल संख्या 48 हो जाती है।

हलंत-जब कभी व्यंजन का प्रयोग स्वर से रहित किया जाता है तब उसके नीचे एक तिरछी रेखा (्) लगा दी जाती है। यह रेखा हल कहलाती है। हलयुक्त व्यंजन हलंत वर्ण कहलाता है। जैसे-विद्यां।

वर्णों के उच्चारण-स्थान

मुख के जिस भाग से जिस वर्ण का उच्चारण होता है उसे उस वर्ण का उच्चारण स्थान कहते हैं।

उच्चारण स्थान तालिका

क्रम	वर्ण	उच्चारण	श्रेणी
1.	अ आ क् ख् ग् घ् ङ् ह् विसर्ग कंठ और जीभ का कंठस्थ	निचला भाग	
2.	इ ई च् छ् ज् झ् ञ् य् श तालु और जीभ	तालव्य	
3.	ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् ड़् ढ़् ष् मूर्धा और जीभ	मूर्धन्य	
4.	त् थ् द् ध् न् ल् स्	दाँत और जीभ	दंत्य
5.	उ ऊ प् फ् ब् भ् म	दोनों होंठ	ओष्ठ्य
6.	ए ऐ	कंठ तालु और जीभ	कंठतालव्य
7.	ओ औ	दाँत जीभ और होंठ	कंठोष्ठ्य
8.	व्	दाँत जीभ और होंठ	दंतो

शब्द-विचार

परिभाषा- एक या अधिक वर्णों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि शब्द कहलाता है। जैसे- एक वर्ण से निर्मित शब्द-न (नहीं) व (और) अनेक वर्णों से निर्मित शब्द-कुत्ता, शेर, कमल, नयन, प्रासाद, सर्वव्यापी, परमात्मा।

शब्द-भेद

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द-भेद-

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द के निम्नलिखित तीन भेद हैं-

1. रूढ़
2. यौगिक
3. योगरूढ़

1. रूढ़–जो शब्द किन्हीं अन्य शब्दों के योग से न बने हों और किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हों तथा जिनके टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता, वे रूढ़ कहलाते हैं। जैसे-कल, पर। इनमें क, ल, प, र का टुकड़े करने पर कुछ अर्थ नहीं हैं। अत: ये निरर्थक हैं।

2. यौगिक–जो शब्द कई सार्थक शब्दों के मेल से बने हों, वे यौगिक कहलाते हैं। जैसे–देवालय=देव़आलय, राजपुरुष=राज़पुरुष, हिमालय=हिम़आलय, देवदूत=देव़दूत आदि। ये सभी शब्द दो सार्थक शब्दों के मेल से बने हैं।

3. योगरूढ़–वे शब्द, जो यौगिक तो हैं, किन्तु सामान्य अर्थ को न प्रकट कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं। जैसे–पंकज, दशानन आदि। पंकज=पंक़ज (कीचड़ में उत्पन्न होने वाला) सामान्य अर्थ में प्रचलित न होकर कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अत: पंकज शब्द योगरूढ़ है। इसी प्रकार दश (दस) आनन (मुख) वाला रावण के अर्थ में प्रसिद्ध है।

उत्पत्ति के आधार पर शब्द-भेद–उत्पत्ति के आधार पर शब्द के निम्नलिखित चार भेद हैं–

1. तत्सम–जो शब्द संस्कृत भाषा से हिन्दी में बिना किसी परिवर्तन के ले लिए गए हैं वे तत्सम कहलाते हैं। जैसे–अग्नि, क्षेत्र, वायु, रात्रि, सूर्य आदि।

2. तद्भव–जो शब्द रूप बदलने के बाद संस्कृत से हिन्दी में आए हैं वे तद्भव कहलाते हैं। जैसे–आग (अग्नि), खेत(क्षेत्र), रात (रात्रि), सूरज (सूर्य) आदि।

3. देशज–जो शब्द क्षेत्रीय प्रभाव के कारण परिस्थिति व आवश्यकतानुसार बनकर प्रचलित हो गए हैं वे देशज कहलाते हैं। जैसे–पगड़ी, गाड़ी, थैला, पेट, खटखटाना आदि।

4. विदेशी या विदेशज–विदेशी जातियों के संपर्क से उनकी भाषा के बहुत से शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे शब्द विदेशी अथवा विदेशज कहलाते हैं। जैसे–स्कूल, अनार, आम, कैंची, अचार, पुलिस, टेलीफोन, रिक्शा आदि। ऐसे कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है।

अंग्रेजी– कॉलेज, पैंसिल, रेडियो, टेलीविजन, डॉक्टर, लैटरबक्स, पैन, टिकट, मशीन, सिगरेट, साइकिल, बोतल आदि।

फारसी– अनार, चश्मा, जमींदार, दुकान, दरबार, नमक, नमूना, बीमार, बरफ, रूमाल, ओदमी, चुगलखोर, गंदगी, चापलूसी आदि।

अरबी– औलाद, अमीर, कत्ल, कलम, कानून, खत, फकीर, रिश्वत, औरत, कैदी, मालिक, गरीब आदि।

तुर्की– कैंची, चाकू, तोप, बारूद, लाश, दारोगा, बहादुर आदि।

पुर्तगाली– अचार, आलपीन, कारतूस, गमला, चाबी, तिजोरी, तौलिया, फीता, साबुन, तंबाकू, कॉफी, कमीज आदि।

फ्रांसीसी- पुलिस, कार्टून, इंजीनियर, कर्फ्यू, बिगुल आदि।
चीनी- तूफान, लीची, चाय, पटाखा आदि।
यूनानी- टेलीफोन, टेलीग्राफ, ऐटम, डेल्टा आदि।
जापानी- रिक्शा आदि।

प्रयोग के आधार पर शब्द-भेद

प्रयोग के आधार पर शब्द के निम्नलिखित आठ भेद है–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. क्रिया-विशेषण
6. संबंधबोधक
7. समुच्चयबोधक
8. विस्मयादिबोधक इन उपर्युक्त आठ प्रकार के शब्दों को भी विकार की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है-
   1. विकारी
   2. अविकारी

1. विकारी शब्द–जिन शब्दों का रूप-परिवर्तन होता रहता है वे विकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे-कुत्ता, कुत्ते, कुत्तों, मैं मुझे, हमें अच्छा, अच्छे खाता है, खाती है, खाते हैं। इनमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।

2. अविकारी शब्द–जिन शब्दों के रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है वे अविकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे-यहाँ, किन्तु, नित्य, और, हे अरे आदि। इनमें क्रिया-विशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक आदि हैं।

अर्थ की दृष्टि से शब्द-भेद

अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं-

1. सार्थक
2. निरर्थक

1. सार्थक शब्द–जिन शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ हो वे शब्द सार्थक शब्द कहलाते हैं। जैसे-रोटी, पानी, ममता, डंडा आदि।
2. निरर्थक शब्द–जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता है वे शब्द निरर्थक कहलाते हैं। जैसे-रोटी-वोटी, पानी-वानी, डंडा-वंडा इनमें वोटी, वानी, वंडा आदि निरर्थक शब्द हैं।

विशेष- निरर्थक शब्दों पर व्याकरण में कोई विचार नहीं किया जाता है।

पद-विचार

सार्थक वर्ण-समूह शब्द कहलाता है, पर जब इसका प्रयोग वाक्य में होता है तो वह स्वतंत्र नहीं रहता बल्कि व्याकरण के नियमों में बँध जाता है और प्रायः इसका रूप भी बदल जाता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है तो उसे शब्द न कहकर पद कहा जाता है।

हिन्दी में पद पाँच प्रकार के होते हैं–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. अव्यय

1. संज्ञा–किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु आदि तथा नाम के गुण, धर्म, स्वभाव का बोध कराने वाले शब्द संज्ञा कहलाते हैं। जैसे-श्याम, आम, मिठास, हाथी आदि।

संज्ञा के प्रकार–संज्ञा के तीन भेद हैं–

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा।
2. जातिवाचक संज्ञा।
3. भाववाचक संज्ञा।

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से किसी विशेष, व्यक्ति, प्राणी, वस्तु अथवा स्थान का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे-जयप्रकाश नारायण, श्रीकृष्ण, रामायण, ताजमहल, कुतुबमीनार, लालकिला हिमालय आदि।

2. जातिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से उसकी संपूर्ण जाति का बोध हो उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे-मनुष्य, नदी, नगर, पर्वत, पशु, पक्षी, लड़का, कुत्ता, गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी, नारी, गाँव आदि।

3. भाववाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से पदार्थों की अवस्था, गुण-दोष, धर्म आदि का बोध हो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे-बुढ़ापा, मिठास, बचपन, मोटापा, चढ़ाई, थकावट आदि।

विशेष वक्तव्य- कुछ विद्वान अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव के कारण संज्ञा शब्द के दो भेद और बतलाते हैं–

1. समुदायवाचक संज्ञा।
2. द्रव्यवाचक संज्ञा।

1. समुदायवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा शब्दों से व्यक्तियों, वस्तुओं आदि के समूह का बोध हो उन्हें समुदायवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे-सभा, कक्षा, सेना, भीड़, पुस्तकालय दल आदि।

2. द्रव्यवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा-शब्दों से किसी धातु, द्रव्य आदि पदार्थों का बोध हो उन्हें द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे-घी, तेल, सोना, चाँदी, पीतल, चावल, गेहूँ, कोयला, लोहा आदि।इस प्रकार संज्ञा के पाँच भेद हो गए, किन्तु अनेक विद्वान समुदायवाचक और द्रव्यवाचक संज्ञाओं को जातिवाचक संज्ञा के अंतर्गत ही मानते हैं, और यही उचित भी प्रतीत होता है।

भाववाचक संज्ञा बनाना- भाववाचक संज्ञाएँ चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं। जैसे-

1. जातिवाचक संज्ञाओं से-
   दास-दासता
   पंडित-पांडित्य
   पुरुष-पुरुषत्व
   प्रभु-प्रभुता
   मित्र-मित्रता
   बालक-बालकपन
   बच्चा-बचपन
2. सर्वनाम से-
   अपना-अपनापन, अपनत्व निज निजत्व, निजता
   पराया-परायापन
   मम-ममत्व, ममता
3. विशेषण से-
   मीठा-मिठास
   मधुर-माधुर्य

निर्बल-निर्बलता, सफेद-सफेदी
हरा-हरियाली
सफल-सफलता

4. क्रिया से–
खेलना-खेल
थकना-थकावट
मुसकाना-मुसकान
कमाना-कमाई
उतरना-उतराई
उड़ना-उड़ानरहना-सहना रहन-सहन
देखना-भालना, देख-भाल

संज्ञा के विकारक तत्त्व

जिन तत्त्वों के आधार पर संज्ञा (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) का रूपांतर होता है वे विकारक तत्त्व कहलाते हैं।

वाक्य में शब्दों की स्थिति के आधार पर ही उनमें विकार आते हैं। यह विकार लिंग, वचन और कारक के कारण ही होता है। जैसे-लड़का शब्द के चारों रूप- 1.लड़का, 2.लड़के, 3.लड़कों, 4.लड़को-केवल वचन और कारकों के कारण बनते हैं।

लिंग- जिस चिह्न से यह बोध होता हो कि अमुक शब्द पुरुष जाति का है अथवा स्त्री जाति का वह लिंग कहलाता है।

परिभाषा- शब्द के जिस रूप से किसी व्यक्ति, वस्तु आदि के पुरुष जाति अथवा स्त्री जाति के होने का ज्ञान हो उसे लिंग कहते हैं। जैसे-लड़का, लड़की, नर, नारी आदि। इनमें 'लड़का' और 'नर' पुल्लिंग तथा लड़की और 'नारी' स्त्रीलिंग हैं।हिन्दी में लिंग के दो भेद हैं-

1. पुल्लिंग।
2. स्त्रीलिंग।

1. पुल्लिंग–जिन संज्ञा शब्दों से पुरुष जाति का बोध हो अथवा जो शब्द पुरुष जाति के अंतर्गत माने जाते हैं वे पुल्लिंग हैं। जैसे-कुत्ता, लड़का, पेड़, सिंह, बैल, घर आदि।

2. स्त्रीलिंग–जिन संज्ञा शब्दों से स्त्री जाति का बोध हो अथवा जो शब्द स्त्री जाति के अंतर्गत माने जाते हैं वे स्त्रीलिंग हैं। जैसे-गाय, घड़ी, लड़की, कुरसी, छड़ी, नारी आदि।

पुल्लिंग की पहचान-

1. आ, आव, पा, पन न ये प्रत्यय जिन शब्दों के अंत में हों वे प्रायः पुल्लिंग होते हैं। जैसे- मोटा, चढ़ाव, बुढ़ापा, लड़कपन लेन-देन।
2. पर्वत, मास, वार और कुछ ग्रहों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-विंध्याचल, हिमालय, वैशाख, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, राहु, केतु (ग्रह)।
3. पेड़ों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-पीपल, नीम, आम, शीशम, सागौन, जामुन, बरगद आदि।
4. अनाजों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-बाजरा, गेहूँ, चावल, चना, मटर, जौ, उड़द आदि।
5. द्रव पदार्थों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-पानी, सोना, ताँबा, लोहा, घी, तेल आदि।
6. रत्नों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-हीरा, पन्ना, मूँगा, मोती माणिक आदि।
7. देह के अवयवों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-सिर, मस्तक, दाँत, मुख, कान, गला, हाथ, पाँव, होंठ, तालु, नख, रोम आदि।
8. जल, स्थान और भूमंडल के भागों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-समुद्र, भारत, देश, नगर, द्वीप, आकाश, पाताल, घर, सरोवर आदि।
9. वर्णमाला के अनेक अक्षरों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे- अ, उ, ए, ओ, क, ख, ग, घ, च, छ, य, र, ल, व, श आदि।

स्त्रीलिंग की पहचान-

1. जिन संज्ञा शब्दों के अंत में ख होते है, वे स्त्रीलिंग कहलाते हैं। जैसे-ईख, भूख, चोख, राख, कोख, लाख, देखरेख आदि।
2. जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ट, वट, या हट होता है, वे स्त्रीलिंग कहलाती हैं। जैसे-झंझट, आहट, चिकनाहट, बनावट, सजावट आदि।
3. अनुस्वारांत, ईकारांत, ऊकारांत, तकारांत, सकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग कहलाती है। जैसे-रोटी, टोपी, नदी, चिट्ठी, उदासी, रात, बात, छत, भीत, लू, बालू, दारू, सरसों, खड़ाऊँ, प्यास, वास, साँस आदि।

4. भाषा, बोली और लिपियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–हिन्दी, संस्कृत, देवनागरी, पहाड़ी, तेलुगु पंजाबी गुरुमुखी।
5. जिन शब्दों के अंत में इया आता है वे स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–कुटिया, खटिया, चिड़िया आदि।
6. नदियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि।
7. तारीखों और तिथियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–पहली, दूसरी, प्रतिपदा, पूर्णिमा आदि।
8. पृथ्वी ग्रह स्त्रीलिंग होते हैं।
9. नक्षत्रों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–अश्विनी, भरणी, रोहिणी आदि।

शब्दों का लिंग-परिवर्तन

प्रत्यय	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
ई	घोड़ा	घोड़ी
	देव	देवी
	दादा	दादी
	लड़का	लड़की
	ब्राह्मण	ब्राह्मणी
	नर	नारी
	बकरा	बकरी
इय	चूहा	चुहिया
	चिड़ा	चिड़िया
	बेटा	बिटिया
	गुड्डा	गुड़िया
	लोटा	लुटिया
इन	माली	मालिन
	कहार	कहारिन
	सुनार	सुनारिन
	लुहार	लुहारिन
	धोबी	धोबिन
नी	मोर	मोरनी

	हाथी	हाथिन
	सिंह	सिंहनी
आनी	नौकर	नौकरानी
	चौधरी	चौधरानी
	देवर	देवरानी
	सेठ	सेठानी
	जेठ	जेठानी
आइन	पंडित	पंडिताइन
	ठाकुर	ठाकुराइन
आ	बाल	बाला
	सुत	सुता
	छात्र	छात्र
	शिष्य	शिष्या
अक को इका करके		पाठक पाठिका
	अध्यापक	अध्यापिका
	बालक	बालिका
	लेखक	लेखिका
	सेवक	सेविका
इनी (इणी)		तपस्वी तपस्विनी
	हितकारी	हितकारिनी
	स्वामी	स्वामिनी
	परोपकारी	परोपकारिनी

कुछ विशेष शब्द जो स्त्रीलिंग में बिलकुल ही बदल जाते हैं।

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
पिता	माता
भाई	भाभी
नर	मादा
राजा	रानी
ससुर	सास
सम्राट	सम्राज्ञी
पुरुष	स्त्री

बैल	गाय
युवक	युवती

विशेष वक्तव्य- जो प्राणिवाचक सदा शब्द ही स्त्रीलिंग हैं अथवा जो सदा ही पुल्लिंग हैं उनके पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग जताने के लिए उनके साथ 'नर' व 'मादा' शब्द लगा देते हैं। जैसे-

स्त्रीलिंग	पुल्लिंग
मक्खी	नर मक्खी
कोयल	नर कोयल
गिलहरी	नर गिलहरी
मैना	नर मैना
तितली	नर तितली
बाज	नर बाज
खटमल	नर खटमल
चील	नर चील
कछुआ	नर कछुआ
कौआ	नर कौआ
भेड़िया	नर भेड़िया
उल्लू	नर उल्लू
मच्छर	नी मच्छर

वचन

परिभाषा-शब्द के जिस रूप से उसके एक अथवा अनेक होने का बोध हो उसे वचन कहते हैं।

हिन्दी में वचन दो होते हैं-

1. एकवचन
2. बहुवचन

एकवचन–शब्द के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध हो, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे-लड़का, गाय, सिपाही, बच्चा, कपड़ा, माता, माला, पुस्तक, स्त्री, टोपी बंदर, मोर आदि।

बहुवचन–शब्द के जिस रूप से अनेकता का बोध हो उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे-लड़के, गायें, कपड़े, टोपियाँ, मालाएँ, माताएँ, पुस्तकें, वधुएँ, गुरुजन, रोटियाँ, स्त्रियाँ, लताएँ, बेटे आदि।

एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग

(क) आदर के लिए भी बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे-

(1) भीष्म पितामह तो ब्रह्मचारी थे।

(2) गुरुजी आज नहीं आये।

(3) शिवाजी सच्चे वीर थे।

(ख) बड़प्पन दर्शाने के लिए कुछ लोग वह के स्थान पर वे और मैं के स्थान हम का प्रयोग करते हैं जैसे-

(1) मालिक ने कर्मचारी से कहा, हम मीटिंग में जा रहे हैं।

(2) आज गुरुजी आए तो वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

(ग) केश, रोम, अश्रु, प्राण, दर्शन, लोग, दर्शक, समाचार, दाम, होश, भाग्य आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है। जैसे-

(1) तुम्हारे केश बड़े सुन्दर हैं।

(2) लोग कहते हैं।

बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग

(क) तू एकवचन है जिसका बहुवचन है तुम किन्तु सभ्य लोग आजकल लोक-व्यवहार में एकवचन के लिए तुम का ही प्रयोग करते हैं जैसे-

(1) मित्र, तुम कब आए।

(2) क्या तुमने खाना खा लिया।

(ख) वर्ग, वृंद, दल, गण, जाति आदि शब्द अनेकता को प्रकट करने वाले हैं, किन्तु इनका व्यवहार एकवचन के समान होता है। जैसे-

(1) सैनिक दल शत्रु का दमन कर रहा है।

(2) स्त्री जाति संघर्ष कर रही है।

(ग) जातिवाचक शब्दों का प्रयोग एकवचन में किया जा सकता है। जैसे-

(1) सोना बहुमूल्य वस्तु है।

(2) मुंबई का आम स्वादिष्ट होता है।

बहुवचन बनाने के नियम

(1) अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंतिम अ को एँ कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन
आँख	आँखें
बहन	बहनें
पुस्तक	पुस्तकें
सड़क	सड़के
गाय	गायें
बात	बातें

(2) आकारांत पुल्लिंग शब्दों के अंतिम 'आ' को 'ए' कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोड़े	कौआ	कौए
कुत्ता	कुत्ते	गधा	गधे
केला	केले	बेटा	बेटे

(3) आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंतिम 'आ' के आगे 'एँ' लगा देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कन्या	कन्याएँ	अध्यापिका	अध्यापिकाएँ
कला	कलाएँ	माता	माताएँ
कविता	कविताएँ	लता	लताएँ

(4) इकारांत अथवा ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'याँ' लगा देने से और दीर्घ ई को ह्रस्व इ कर देने से शब्द बहुवचन में बदल जाते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
बुद्धि	बुद्धियाँ	गति	गतियाँ
कली	कलियाँ	नीति	नीतियाँ
कॉपी	कॉपियाँ	लड़की	लड़कियाँ
थाली	थालियाँ	नारी	नारियाँ

(5) जिन स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में या है उनके अंतिम आ को आँ कर देने से वे बहुवचन बन जाते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
गुड़िया	गुड़ियाँ	बिटिया	बिटियाँ
चुहिया	चुहियाँ	कुतिया	कुतियाँ
चिड़िया	चिड़ियाँ	खटिया	खटियाँ
बुढ़िया	बुढ़ियाँ	गैया	गैयाँ

(6) कुछ शब्दों में अंतिम उ, ऊ और औ के साथ एँ लगा देते हैं और दीर्घ ऊ के साथन पर ह्रस्व उ हो जाता है। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
गौ	गौएँ	बहू	बहूएँ
वधू	वधूएँ	वस्तु	वस्तुएँ
धेनु	धेनुएँ	धातु	धातुएँ

(7) दल, वृंद, वर्ग, जन लोग, गण आदि शब्द जोड़कर भी शब्दों का बहुवचन बना देते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अध्यापक	अध्यापकवृंद	मित्र	मित्रवर्ग
विद्यार्थी	विद्यार्थीगण	सेना	सेनादल
आप	आप लोग	गुरु	गुरुजन
श्रोता	श्रोताजन	गरीब	गरीब लोग

(8) कुछ शब्दों के रूप 'एकवचन' और 'बहुवचन' दोनो में समान होते हैं। जैसे-

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
क्षमा	क्षमा	नेता	नेता
जल	जल	प्रेम	प्रेम
गिरि	गिरि	क्रोध	क्रोध
राजा	राजा	पानी	पानी

विशेष- (1) जब संज्ञाओं के साथ ने, को, से आदि परसर्ग लगे होते हैं तो संज्ञाओं का बहुवचन बनाने के लिए उनमें 'ओ' लगाया जाता है। जैसे-

एकवचन	बहुवचन
लड़के को बुलाओ।	लड़को को बुलाओ।
बच्चे ने गाना गाया।	बच्चों ने गाना गाया।
नदी का जल ठंडा है।	नदियों का जल ठंडा है।
आदमी से पूछ लो।	आदमियों से पूछ लो।

(2) संबोधन में 'ओ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे-

बच्चों ! ध्यान से सुनो। भाइयों ! मेहनत करो। बहनो ! अपना कर्तव्य निभाओ।

कारक

परिभाषा-संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका सीधा संबंध क्रिया के साथ ज्ञात हो वह कारक कहलाता है। जैसे-गीता ने दूध पीया। इस वाक्य में 'गीता' पीना क्रिया का कर्ता है और दूध उसका कर्म। अत: 'गीता' कर्ता कारक है और 'दूध' कर्म कारक।

कारक विभक्ति- संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के बाद 'ने, को, से, के लिए', आदि जो चिह्न लगते हैं वे चिह्न कारक विभक्ति कहलाते हैं।हिन्दी में आठ कारक होते हैं। उन्हें विभक्ति चिह्नों सहित नीचे देखा जा सकता है-

कारक विभक्ति चिह्न (परसर्ग)

1. कर्ता-ने
2. कर्म-को
3. करण-से, के साथ, के द्वारा
4. संप्रदान-के लिए, को
5. अपादान-से (पृथक)
6. संबंध का, के, की
7. अधिकरण-में, पर
8. संबोधन-हे ! हरे !

कारक चिह्न स्मरण करने के लिए इस पद की रचना की गई हैं-

कर्ता ने अरु कर्म को, करण रीति से जान।
संप्रदान को, के लिए, अपादान से मान।।
का, के, की, संबंध हैं, अधिकरणादिक में मान।
रे ! हे ! हो ! संबोधन, मित्र धरहु यह ध्यान।।

विशेष-कर्ता से अधिकरण तक विभक्ति चिह्न (परसर्ग) शब्दों के अंत में लगाए जाते हैं, किन्तु संबोधन कारक के चिह्न-हे, रे, आदि प्राय: शब्द से पूर्व लगाए जाते हैं।

1. कर्ता कारक–जिस रूप से क्रिया (कार्य) के करने वाले का बोध होता है वह 'कर्ता' कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'ने' है। इस 'ने' चिह्न का वर्तमानकाल और भविष्यकाल में प्रयोग नहीं होता है। इसका सकर्मक धातुओं के साथ भूतकाल में प्रयोग होता है। जैसे- 1.राम ने रावण को मारा। 2.लड़की स्कूल जाती है।पहले वाक्य में क्रिया का कर्ता राम है। इसमें 'ने' कर्ता कारक का विभक्ति-चिह्न है। इस वाक्य में 'मारा' भूतकाल की क्रिया है। 'ने' का प्रयोग प्राय: भूतकाल में होता है। दूसरे वाक्य में वर्तमानकाल की क्रिया का कर्ता लड़की है। इसमें 'ने' विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है।विशेष-
   (1) भूतकाल में अकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ भी ने परसर्ग (विभक्ति चिह्न) नहीं लगता है। जैसे-वह हँसा।
   (2) वर्तमानकाल व भविष्यतकाल की सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ ने परसर्ग का प्रयोग नहीं होता है। जैसे-वह फल खाता है। वह फल खाएगा।
   (3) कभी-कभी कर्ता के साथ 'को' तथा 'स' का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे-

   (अ) बालक को सो जाना चाहिए। (आ) सीता से पुस्तक पढ़ी गई।
   (इ) रोगी से चला भी नहीं जाता। (ई) उससे शब्द लिखा नहीं गया।
2. कर्म कारक–क्रिया के कार्य का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'को' है। यह चिह्न भी बहुत-से स्थानों पर नहीं लगता। जैसे- 1. मोहन ने साँप को मारा। 2. लड़की ने पत्र लिखा। पहले वाक्य में 'मारने' की क्रिया का फल साँप पर पड़ा है। अत: साँप कर्म कारक है। इसके साथ परसर्ग 'को' लगा है।

   दूसरे वाक्य में 'लिखने' की क्रिया का फल पत्र पर पड़ा। अत: पत्र कर्म कारक है। इसमें कर्म कारक का विभक्ति चिह्न 'को' नहीं लगा।
3. करण कारक–संज्ञा आदि शब्दों के जिस रूप से क्रिया के करने के साधन का बोध हो अर्थात् जिसकी सहायता से कार्य संपन्न हो वह करण कारक कहलाता है। इसके विभक्ति-चिह्न 'से' के 'द्वारा' है। जैसे- 1.अर्जुन ने जयद्रथ को बाण से मारा। 2.बालक गेंद से खेल रहे है।

   पहले वाक्य में कर्ता अर्जुन ने मारने का कार्य 'बाण' से किया। अत: 'बाण से' करण कारक है। दूसरे वाक्य में कर्ता बालक खेलने का कार्य 'गेंद से' कर रहे हैं। अत: 'गेंद से' करण कारक है।

4. संप्रदान कारक–संप्रदान का अर्थ है-देना। अर्थात कर्ता जिसके लिए कुछ कार्य करता है, अथवा जिसे कुछ देता है उसे व्यक्त करने वाले रूप को संप्रदान कारक कहते हैं। इसके विभक्ति चिह्न 'के लिए' को हैं।

1. स्वास्थ्य के लिए सूर्य को नमस्कार करो। 2. गुरुजी को फल दो।

इन दो वाक्यों में 'स्वास्थ्य के लिए' और 'गुरुजी को' संप्रदान कारक हैं।

5. अपादान कारक–संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का दूसरी से अलग होना पाया जाए वह अपादान कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिह्न 'से' है। जैसे- 1.बच्चा छत से गिर पड़ा। 2.संगीता घोड़े से गिर पड़ी।

इन दोनों वाक्यों में 'छत से' और घोड़े 'से' गिरने में अलग होना प्रकट होता है। अत: घोड़े से और छत से अपादान कारक हैं।

6. संबंध कारक–शब्द के जिस रूप से किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु से संबंध प्रकट हो वह संबंध कारक कहलाता है। इसका विभक्ति चिह्न 'का', 'के', 'की', 'रा', 'रे', 'री' है। जैसे- 1.यह राधेश्याम का बेटा है। 2.यह कमला की गाय है।

इन दोनों वाक्यों में 'राधेश्याम का बेटे' से और 'कमला का' गाय से संबंध प्रकट हो रहा है। अत: यहाँ संबंध कारक है।

7. अधिकरण कारक–शब्द के जिस रूप से क्रिया के आधार का बोध होता है उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसके विभक्ति-चिह्न 'में', 'पर' हैं। जैसे- 1.भँवरा फूलों पर मँडरा रहा है। 2.कमरे में टी.वी. रखा है।

इन दोनों वाक्यों में 'फूलों पर' और 'कमरे में' अधिकरण कारक है।

8. संबोधन कारक–जिससे किसी को बुलाने अथवा सचेत करने का भाव प्रकट हो उसे संबोधन कारक कहते है और संबोधन चिह्न (!) लगाया जाता है। जैसे- 1. अरे भैया ! क्यों रो रहे हो ? 2. हे गोपाल ! यहाँ आओ।

इन वाक्यों में 'अरे भैया' और 'हे गोपाल' ! संबोधन कारक है।

सर्वनाम

सर्वनाम-संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते है। संज्ञा की पुनरुक्ति को दूर करने के लिए ही सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। जैसे-मैं, हम, तू, तुम, वह, यह, आप, कौन, कोई, जो आदि।

सर्वनाम के भेद- सर्वनाम के छह भेद हैं-

1. पुरुषवाचक सर्वनाम।
2. निश्चयवाचक सर्वनाम।
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम।
4. संबंधवाचक सर्वनाम।
5. प्रश्नवाचक सर्वनाम।
6. निजवाचक सर्वनाम।

1. पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग वक्ता या लेखक स्वयं अपने लिए अथवा श्रोता या पाठक के लिए अथवा किसी अन्य के लिए करता है वह पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैं-

(1) उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला अपने लिए करे, उसे उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-मैं, हम, मुझे, हमारा आदि।

(2) मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के लिए करे, उसे मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-तू, तुम, तुझे, तुम्हारा आदि।

(3) अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के लिए करे उसे अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-वह, वे, उसने, यह, ये, इसने, आदि।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम–जो सर्वनाम किसी व्यक्ति वस्तु आदि की ओर निश्चयपूर्वक संकेत करें वे निश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। इनमें 'यह', 'वह', 'वे' सर्वनाम शब्द किसी विशेष व्यक्ति आदि का निश्चयपूर्वक बोध करा रहे हैं, अत: ये निश्चयवाचक सर्वनाम है।

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम–जिस सर्वनाम शब्द के द्वारा किसी निश्चित व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध न हो वे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। इनमें 'कोई' और 'कुछ' सर्वनाम शब्दों से किसी विशेष व्यक्ति अथवा वस्तु का निश्चय नहीं हो रहा है। अत: ऐसे शब्द अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

4. संबंधवाचक सर्वनाम–परस्पर एक-दूसरी बात का संबंध बतलाने के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं। इनमें 'जो', 'वह', 'जिसकी', 'उसकी', 'जैसा', 'वैसा'-ये दो-दो शब्द परस्पर संबंध का बोध करा रहे हैं। ऐसे शब्द संबंधवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

5. प्रश्नवाचक सर्वनाम–जो सर्वनाम संज्ञा शब्दों के स्थान पर तो आते ही हैं, किन्तु वाक्य को प्रश्नवाचक भी बनाते हैं वे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-क्या, कौन आदि। इनमें 'क्या' और 'कौन' शब्द प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं, क्योंकि इन सर्वनामों के द्वारा वाक्य प्रश्नवाचक बन जाते हैं।

6. निजवाचक सर्वनाम–जहाँ अपने लिए 'आप' शब्द 'अपना' शब्द अथवा 'अपने' 'आप' शब्द का प्रयोग हो वहाँ निजवाचक सर्वनाम होता है। इनमें 'अपना' और 'आप' शब्द उत्तम, पुरुष मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के (स्वयं का) अपने आप का बोध करा रहे हैं। ऐसे शब्द निजवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

विशेष-जहाँ केवल 'आप' शब्द का प्रयोग श्रोता के लिए हो वहाँ यह आदर-सूचक मध्यम पुरुष होता है और जहाँ 'आप' शब्द का प्रयोग अपने लिए हो वहाँ निजवाचक होता है।

सर्वनाम शब्दों के विशेष प्रयोग

(1) आप, वे, ये, हम, तुम शब्द बहुवचन के रूप में हैं, किन्तु आदर प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग एक व्यक्ति के लिए भी होता है।

(2) 'आप' शब्द स्वयं के अर्थ में भी प्रयुक्त हो जाता है। जैसे-मैं यह कार्य आप ही कर लूँगा।

विशेषण

विशेषण की परिभाषा- संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों की विशेषता (गुण, दोष, संख्या, परिमाण आदि) बताने वाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं। जैसे-बड़ा, काला, लंबा, दयालु, भारी, सुन्दर, कायर, टेढ़ा-मेढ़ा, एक, दो आदि।

विशेष्य- जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्द की विशेषता बताई जाए वह विशेष्य कहलाता है। यथा- गीता सुन्दर है। इसमें 'सुन्दर' विशेषण है और 'गीता' विशेष्य है। विशेषण शब्द विशेष्य से पूर्व भी आते हैं और उसके बाद भी।

पूर्व में, जैसे- (1) थोड़ा-सा जल लाओ। (2) एक मीटर कपड़ा ले आना।

बाद में, जैसे- (1) यह रास्ता लंबा है। (2) खीरा कड़वा है।

विशेषण के भेद- विशेषण के चार भेद हैं-

1. गुणवाचक।
2. परिमाणवाचक।
3. संख्यावाचक।
4. संकेतवाचक अथवा सार्वनामिक।

1. गुणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के गुण-दोष का बोध हो वे गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-

(1) भाव–अच्छा, बुरा, कायर, वीर, डरपोक आदि।

(2) रंग–लाल, हरा, पीला, सफेद, काला, चमकीला, फीका आदि।

(3) दशा–पतला, मोटा, सूखा, गाढ़ा, पिघला, भारी, गीला, गरीब, अमीर, रोगी, स्वस्थ, पालतू आदि।

(4) आकार–गोल, सुडौल, नुकीला, समान, पोला आदि।

(5) समय–अगला, पिछला, दोपहर, संध्या, सवेरा आदि।

(6) स्थान–भीतरी, बाहरी, पंजाबी, जापानी, पुराना, ताजा, आगामी आदि।

(7) गुण–भला, बुरा, सुन्दर, मीठा, खट्टा, दानी, सच, झूठ, सीधा आदि।

(8) दिशा–उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी आदि।

2. परिमाणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की मात्रा अथवा नाप-तोल का ज्ञान हो वे परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं।

परिमाणवाचक विशेषण के दो उपभेद है-

(1) निश्चित परिमाणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की निश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे-

(क) मेरे सूट में साढ़े तीन मीटर कपड़ा लगेगा।

(ख) दस किलो चीनी ले आओ।

(ग) दो लिटर दूध गरम करो।

(2) अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की अनिश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे-

(क) थोड़ी-सी नमकीन वस्तु ले आओ।

(ख) कुछ आम दे दो।

(ग) थोड़ा-सा दूध गरम कर दो।

3. संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की संख्या का बोध हो वे संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-एक, दो, द्वितीय, दुगुना, चौगुना, पाँचों आदि।

संख्यावाचक विशेषण के दो उपभेद हैं-

(1) निश्चित संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध हो। जैसे-दो पुस्तकें मेरे लिए ले आना।

निश्चित संख्यावाचक के निम्नलिखित चार भेद हैं-

(क) गणवाचक–जिन शब्दों के द्वारा गिनती का बोध हो। जैसे-

(1) एक लड़का स्कूल जा रहा है।
(2) पच्चीस रुपये दीजिए।
(3) कल मेरे यहाँ दो मित्र आएँगे।
(4) चार आम लाओ।

(ख) क्रमवाचक–जिन शब्दों के द्वारा संख्या के क्रम का बोध हो। जैसे-

(1) पहला लड़का यहाँ आए।
(2) दूसरा लड़का वहाँ बैठे।
(3) राम कक्षा में प्रथम रहा।
(4) श्याम द्वितीय श्रेणी में पास हुआ है।

(ग) आवृत्तिवाचक–जिन शब्दों के द्वारा केवल आवृत्ति का बोध हो। जैसे-

(1) मोहन तुमसे चौगुना काम करता है।
(2) गोपाल तुमसे दुगुना मोटा है।

(घ) समुदायवाचक–जिन शब्दों के द्वारा केवल सामूहिक संख्या का बोध हो। जैसे-

(1) तुम तीनों को जाना पड़ेगा।
(2) यहाँ से चारों चले जाओ।

(2) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण–जिन विशेषण शब्दों से निश्चित संख्या का बोध न हो। जैसे-कुछ बच्चे पार्क में खेल रहे हैं।

(4) संकेतवाचक (निर्देशक) विशेषण–जो सर्वनाम संकेत द्वारा संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं वे संकेतवाचक विशेषण कहलाते हैं।

विशेष–क्योंकि संकेतवाचक विशेषण सर्वनाम शब्दों से बनते हैं, अत: ये सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। इन्हें निर्देशक भी कहते हैं।

(1) परिमाणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण में अंतर–जिन वस्तुओं की नाप–तोल की जा सके उनके वाचक शब्द परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे–'कुछ दूध लाओ'। इसमें 'कुछ' शब्द तोल के लिए आया है। इसलिए यह परिमाणवाचक विशेषण है। 2.जिन वस्तुओं की गिनती की जा सके उनके वाचक शब्द संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे–कुछ बच्चे इधर आओ। यहाँ पर 'कुछ' बच्चों की गिनती के लिए आया है। इसलिए यह संख्यावाचक विशेषण है। परिमाणवाचक विशेषणों के बाद द्रव्य अथवा पदार्थवाचक संज्ञाएँ आएँगी जबकि संख्यावाचक विशेषणों के बाद जातिवाचक संज्ञाएँ आती हैं।

(2) सर्वनाम और सार्वनामिक विशेषण में अंतर–जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा शब्द के स्थान पर हो उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे–वह मुंबई गया। इस वाक्य में वह सर्वनाम है। जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा से पूर्व अथवा बाद में विशेषण के रूप में किया गया हो उसे सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। जैसे–वह रथ आ रहा है। इसमें वह शब्द रथ का विशेषण है। अत: यह सार्वनामिक विशेषण है।

विशेषण की अवस्थाएँ–विशेषण शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं। विशेषता बताई जाने वाली वस्तुओं के गुण–दोष कम–ज्यादा होते हैं। गुण–दोषों के इस कम–ज्यादा होने को तुलनात्मक ढंग से ही जाना जा सकता है। तुलना की दृष्टि से विशेषणों की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं–

(1) मूलावस्था
(2) उत्तरावस्था
(3) उत्तमावस्था

(1) मूलावस्था–मूलावस्था में विशेषण का तुलनात्मक रूप नहीं होता है। वह केवल सामान्य विशेषता ही प्रकट करता है। जैसे– 1.सावित्री सुंदर लड़की है। 2.सुरेश अच्छा लड़का है। 3.सूर्य तेजस्वी है।

(2) उत्तरावस्था–जब दो व्यक्तियों या वस्तुओं के गुण–दोषों की तुलना की जाती है तब विशेषण उत्तरावस्था में प्रयुक्त होता है। जैसे– 1.रवीन्द्र चेतन से अधिक बुद्धिमान है। 2.सविता रमा की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

(3) उत्तमावस्था–उत्तमावस्था में दो से अधिक व्यक्तियों एवं वस्तुओं की तुलना करके किसी एक को सबसे अधिक अथवा सबसे कम बताया गया है। जैसे- 1.पंजाब में अधिकतम अन्न होता है। 2.संदीप नि-ष्टतम बालक है।

विशेष-केवल गुणवाचक एवं अनिश्चित संख्यावाचक तथा निश्चित परिमाणवाचक विशेषणों की ही ये तुलनात्मक अवस्थाएँ होती हैं, अन्य विशेषणों की नहीं।

क्रिया

जिस शब्द अथवा शब्द-समूह के द्वारा किसी कार्य के होने अथवा करने का बोध हो उसे क्रिया कहते हैं। जैसे-

(1) गीता नाच रही है।
(2) बच्चा दूध पी रहा है।
(3) राकेश कॉलेज जा रहा है।
(4) गौरव बुद्धिमान है।
(5) शिवाजी बहुत वीर थे।

इनमें 'नाच रही है', 'पी रहा है', 'जा रहा है' शब्द कार्य-व्यापार का बोध करा रहे हैं। जबकि 'है', 'थे' शब्द होने का। इन सभी से किसी कार्य के करने अथवा होने का बोध हो रहा है। अत: ये क्रियाएँ हैं।

धातु–क्रिया का मूल रूप धातु कहलाता है। जैसे-लिख, पढ़, जा, खा, गा, रो, पा आदि। इन्हीं धातुओं से लिखता, पढ़ता, आदि क्रियाएँ बनती हैं।

क्रिया के भेद- क्रिया के दो भेद हैं-

(1) अकर्मक क्रिया।
(2) सकर्मक क्रिया।

1. अकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल सीधा कर्ता पर ही पड़े वे अकर्मक क्रिया कहलाती हैं। ऐसी अकर्मक क्रियाओं को कर्म की आवश्यकता नहीं होती। अकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं-

(1) गौरव रोता है।
(2) साँप रेंगता है।
(3) रेलगाड़ी चलती है।

कुछ अकर्मक क्रियाएँ–लजाना, होना, बढ़ना, सोना, खेलना, अकड़ना, डरना, बैठना, हँसना, उगना, जीना, दौड़ना, रोना, ठहरना, चमकना, डोलना, मरना, घटना, फाँदना, जागना, बरसना, उछलना, कूदना आदि।

2.सकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल (कर्ता को छोड़कर) कर्म पर पड़ता है वे सकर्मक क्रिया कहलाती हैं। इन क्रियाओं में कर्म का होना आवश्यक हैं, सकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं–

(1) मैं लेख लिखता हूँ।
(2) रमेश मिठाई खाता है।
(3) सविता फल लाती है।
(4) भँवरा फूलों का रस पीता है।

3. द्विकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं के दो कर्म होते हैं, वे द्विकर्मक क्रियाएँ कहलाती हैं। द्विकर्मक क्रियाओं के उदाहरण हैं–

(1) मैंने श्याम को पुस्तक दी।
(2) सीता ने राधा को रुपये दिए।

ऊपर के वाक्यों में 'देना' क्रिया के दो कर्म हैं। अत: देना द्विकर्मक क्रिया हैं।

प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के भेद-

प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के निम्नलिखित पाँच भेद हैं-

1. सामान्य क्रिया–जहाँ केवल एक क्रिया का प्रयोग होता है वह सामान्य क्रिया कहलाती है। जैसे-

1. आप आए।
2. वह नहाया आदि।

2. संयुक्त क्रिया–जहाँ दो अथवा अधिक क्रियाओं का साथ-साथ प्रयोग हो वे संयुक्त क्रिया कहलाती हैं। जैसे-

1. सविता महाभारत पढ़ने लगी।
2. वह खा चुका।

3. नामधातु क्रिया–संज्ञा, सर्वनाम अथवा विशेषण शब्दों से बने क्रियापद नामधातु क्रिया कहलाते हैं। जैसे-हथियाना, शरमाना, अपनाना, लजाना, चिकनाना, झुठलाना आदि।

4. प्रेरणार्थक क्रिया–जिस क्रिया से पता चले कि कर्ता स्वयं कार्य को न करके किसी अन्य को उस कार्य को करने की प्रेरणा देता है वह प्रेरणार्थक क्रिया कहलाती है। ऐसी क्रियाओं के दो कर्ता होते हैं- (1) प्रेरक कर्ता- प्रेरणा प्रदान करने वाला। (2) प्रेरित कर्ता-प्रेरणा लेने वाला। जैसे-श्यामा राधा से पत्र

लिखवाती है। इसमें वास्तव में पत्र तो राधा लिखती है, किन्तु उसको लिखने की प्रेरणा देती है श्यामा। अत: 'लिखवाना' क्रिया प्रेरणार्थक क्रिया है। इस वाक्य में श्यामा प्रेरक कर्ता है और राधा प्रेरित कर्ता।

5. पूर्वकालिक क्रिया–किसी क्रिया से पूर्व यदि कोई दूसरी क्रिया प्रयुक्त हो तो वह पूर्वकालिक क्रिया कहलाती है। जैसे- मैं अभी सोकर उठा हूँ। इसमें 'उठा हूँ' क्रिया से पूर्व 'सोकर' क्रिया का प्रयोग हुआ है। अत: 'सोकर' पूर्वकालिक क्रिया है।

विशेष–पूर्वकालिक क्रिया या तो क्रिया के सामान्य रूप में प्रयुक्त होती है अथवा धातु के अंत में 'कर' अथवा 'करके' लगा देने से पूर्वकालिक क्रिया बन जाती है। जैसे-

(1) बच्चा दूध पीते ही सो गया।

(2) लड़कियाँ पुस्तकें पढ़कर जाएँगी।

अपूर्ण क्रिया–कई बार वाक्य में क्रिया के होते हुए भी उसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। ऐसी क्रियाएँ अपूर्ण क्रिया कहलाती हैं। जैसे-गाँधीजी थे। तुम हो। ये क्रियाएँ अपूर्ण क्रियाएँ है। अब इन्हीं वाक्यों को फिर से पढ़िए-

गांधीजी राष्ट्रपिता थे। तुम बुद्धिमान हो।

इन वाक्यों में क्रमश: 'राष्ट्रपिता' और 'बुद्धिमान' शब्दों के प्रयोग से स्पष्टता आ गई। ये सभी शब्द 'पूरक' हैं।

अपूर्ण क्रिया के अर्थ को पूरा करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उन्हें पूरक कहते हैं।

पर्यायवाची शब्द

ऐसे शब्द जिनके अर्थ समान हों, पर्यायवाची शब्द कहलाते हैं।

जिन शब्दों के अर्थ में समानता होती है, उन्हें 'समानार्थक' या 'पर्यायवाची शब्द' कहते है या किसी शब्द-विशेष के लिए प्रयुक्त समानार्थक शब्दों को पर्यायवाची शब्द कहते हैं। यद्यपि पर्यायवाची शब्दों के अर्थ में समानता होती है, लेकिन प्रत्येक शब्द की अपनी विशेषता होती है और भाव में एक-दूसरे से किंचित भिन्न होते हैं। पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते हुए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। पर्यायवाची का अर्थ है - समान अर्थ देने शब्द हिन्दी भाषा में एक शब्द के समान अर्थ वाले कई शब्द मिल जाते हैं।

पानी के पर्यायवाची शब्द हैं– जल, नीर, अंबु, तोय आदि।

सूर्य के पर्यायवाची शब्द - दिनकर, दिवाकर, भानु, भास्कर, आक, आदित्य, दिनेश, मित्र, मार्तण्ड, मन्दार, पतंग, विहंगम, रवि, प्रभाकर, अरुण, अंशुमाली और सूरज।

विलोम शब्द/विपरीतार्थक शब्द

शब्दों के अपने निश्चित अर्थ होते हैं–उन अर्थों के विपरीत अर्थ देनेवाले शब्द विपरीतार्थक शब्द कहलाते हैं। विपरीतार्थक या विपरीत अर्थ देनेवाले शब्द निम्नलिखित विधियों से बनते हैं–

1. लिंग-परिवर्तन के द्वारा–जैसे-भाई-बहन, राजा-रानी, वर-वधू, लड़का-लडकी गाय-बैल, कुत्ता-कुतिया, इत्यादि।
2. भिन्न जातीय शब्द के द्वारा–जैसे- अधम-उत्तम, अधिकतम-न्यूनतम, अनुराग-विराग, आजाद-गुलाम, आगे-पीछे, कड़वा-मीठा, इत्यादि।
3. उपसर्ग की सहायता से–जैसे-ईश्वर-अनीश्वर, आस्था-अनास्था, अस्वस्थ-स्वस्थ, मान-अपमान, अल्पायु-दीर्घायु, अंतर्मुखी-बहिर्मुखी, इत्यादि।
4. उपसर्ग के समान प्रयुक्त होनेवाले शब्दों के परिवर्तन से–जैसे-गणतंत्र-राजतंत्र, अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक, उत्तरायण-दक्षिणायण, एकतंत्र-बहुतंत्र, उदयाचल-अस्ताचल, विशालकाय-लघुकाय, इत्यादि।
5. नज समास के पद बनाकर–जैसे-नश्वर-अनश्वर, आदि-अनादि, संभव-असंभव, आस्तिक-नास्तिक, अनाथ-सनाथ, सार्थक-निरर्थक, इत्यादि।

1	अँधेरा	उजाला
2	अतिवृष्टि	अनावृष्टि
3	अत्यधिक	अत्यल्प
4	अंतरंग	बाहिरी
5	अंधकार	प्रकाश
6	अधिकतम	न्यूनतम
7	अंदर	बाहर

4

हिन्दी : प्राचीन इतिहास

हिंदी साहित्य का इतिहास के विभिन्न कालों के नामांकरण का प्रथम श्रेय जॉर्ज ग्रियर्सन के जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभिक काल के नामांकन का प्रश्न विवादास्पद है। इस काल को ग्रियर्सन ने 'चारण काल' मिश्र बंधु ने 'प्रारंभिक काल' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बीज वपन काल' शुक्ल ने आदिकाल- 'वीरगाथा काल' राहुल सां-त्यायन ने- 'सिद्ध सामंत काल' रामकुमार वर्मा ने 'संधिकाल व चारण काल' हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल' की संज्ञा दी है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगभग 7वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी के मध्य तक के काल को आदिकाल कहा जाता है। यह नाम (आदिकाल) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिला है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को 'वीरगाथा काल' तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'वीरकाल' नाम दिया है। आदिकाल के आधार पर साहित्य का इतिहास लिखने वाले मिश्र बंधुओं ने इसका नाम प्रारंभिक काल किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बीजवपन काल' डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर इसको 'चारण-काल' कहा है और राहुल सं-त्यायन ने 'सिद्ध-सामन्त काल।'

आदिकाल में तीन प्रमुख प्रवृतियां मिलती हैं- धार्मिकता, वीरगाथात्मकता व श्रृंगारिकता।

आदिकाल का नामकरण

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल का नामकरण विद्वानों ने इस प्रकार किया है-

सं	विद्वान	नामकरण
1.	डॉ. ग्रियर्सन	चारणकाल,
2.	मिश्रबंधु	आरम्भिक काल
3.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल-	वीरगाथा काल,
4.	राहुल सं-त्यायन	सिद्ध सामंत युग,
5.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	बीजवपन काल,
6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वीरकाल,
7.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	आदिकाल,
8.	रामकुमार वर्मा	चारण काल या संधि काल।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल का नाम वीरगाथा काल रखा है। इस नामकरण का आधार स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं- ...आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच प्रथम डेढ़-सौ वर्ष के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता-धर्म, नीति, श्रृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती है। इस अनिर्दिष्ट लोक प्रवृत्ति के उपरांत जब से मुसलमानों की चढाइयों का आरंभ होता है तब से हम हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति एक विशेष रूप में बंधती हुई पाते हैं। राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन करते थे। यही प्रबंध परंपरा रासो के नाम से पायी जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने वीरगाथा काल कहा है। इसके संदर्भ में वे तीन कारण बताते हैं-

1. इस काल की प्रधान प्रवृत्ति वीरता की थी अर्थात् इस काल में वीरगाथात्मक ग्रंथों की प्रधानता रही है।
2. अन्य जो ग्रंथ प्राप्त होते हैं वे जैन धर्म से संबंध रखते हैं, इसलिए नाम मात्र हैं और
3. इस काल के फुटकर दोहे प्राप्त होते हैं, जो साहित्यिक हैं तथा विभिन्न विषयों से संबंधित हैं, किन्तु उसके आधार पर भी इस काल की कोई

विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं होती है। शुक्ल जी वे इस काल की बारह रचनाओं का उल्लेख किया है-

(1) विजयपाल रासो (नल्लसिंह -त-सं.1355),
(2) हम्मीर रासो (शांगधर -त-सं.1357),
(3) कीर्तिलता (विद्यापति-सं.1460),
(4) कीर्तिपताका (विद्यापति-सं.1460),
(5) खुमाण रासो (दलपतिविजय-सं.1180),
(6) बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह-सं.1212),
(7) पृथ्वीराज रासो (चंद बरदाई-सं.1225-1249),
(8) जयचंद्र प्रकाश (भट्ट केदार-सं. 1225),
(9) जयमयंक जस चंद्रिका (मधुकर कवि-सं.1240),
(10) परमाल रासो (जगनिक कवि-सं.1230),
(11) खुसरो की पहेलियाँ (अमीर खुसरो-सं.1350),
(12) विद्यापति की पदावली (विद्यापति-सं.1460)

शुक्ल जी द्वारा किये गये वीरगाथाकाल नामकरण के संबंध में कई विद्वानों ने अपना विरोध व्यक्त किया है। इनमें श्री मोतीलाल मैनारिया, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि मुख्य हैं। आचार्य द्विवेदी का कहना है कि, वीरगाथा काल की महत्वपूर्ण रचना पृथ्वीराज रासो की रचना उस काल में नहीं हुई थी और यह एक अर्ध-प्रामाणिक रचना है। यही नहीं शुक्ल ने जिन गंथों के आधार पर इस काल का नामकरण किया है, उनमें से कई रचनाओं का वीरता से कोई संबंध नहीं है। बीसलदेव रासो गीति रचना है। जयचंद्र प्रकाश तथा जयमयंक जस चंद्रिका -इन दोनों का वीरता से कोई संबंध नहीं है। ये ग्रंथ केवल सूचना मात्र हैं। अमीर खुसरो की पहेलियों का भी वीरत्व से कोई संबंध नहीं है। विजयपाल रासो का समय मिश्रबंधुओं ने सं.1355 माना है अत: इसका भी वीरता से कोई संबंध नहीं है। परमाल रासो पृथ्वीराज रासो की तरह अर्ध प्रामाणिक रचना है तथा इस ग्रंथ का मूल रूप प्राप्य नहीं है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका- इन दोनों ग्रंथों की रचना विद्यापति ने अपने आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह की कीर्ति के गुणगान के लिए लिखे थे। उनका वीररस से कोई संबंध नहीं है। विद्यापति की पदावली का विषय राधा तथा अन्य गोपियों से कृष्ण की प्रेम-लीला है। इस प्रकार शुक्ल जी ने जिन आधार पर इस काल का नामकरण वीरगाथा काल किया है, वह योग्य नहीं है।

डॉ. ग्रियर्सन का मत

डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल को चारणकाल नाम दिया है। पर इस नाम के पक्ष में वे कोई ठोस तर्क नहीं दे पाये हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 643 ई. से मानी है, किन्तु उस समय की किसी चारण रचना या प्रवृत्ति का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएँ 1000 ई.सन् तक मिलती ही नहीं हैं। इस लिए डॉ.ग्रियर्सन द्वारा दिया गया नाम योग्य नहीं है।

मिश्रबंधुओं का मत

मिश्रबंधुओं ने ई.सन् 643 से 1387 तक के काल को प्रारंभिक काल कहा है। यह एक सामान्य नाम है और इसमें किसी प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। यह नाम भी विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का मत

डॉ.रामकुमार वर्मा- इन्होंने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को चारणकाल नाम दिया है। इस नामकरण के बारे में उनका कहना है कि, इस काल के सभी कवि चारण थे, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। क्योंकि सभी कवि राजाओं के दरबार-आश्रय में रहनेवाले, उनके यशोगान करनेवाले थे। उनके द्वारा रचा गया साहित्य चारणी कहलाता है। किन्तु विद्वानों का मानना है कि, जिन रचनाओं का उल्लेख वर्मा जी ने किया है उनमें अनेक रचनाएँ संदिग्ध हैं। कुछ तो आधुनिक काल की भी हैं। इस कारण डॉ.वर्मा द्वारा दिया गया चारणकाल नाम विद्वानों को मान्य नहीं है।

राहुल सं-त्यायन का मत

राहुल सं-त्यायन- उन्होंने 8वीं से 13 वीं शताब्दी तक के काल को सिद्ध-सांमत युग की रचनाएँ माना है। उनके मतानुसार उस समय के काव्य में दो प्रवृत्तियों की प्रमुखता मिलती है- 1.सिद्धों की वाणी- इसके अंतर्गत बौद्ध तथा नाथ-सिद्धों की तथा जैनमुनियों की उपदेशमूलक तथा हठयोग की क्रिया का विस्तार से प्रचार करनेवाली रहस्यमूलक रचनाएँ आती हैं। 2.सामंतों की स्तुति- इसके अंतर्गत चारण कवियों के चरित काव्य (रासो ग्रंथ) आते हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रय दाता राजा एवं सामंतों की स्तुति के लिए युद्ध, विवाह आदि के

प्रसंगों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। इन ग्रंथों में वीरत्व का नवीन स्वर मुखरित हुआ है। राहुल जी का यह मत भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है। क्योंकि इस नामकरण से लौकिक रस का उल्लेख करनेवाली किसी विशेष रचना का प्रमाण नहीं मिलता। नाथपंथी तथा हठयोगी कवियों तथा खुसरो आदि की काव्य-प्रवृत्तियों का इस नाम में समावेश नहीं होता है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी- उन्होंने हिंदी साहित्य के प्रथम काल का नाम बीज-बपन काल रखा। उनका यह नाम योग्य नहीं है क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल आदिकाल नहीं है। यह काल तो पूर्ववर्ती परिनिष्ठित अपभ्रंश की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- इन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक काल को आदिकाल नाम दिया है। विद्वान भी इस नाम को अधिक उपयुक्त मानते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है- वस्तुत: हिंदी का आदि काल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि, यह काल कोई आदिम, मनोभावापन्न, परंपराविनिर्मुक्त, काव्य-रूढियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परंपरा-प्रेमी, रूढिग्रस्त, सजग और सचेत कवियों का काल है। आदिकाल नाम ही अधिक योग्य है क्योंकि साहित्य की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश काल का विकास ही है, पर भाषा की दृष्टि से यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा की सूचना देता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के आदिकाल के लक्षण-निरूपण के लिए निम्नलिखित पुस्तकें आधारभूत बतायी हैं-

1. पृथ्वीराज रासो, 2. परमाल रासो, 3. विद्यापति की पदावली, 4. कीर्तिलता, 5. कीर्तिपताका, 6. संदेशरासक (अब्दुल रेहमान), 7. पउमचरिउ (स्वयंभू कृत रामायण), 8. भविषयत्कहा (धनपाल), 9. परमात्म-प्रकाश (जोइन्दु), 10. बौद्ध गान और दोहा (संपादक पं.हरप्रसाद शास्त्री), 11. स्वयंभू छंद और 12. प्राकृत पैंगलम्।

नाम निर्णय

इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण के रूप में आदिकाल नाम ही योग्य व सार्थक है, क्योंकि इस नाम से उस व्यापक पुष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर परवर्ती साहित्य खड़ा है। भाषा की दृष्टि से इस काल के साहित्य में हिंदी के प्रारंभिक रूप का पता चलता है तो भाव की दृष्टि से भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज इसमें खोजे जा सकते हैं। इस काल की रचना-शैलियों के मुख्य रूप इसके बाद के कालों में मिलते हैं। आदिकाल की आध्यात्मिक, श्रृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है। इस कारण आदिकाल नाम ही अधिक उपयुक्त तथा व्यापक नाम है।

आदि काल भाषा की शैली

आदि काल में दो शैलियां मिलती हैं डिंगल व पिंगल। डिंगल शैली में कर्कश शब्दावलिओं का प्रयोग होता है। जबकि पिंगल शैली में कर्ण प्रिय शब्दावलि ओं का। कर्कश शब्दावलियों के कारण डिंगल शैली अलोकप्रिय होती चली गई जबकि कर्ण प्रिय शब्दावलिओं के कारण पिंगल शैली लोकप्रिय होती चली गई और आगे चलकर इसका ब्रजभाषा में विगलन हो गया। आदिकालीन साहित्य के 3 सर्व प्रमुख रूप है-सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और रासो साहित्य।

साहित्य

इस समय का साहित्य मुख्यत: चार रूपों में मिलता है–1. सिद्ध-साहित्य तथा नाथ-साहित्य, 2. जैन साहित्य, 3. चारणी-साहित्य, 4. प्रकीर्णक साहित्य।

सिद्ध-साहित्य

सिद्धों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म की वज्रयानी शाखा से है। ये भारत के पूर्वी भाग में सक्रिय थे। इनकी संख्या 84 मानी जाती है जिनमें सरहप्पा, शबरप्पा, लुइप्पा, डोम्भिप्पा, कुक्कुरिप्पा ((कणहपा))आदि मुख्य हैं। सरहप्पा प्रथम सिद्ध कवि थे।

राहुल सां-त्यायन ने इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि माना तथा सर्वसम्मति से इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि स्वीकार किया गया, इन्होंने जातिवाद और वाह्याचारों पर प्रहार किया। देहवाद का महिमा मण्डन किया और सहज साधना पर बल

दिया। ये महासुखवाद द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति पर बल देते हैं। इन सब में लुइपा का स्थान सबसे उच्च है।

बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य देश भाषा (जनभाषा) में लिखा गया वही सिद्ध साहित्य कहलाता है। यह साहित्य बिहार से लेकर असम तक फैला था। राहुल सं-त्यायन ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है जिनमें सिद्ध 'सरहपा' से यह साहित्य आरम्भ होता है। बिहार के नालन्दा विद्यापीठ इनके मुख्य अड्डे माने जाते हैं। बख्तियार खिलजी ने आक्रमण कर इन्हें भारी नुकसान पहुचाया बाद में यह 'भोट' देश चले गए। इनकी रचनाओं का एक संग्रह महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बांग्ला भाषा में 'बौद्धगान-ओ-दोहा' के नाम से निकाला।

सिद्धों की भाषा में 'उलटबासी' शैली का पूर्व रुप देखने को मिलता है। इनकी भाषा को संध्या भाषा कहा गया है, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, 'जो जनता तात्कालिक नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय त्रस्त होकर निराशा के गर्त में गिरी हुई थी, उनके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। साधना अवस्था से निकली सिद्धों की वाणी 'चरिया गीत/चर्यागीत' कहलाती है।

सिद्ध साहित्य को मुख्यत: निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है–

1. नीति या आचार संबंधित साहित्य
2. उपदेश परक साहित्य
3. साधना सम्बन्धी या रहस्यवादी साहित्य

सिद्धों की साधना धर्म का विकृत रूप थी, उन्होंने वामाचार फैलाया वह अपनी साधना के लिये स्त्री का प्रयोग आवश्यक मानते थे– उस समय बिहार व बंगाल में सास व ननद द्वारा नई दुल्हन को सिद्धों के आकर्षण से सावधान रहने की शिक्षा दी जाती थी इनके साहित्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सांप्रदायिक शिक्षा मात्र कहा जिनका बाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने खंडन किया।

नाथ-साहित्य

सिद्धों के महासुखवाद के विरोध में नाथ पंथ का उदय हुआ। नाथों की संख्या नौ है। इनका क्षेत्र भारत का पश्चिमोत्तर भाग है। इन्होंने सिद्धों द्वारा अपनाये गये पंचमकारों का नकार किया। नारी भोग का विरोध किया। इन्होंने बाह्याडंबरों तथा वर्णाश्रम का विरोध किया और योगमार्ग तथा -च्छ साधना का अनुसरण

किया। ये ईश्वर को घट-घट वासी मानते हैं। ये गुरु को ईश्वर मानते हैं। नाथ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गोरखनाथ हैं। इनकी रचना गोरखबाणी नाम से प्रकाशित है।

नाथ सम्प्रदाय का उल्लेख विभिन्न क्षेत्र के ग्रंथों में जैसे- योग (हठयोग), तंत्र (अवधूत मत या सिद्ध मत), आयुर्वेद (रसायन चिकित्सा), बौद्ध अध्ययन (सहजयान तिब्बती परम्परा 84 सिद्धों में), हिन्दी (आदिकाल के कवियों के रूप) में चर्चा मिलती हैं।

यौगिक ग्रंथों में नाथ सिद्ध–हठप्रदीपिका के लेखक स्वात्माराम और इस ग्रंथ के प्रथम टीकाकार ब्रह्मानंद ने हठ प्रदीपिका ज्योत्स्ना के प्रथम उपदेश में 5 से 9 वे श्लोक में 33 सिद्ध नाथ योगियों की चर्चा की है। ये नाथसिद्ध कालजयी होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते है। इन नाथ योगियों में प्रथम नाथ आदिनाथ को माना गया है, जो स्वयं शिव हैं जिन्होंने हठयोग की विद्या प्रदान की जो राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी के समान है।

आयुर्वेद ग्रंथों में नाथ सिद्धों की चर्चा–रसायन चिकित्सा के उत्पत्तिकर्ता के रूप मे प्राप्त होता है जिन्होंने इस शरीर रूपी साधन को जो मोक्ष में माध्यम है इस शरीर को रसायन चिकित्सा पारद और अभ्रक आदि रसायानों की उपयोगिता सिद्ध किया। पारदादि धातु घटित चिकित्सा का विशेष प्रवर्तन किया था तथा विभिन्न रसायन ग्रंथों की रचना की उपरोक्त कथन सुप्रसिद्ध विद्वान और चिकित्सक महामहोपाध्याय गणनाथ सेन ने लिखा है।

तंत्र गंथों में नाथ सम्प्रदाय– नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ शिव है, मूलतः समग्र नाथ सम्प्रदाय शैव है। शाबर तंत्र में कपालिको के 12 आचार्यों की चर्चा है- आदिनाथ, अनादि, काल, वीरनाथ, महाकाल आदि जो नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य माने जाते हैं। नाथों ने ही तंत्र ग्रंथों की रचना की है। षोड्श नित्यातंत्र में शिव ने कहा है कि, - नव नाथों- जड़भरत मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, , सत्यनाथ, चर्पटनाथ, जालंधरनाथ नागार्जुन आदि ने ही तंत्रों का प्रचार किया है।

बौद्ध अध्ययन में नाथ सिद्ध - 84 सिद्धों में आते है। राहुल सां-त्यायन ने गंगा के पुरातत्त्वांक में बौद्ध तिब्बती परम्परा के 84 सहजयानी सिद्धों की चर्चा की है जिसमें से अधिकांश सिद्ध नाथसिद्ध योगी हैं जिनमें लुइपाद मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षपा गोरक्षनाथ, चौरंगीपा चौरंगीनाथ, शबरपा शबर आदि की चर्चा है जिन्हें सहजयानीसिद्धों के नाम से जाना जाता है।

हिन्दी में नाथसिद्ध–हिन्दी साहित्य में आदिकाल के कवियों में नाथ सिद्धों की चर्चा मिलती है। अपभ्रंश, अवहट्ट भाषाओं की रचनाऐं मिलती है, जो हिन्दी कि प्रारंभिक काल की है। इनकी रचनाओं में पाखंड़ों आडंबरो आदि का विरोध है तथा चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश मिलता है, जो साहित्य के जागृति काल की महत्वपूर्ण रचनाऐं मानी जाती है। जो जनमानस को योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था।

चारणी-साहित्य

इसके अंतर्गत चारण के उपरांत ब्रह्मभट्ट और अन्य बंदीजन कवि भी आते हैं। सौराष्ट्र, गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में चारणों का, तथा ब्रज-प्रदेश, दिल्ली तथा पूर्वी राजस्थान में भट्टों का प्राधान्य रहा था। चारणों की भाषा साधारणतः राजस्थानी रही है और भट्टों की ब्रज। इन भाषाओं को डिंगल और पिंगल नाम भी मिले हैं। ये कवि प्रायः राजाओं के दरबारों में रहकर उनकी प्रशस्ति किया करते थे। अपने आश्रयदाता राजाओं की अतिरंजित प्रशंसा करते थे। शृंगार और वीर उनके मुख्य रस थे। इस समय की प्रख्यात रचनाओं में चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, दलपति कृत खुमाण-रासो, नरपति-नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, जगनिक कृत आल्ह खंड आदि मुख्य हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण पृथ्वीराज रासो है। इन सब ग्रंथों के बारे में आज यह सिद्ध हुआ है कि, उनके कई अंश क्षेपक हैं।

प्रकीर्णक साहित्य

खड़ी बोली के आदि-कवि अमीर खुसरो इसी समय हुए हैं। खुसरो की पहेलियां और मुकरियां प्रख्यात हैं। मैथिल-कोकिल विद्यापति भी इसी समय के अंतर्गत हुए हैं। विद्यापति के मधुर पदों के कारण इन्हें 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है। मैथिली और अवहट्ट में भी इनकी रचनाएं मिलती हैं। इनकी पदावली का मुख्य रस शृंगार माना गया है। अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' भी इसी समय की एक सुंदर रचना है। इस छोटे से प्रेम-संदेश-काव्य की भाषा अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित होने से कुछ विद्वान इसको हिंदी की रचना न मानकर अपभ्रंश की रचना मानते हैं।

आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशंसाएं, युद्धों का सुन्दर वर्णन, शृंगार-मिश्रित वीररस का आलेखन वगैरह इस साहित्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस्लाम का

भारत में प्रवेश हो चुका था। देशी रजवाड़े परस्पर कलह में व्यस्त थे। सब एक साथ मिलकर मुसलमानों के साथ लड़ने के लिए तैयार नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि अलग-अलग सबको हराकर मुसलमान यहीं स्थिर हो गए। दिल्ली की गद्दी उन्होंने प्राप्त कर ली और क्रमशः उनके राज्य का विस्तार बढ़ने लगा। तत्कालीन कविता पर इस स्थिति का प्रभाव देखा जा सकता है।

आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्य में आदिकाल साहित्यिक परम्पराओं के निर्माण का काल है। इस काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में तो रचनाएँ हो ही रही थीं, साथ ही अपभ्रंश से धीरे-धीरे मुक्त होती हुई हिन्दी भी अपना रूप ग्रहण कर रही थी। अपभ्रंश साहित्य की परम्परा परवर्ती हिन्दी साहित्य में जीवित मिलती है। अनेक स्वतन्त्र परम्पराओं का उदय भी उन्हीं दिनों हुआ। आदिकालीन हिन्दी साहित्य की उपलब्ध सामग्री के दो रूप हैं–एक वर्ग में वे रचनाएँ हैं, जिनकी भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हैं और दूसरे वर्ग में वे रचनाएँ हैं जिन्हें अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिन्दी की रचनाएँ कहा जा सकता है। अपभ्रंश प्रभावित रचनाओं में सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य आदि प्रमुख हैं और अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हिन्दी की रचनाओं में बीसलदेव रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो, खुसरो की पहेलियाँ आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल को 'आदिकाल' कहने से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर आगे का साहित्य खड़ा है। भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का बोध प्राप्त कर सकते हैं, तो भाव की दृष्टि से इसमें भक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं। जहाँ तक रचना शैलियों का प्रश्न है, उनके भी वे सभी रूप जो परवर्ती काव्य में प्रयुक्त हुए, अपने आदि रूप में मिल जाते हैं। इस काल की आध्यात्मिक, शृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप बाद के साहित्य में मिलता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आदिकाल' को अपभ्रंश काव्य और देशभाषा काव्य में विभाजित करके देशभाषा काव्य को 'वीरगाथा काल' नाम दिया। वे वीरगाथा को आदिकाल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति मानते हैं, जो उचित नहीं है। यद्यपि शुक्ल जी ने आदिकाल की अन्य प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत किया है–"आदिकाल की इस दीर्घ परम्परा के बीच (संवत 1050 से 1375 तक) डेढ़

सौ वर्षों के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है–धर्म, नीति, शृंगार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 3) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के समय में लोकभाषा में लिखित जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे बढ़ी हुई भाषा का रूप दिखाई देता है। दसवीं शताब्दी की भाषा के गद्य में तत्सम् शब्दों का व्यवहार बढ़ने लगा था, परन्तु पद्य की भाषा में तद्भव शब्दों का ही एकछत्र राज्य था। चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य में इसी प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है। इसी समय से हिन्दी भाषा का आदिकाल माना जा सकता है।" (हिन्दी साहित्य–उद्भव और विकास, पृ. 37)

हिन्दी का आदिकाल अनेक दृष्टियों से सन्धिकाल है। भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से यह संक्रान्ति का काल है। कथ्य की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य में एक साथ कई परम्पराओं का उदय दिखाई देता है। अपभ्रंश और संस्कृत की रचनाओं में इनमें से कुछ परम्पराओं के स्रोत अवश्य हैं, किन्तु उनकी शक्ति और गम्भीरता हिन्दी की अपनी देन है।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की परम्पराओं या प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए इसे कुछ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे–सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, सन्त साहित्य, रासो साहित्य, लौकिक साहित्य गद्य रचनाएँ आदि।

सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत चौरासी सिद्धों की वे साहित्यिक रचनाएँ आती हैं, जो अपभ्रंश और तत्कालीन लोकभाषा के मिश्रित रूप में लिखी गई हैं। सिद्धों का सम्बन्ध बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा से था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में चौरासी सिद्धों के नाम दिए हैं। सिद्धों में प्रथम सिद्ध कवि सरहपा थे। उनका व्यक्तित्त्व नितान्त विद्रोही था। उन्होंने पाखण्ड और आडम्बर का विरोध किया, वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार किया। परम्पराओं और व्यवस्थाओं के खण्डन का जो रूप कबीर में दिखाई देता है, वह सरहपा में विद्यमान है।

सरहपा की हिन्दी की रचनाओं में दोहाकोश प्रसिद्ध है। सरहपा ने दोहा और पदों की शैली अपनाई। यह शैली उनके बाद के हिन्दी कवियों ने परम्परा के रूप

में अपनाई। सिद्ध साहित्य की भाषा अपभ्रंश और हिन्दी की सन्धि बेला की भाषा है। भाषा और आध्यात्मिक चेतना की दृष्टि से इस साहित्य ने हिन्दी के निर्गुण सन्तों को काफी प्रभावित किया है। सरहपा के अलावा लुहिपा, कण्हपा, मीनपा आदि अन्य सिद्ध कवि हैं।

सिद्ध साहित्य में एक और प्रवृत्ति मिलती है, जो भक्तिकाल में आकर पूर्ण विकसित हुई। वह प्रवृत्ति है–भक्ति और कविता का सम्बन्ध। सरहपा सहज जीवन पर बहुत अधिक बल देते थे। उन्हें सहजयान का प्रवर्तक कहा जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, सिद्ध कवियों ने हिन्दी साहित्य की कविता में जो प्रवृत्तियाँ आरम्भ कीं, उनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा।

जैन साहित्य

हिन्दी में साहित्य रचना आरम्भ करने का श्रेय जैन कवियों को है। जैन मतावलम्बी रचनाएँ दो प्रकार की हैं–(1) जिनमें नाथों-सिद्धों की तरह अन्तः साधना, उपदेश, नीति, सदाचार पर बल देते हैं और कर्मकाण्ड का खण्डन है। ये मुक्तक हैं और प्रायः दोहों में रचित हैं। (2) जिनमें पौराणिक, जैन साधकों की प्रेरक जीवन कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है। जैन पौराणिक काव्य और चरित-काव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं।

जैन कवियों ने अपनी अनुभूतियों एवं शिक्षाओं को लोकमानस तक पहुँचाने के लिए लोकभाषा का आश्रय ग्रहण किया। विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों के अवसर पर रास और फागु गाए जाने की परम्पराओं को ग्रहण कर जैन कवियों ने इन्हें साहित्यिक रूप प्रदान किया।

दरअसल रासक या रासो काव्य की परम्परा का प्रादुर्भाव जैन कवियों द्वारा हुआ। इन कवियों ने अनेक रासक ग्रन्थों (प्रबन्ध काव्य) का प्रणयन किया। उपदेश रसायन, बुद्धि रास, जीवदया रास, चन्दनबाला रास, रेवन्तगिरिरासु, सप्तक्षेत्रि रासु, कच्छूलि रासु आदि ऐसे ही रासो ग्रन्थ हैं। उपदेश रसायन के रचनाकार जिनदत्त सूरि हैं। इस ग्रन्थ की रचना अपभ्रंश भाषा में हुई है। जैन कवियों द्वारा लिखे गए रासो ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। इन रासो ग्रन्थों में काव्यतत्त्व का अभाव है पर काव्य प्रवृत्तियों के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जैन कवियों ने शान्त रस की पृष्ठभूमि में रसराज शृंगार के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त करुण, वीर तथा अद्‌भुत आदि रसों की योजना विभिन्न प्रसंगों में की है। व्यावहारिक जीवन में विरक्त होते हुए भी जैन कवियों ने अपने काव्यों में प्रा-तिक दृश्यों, विभिन्न ऋतुओं, पर्वों, उत्सवों आदि का चित्रण किया है।

नाथ साहित्य

राहुल सां-त्यायन ने नाथ-पन्थ को सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप माना है। डॉ. रामकुमार वर्मा का मत है कि, नाथपन्थ से ही भक्तिकालीन सन्तमत का विकास हुआ था। (नाथपन्थ के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ माने गए हैं।) गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। उन्होंने ब्रह्मचर्य, शारीरिक-मानसिक शुचिता, वाक्संयम और मद्य-माँस के त्याग का आग्रह किया। ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम व्यवस्था पर उन्होंने तीव्र प्रहार किया।

गोरखनाथ ने सन्त साहित्य के लिए एक पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। साखी, सबद जैसे अनेक काव्यरूप यहीं से प्रारम्भ होते हैं। काजी व पण्डित दोनों के बाह्याडम्बर को फटकारने का कार्य यहीं से प्रारम्भ होता है। पिण्ड (शरीर) के भीतर ब्रह्माण्ड को देखने की बात यहीं से शुरू होती है। कबीर आदि संत कवियों में आक्रामक भाषा की जो दीप्ति दिखाई देती है, उसकी लौ गोरखनाथ में मिलती है। गोरखनाथ का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है–

हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत॥

नाथपन्थ का जिक्र करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि–"इस पन्थ का प्रचार राजपूताने तथा पंजाब की ओर ही अधिक रहा। अत: जब मत के प्रचार के लिए इस पन्थ में भाषा के भी ग्रन्थ लिखे गए, तब उधर की ही प्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया। उन्हें मुसलमानों को भी अपनी बानी सुनानी रहती थी, जिनकी बोली अधिकतर दिल्ली के आसपास की खड़ीबोली थी। इससे उसका मेल भी उनकी बनियों में अधिकतर रहता था। इस प्रकार नाथपन्थ के इन जोगियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से, जिसका ढाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी भाषा' का सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ीबोली लिए राजस्थानी था। देशभाषा की इन पुस्तकों में पूजा, तीर्थाटन आदि के साथ हज, नमाज आदि का भी उल्लेख पाया

जाता है। इस प्रकार की एक पुस्तक का नाम है–'काफिरबोध'।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 13)

सन्त काव्य

आदिकाल में सन्तकाव्य के रूप में हमें चक्रधर, ज्ञानेश्वर तथा नामदेव के हिन्दी पद मिलते हैं। इन सन्त कवियों ने सिद्धों और नाथपन्थियों द्वारा विकसित पद-शैली अपनाई। सन्त कवियों में परम्परागत धार्मिक विचारों या मत विशेष के प्रचार की अपेक्षा आत्मानुभूति के प्रकाशन की प्रवृत्ति है। जैन कवियों ने जहाँ प्रबन्धात्मक शैली को अधिक महत्त्व दिया, वहाँ सन्त कवियों ने मुक्तक गीत-शैली को। सन्तों ने अपने पदों में राग-रागनियों का भी समावेश किया।

इस प्रकार आदिकाल का धर्म से सम्बन्धित काव्य तत्कालीन लोकजीवन एवं लोकसाहित्य की परम्पराओं से प्रेरित, प्रभावित एवं सम्बन्धित दिखाई पड़ता है।

रासो काव्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में रासो काव्य की परम्परा प्राप्त होती है। हिन्दी में रासो काव्यों की लम्बी शृंखला है, जिनमें पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, विजयपाल रासो तथा खुमाण रासो आदि प्रमुख हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रासो काव्यों के आधार पर इस काल को वीरगाथा काल कहा है। उन्होंने लिखा है–"राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"सातवीं-आठवीं शताब्दी से इस देश में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा खूब चली। परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरूपण का कम। ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथात्मक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है।"

द्विवेदी जी ने अन्यत्र लिखा है–"परन्तु यह सत्य है कि, इस काल की रचनाओं में वीरतत्त्व का एक नया स्वर सुनाई देता है। इस काल में वीर रस को बहुत प्रमुख स्थान प्राप्त है।"

रासो काव्य की विषय वस्तु का मूल सम्बन्ध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है, तथा इनमें वीर रस की प्रधानता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"ये वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं प्रबन्धकाव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों (बैलाड्स) के रूप में। साहित्यिक प्रबन्ध के रूप में जो प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है, वह है पृथ्वीराज रासो। वीरगीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक बीसलदेव रासो मिलती है। यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास मिलता है, जो रचना कई सौ वर्षों से लोगों में बराबर गाई जाती रही हो, उसकी भाषा अपने मूल रूप में नहीं रह सकती।"

शुक्ल जी के अनुसार चन्दबरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि हैं और इनका पृथ्वीराज रासो हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। द्विवेदी जी के अनुसार रासो में अनेक कथानक रूढ़ियों और काव्य रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। उसमें अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। पृथ्वीराज रासो रासो काव्य परम्परा का काव्य तो है ही, इसमें चरित-काव्य, कथा-काव्य, आख्यायिका आदि के भी लक्षण मिलते हैं। इस काव्य में दो रस प्रमुख हैं– श्रृंगार और वीर। इस काव्य के नायक प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट दिल्ली नरेश पृथ्वीराज हैं।

कवि ने एक ओर तो युद्धों के वर्णन के माध्यम से वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत सृष्टि की है, दूसरी ओर रूप सौन्दर्य और प्रेम के भी सरस चित्र उतारे हैं। दोनों रसों के केन्द्र में नारी है। उसे पाने के लिए युद्ध होते हैं और पा लेने पर जीवन का विलास पक्ष अपनी पूरी रमणीयता के साथ उभरता है। वीर और श्रृंगार रसों के पोषण के लिए पृथ्वीराज रासो में आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना की गई है। कवि ने नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का भी वर्णन तन्मयता से किया है। कुल मिलाकर इसमें वीर रस की प्रमुखता है।

दूसरी तरफ बीसलदेव रासो श्रृंगार प्रधान काव्य है। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग और वियोग दोनों मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। यह एक 'सन्देश काव्य' है। मेघदूत और सन्देशरासक की सन्देश परम्परा इसमें मिलती है। बीसलदेव रासो की एक विशेषता यह भी है कि, यह एक गेय काव्य है। सामन्ती जीवन के प्रति गहरी अरुचि का सजीव चित्रण इस काव्य में मिलता है। इस काव्य में मध्यकाल की एक ऐसी नारी है, जो अपने पति के अहंकार को तोड़कर उसकी प्रतिस्पर्धा में आत्मगौरव की अनुभूति करती हुई खड़ी होना चाहती है, लेकिन पुरुष का हठ और उसका अहंकार नारी को झुकने के लिए बाध्य कर देता है।

बीसलदेव रासो की रचना नरपति नाल्ह ने की है। इसमें साम्भर नरेश बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) तथा मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती के जीवन की एक कालखण्ड की कथा कही गई है। राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही दिनों बाद रानी की बात पर रूठकर बीसलदेव उड़ीसा चले गए और वहाँ एक वर्ष रहे। राजमती के विरह वर्णन के इस सुन्दर अवसर का कवि ने भरपूर उपयोग किया है। रानी राजमती ने राजा के पास सन्देश भेजा। वे उड़ीसा से लौटे। राजा भोज अपनी पुत्री को घर ले आए। बीसलदेव वहाँ जाकर राजमती को चित्तौड़ ले आए। विरहजन्य कष्ट सहने के बाद भी न तो राजमती का स्वभाव बदला, न ही उसके जुबान की तेजी कम हुई है।

बीसलदेव रासो में हिन्दी काव्य में प्रयुक्त होने वाला बारहमासा वर्णन सबसे पहले है। बीसलदेव रासो की श्रृंगारिक काव्यधारा हिन्दी की सूफी काव्यधारा, कृष्णभक्ति काव्य तथा रीतिकालीन काव्य को बहुत अधिक प्रभावित करती है। इसी समय अर्थात आदिकाल में भाषा के दो रूप 'डिंगल' और 'पिंगल' मिलते हैं। बीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो के अलावा परमालरासो, विजयपाल रासो, हम्मीर रासो और खुमाण रासो आदि अन्य प्रसिद्ध रासो काव्य हैं।

लौकिक साहित्य

आदिकाल में उपर्युक्त प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त स्वच्छन्द रूप में लौकिक विषयों पर ग्रन्थ लिखने की प्रवृत्ति मिलती है। ढोला-मारू रा दूहा ग्यारहवीं शताब्दी में रचित एक लोकभाषा काव्य है। इसमें ढोला नामक राजकुमार और मारवणी नामक राजकुमारी की प्रेमकथा का वर्णन है। यह लोकप्रसिद्ध प्रेमगाथा आदिकालीन श्रृंगार काव्य परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस काव्य में नारी हृदय की अत्यन्त मार्मिक व्यंजना मिलती है। ढोला-मारू रा दूहा मूल रूप से दोहों में लिखा गया है। ये दोहे श्रृंगार रस की जो परम्परा आरम्भ करते हैं, वह आगे जाकर बिहारी के काव्य में प्रतिफलित हुई।

बसन्त-विलास में चौरासी दोहों में बसन्त और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा है कि–"आदिकाल के विद्वानों ने अब तक वीरगाथाओं और धार्मिक उपदेशों का ही युग माना था। बसन्त-विलास के सरस वर्णनों को

पढ़कर सूर की शृंगार भावना या उसके पश्चात् रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता, साहित्य में अचानक आ जाने वाली प्रवृत्ति नहीं रह जाती और न उसके लिए संस्कृत साहित्य में परम्परा की खोज करना ही आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्री-पुरुष-प्र-ति तीनों में अजस्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा चित्रण मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिन्दी कवि भी नहीं कर सके।"

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 77)

गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी कुछ प्रयास लक्षित होते हैं। राउलवेल नामक -ति में कवि ने 'राउल' नामक नायिका के सौन्दर्य का वर्णन आरम्भ में पद्य में किया है, फिर गद्य का प्रयोग किया है। राउलवेल से ही हिन्दी में नख-शिख वर्णन की शृंगार परंपरा आरम्भ हुई। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' से आदिकाल के काव्य रूपों के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होती है। इससे गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। वर्णरत्नाकर मैथिली हिन्दी का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है, जो गद्य में है। हिन्दी गद्य के विकास में राउलवेल के पश्चात इसका योगदान प्रमुख है।

चन्दायन के रूप में सूफी काव्य परम्परा का आरम्भिक रूप–मुल्ला दाउद की रचना चन्दायन' से सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की शुरुआत हुई। इसमें दोहा और चौपाई को मिलाकर लोरिक की कथा कही गई है। सूफी कवियों के काव्य के लिए यह रचना प्रेरक सिद्ध हुई है।

विद्यापति

विद्यापति को आचार्य शुक्ल ने फुटकल कवियों में रख दिया है, किन्तु आदिकाल के ये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। विद्यापति ने तीन भाषाओं में साहित्य लिखा–संस्कृत, अपभ्रंश के एक रूप अवहट्ट और लोकभाषा मैथिली। विद्यापति को अपभ्रंश साहित्य का अन्तिम महत्त्वपूर्ण कवि और हिन्दी साहित्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि कहा जा सकता है।

विद्यापति की रचनाओं में मुख्य रूप से दो परम्पराएँ मिलती हैं–

1. चरित काव्य की परम्परा
2. गीतों की परम्परा।

उपर्युक्त दोनों से एक तीसरी परम्परा का संकेत मिलता है, वह है, काव्य एवं संगीत की एकता की परम्परा। इसकी शुरुआत का श्रेय विद्यापति को ही है। विद्यापति की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं–कीर्तिलता, कीर्तिपताका एवं पदावली।

कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरितकाव्य की परम्परा में आती हैं। ये दोनों रचनाएँ आगे चलकर चरित काव्य का आधार बनती हैं। कीर्तिलता के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–"सब मिलाकर कीर्तिलता अपने समय का बहुत ही सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। वह इतिहास का कविदृष्ट जीवन्त रूप है।"

विद्यापति की कीर्तिलता में गद्य का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा अवहट्ट है। कीर्तिपताका में प्रेमकथा वर्णित है।विद्यापति की ख्याति का आधार उनकी पदावली है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ विद्यापति की पदावली से माना जाता है। राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने पदावली की रचना की। इनकी पदावली में भक्ति और शृंगार का समन्वय मिलता है। वस्तुतः जयदेव का गीत गोविन्द, विद्यापति की पदावली और सूरदास का सूरसागर लगभग एक तरह की रचनाएँ हैं, जिनमें भक्ति का आधार शृंगार है।

विद्यापति की पदावली से अनेक प्रकार की परम्पराएँ शुरू होती हैं, जिनमें कुछ प्रमुख हैं–पद रचना की परम्परा, कविता और संगीत की एकता की परम्परा, लोककाव्य की लिखित परम्परा। विद्यापति की पदावली से उपर्युक्त बातें स्पष्ट होती हैं। आदिकाल में हिन्दी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश के साथ-साथ चलती हुई क्रमशः जनभाषा के रूप में साहित्य रचना का माध्यम बन रही थी। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वीर रस की रचनाओं में डिंगल शैली का प्रयोग होता था तथा कोमल भावों की अभिव्यंजना पिंगल शैली में की जाती थी। पिंगल अर्थात क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित ब्रज साहित्यिक भाषा बनती जा रही थी, आगे चलकर भक्तिकाल में ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा बन गई।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास का काल है। इस काल में अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ निर्मित हो रहीं थी और साहित्यिक भाषा भी एक नया रूप लेने लगी थी। इस काल में एक तरफ तो हमें सिद्धों, नाथों और जैन कवियों की रचनाएँ मिलती हैं तो दूसरी ओर वीरता और शृंगार से परिपूर्ण

रासो काव्य। आदिकाल को भाषा का सन्धिकाल कहा जाता है। इस काल में अपभ्रंश में रचनाएँ हो रही थीं तो अपभ्रंश का परिवर्तित स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुक्तकों की रचना के साथ-साथ प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन हो रहा था। यह काल क्रमशः लोकोन्मुख होती हुई काव्य संवेदना और भाषा का काव्य है। इसी काल में हमें गद्य का स्वरूप निर्मित होते हुए भी दिखाई देता है।

भक्ति कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास

आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है। जिसकी समयावधि संवत् 1325 ई से संवत् 1650 ई तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य(साहित्यिक दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्धकवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

1. सगुण भक्ति
2. रामाश्रयी शाखा
3. कृष्णाश्रयी शाखा
4. निर्गुण भक्ति
5. ज्ञानाश्रयी शाखा
6. प्रेमाश्रयी शाखा।

भक्ति काल के उदय के बारे में सबसे पहले जॉर्ज ग्रियर्सन ने मत व्यक्त किया वे इसे 'ईसायत की देन' मानते हैं। ताराचंद के अनुसार- भक्तिकाल का उदय अरबों की देन है।

रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार - देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उनके देव मंदिर गिराए जाते थे। देव मूर्तियां तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न ही बिना लज्जित हुए सुन सकते थे।

अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शरणागति में जाने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या था। भक्ति का जो प्रवाह दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पढ़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।

भक्ति काल के कवि

भक्ति काल के प्रमुख कवि- सूरदास, संत शिरोमणि रविदास, ध्रुवदास, रसखान, व्यासजी, स्वामी हरिदास, मीराबाई, गदाधरभट्ट, हितहरिवंश, गोविन्दस्वामी,

छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, परमानंद, कृष्णदास, श्रीभट्ट, सूरदास, मदनमोहन, नंददास, चैतन्य महाप्रभु आदि।

भक्ति काल के कवियों का विभाजन

भक्ति काल के कवि मुख्यत: दो धाराओं में विभाजित हैं - 1. निर्गुण काव्य धारा, 2. सगुण काव्य धारा

निर्गुण काव्य धारा के कवि

ईश्वर के निर्गुण अर्थात निराकार रूप की आराधना करते थे। इनमें भी दो धाराएँ थीं - (1) संत काव्य धारा (2) सूफी काव्य धारा।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचय कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्–तिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्ष विधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं।

भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों – कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ – रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही

है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कुठाराघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि, उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि, आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ -तियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें

सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वत:स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोलित करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना

रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है।

तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वय भावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास कुम्भनदास रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं शृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर

सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड़ गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, माध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी -पा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्णन किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी ओर कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।

3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशत: उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काव्य की संगीतात्मक्ता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजा जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।
15. प्र-ति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्र-ति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा।

इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समान उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहे हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं।

भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्-ष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है।

लोक-मंगल की भावना–रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने

आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है।

समन्वय भावना–तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि, तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्–ति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही। काव्य शैलियाँ–रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है।

रस–रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि, उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा। भाषा–रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। छंद–रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्–ष्ट

छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार–रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त–कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति–पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत–कवियों के नाम हैं – नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि, संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य–धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा–चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू–जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन–मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्राय: प्रत्येक गाथा में कोई

राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं - मंझन, कुतुबन और उसमान।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसकि धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

संत काव्य धारा के प्रमुख कवि

कबीरदास- कबीर सन्त परम्परा के प्रमुख और प्रतिनिधि कवि हैं। इनके जन्म के विषय में प्रामाणित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जनश्रुतियों के अनुसार कबीर का जन्म 1398 ई0 में और मृत्यु 1518 ई0 में हुई। कबीर नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को तालाब की किनारे मिले थे। इन्होंने बच्चे का लालन–पालन किया। यही बच्चा बाद में बडा होकर कबीर के नाम से जाना गया। कबीर के गुरु रामानन्द थे। कबीर अनपढ थे। उनके शिष्यो ने कबीर की वाणीको सजोकर रखा तथा बाद में पुस्तक का आकार दिया। इनकी रचना 'बीजक' नाम से जानी जाती है। कबीर ने जीवन भर धार्मिक तथा सामाजिक अंधविश्वासो का तीखा विरोध किया तथा समाजिक बुराइयों का भी विरोध किया।

रामानन्द- रामानन्द जी के आविर्भाव काल, निधन काल, जीवन चरित आदि के सम्बंध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। ये लगभग 15 वीं शती के उत्तार्द्ध में हुए थे। इनकी शिक्षा–दीक्षा काशी में हुआ। ये रामानुजाचार्य परम्परा के शिष्य थे।

नामदेव- ये महाराष्ट्र के भक्त के रुप में प्रसिद्ध है। सतारा जिले के नरसी बैनी गांव में सन् 1267 ई0 में इनका जन्म हुआ था। इनके गुरु का नाम सन्त विसोवा खेवर था। नामदेव मराठी और हिंदी दोनो भाषाओ में भजन गाते थे। उन्होने हिन्दू और मुस्लमान की मिथ्या रूढियों का विरोध किया।

सूफी काव्य धारा के प्रमुख कवि

मलिक मुहम्मद जायसी- इनका जन्म 1492 ई0 के लगभग हुआ था। रायबरेली जिले के जायस नामक स्थान पर जन्म लेने वाले मलिक मुहम्मद

जायसी के बचपन का नाम मलिक शेख मुंसफी था। जायस के निवासी होने के कारण वे जायसी कहलाते थे। मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्य धारा (प्रेममार्गी शाखा) के प्रतिनिधि कवि है। इन्होंने पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा आदि रचनाएं लिखीं।

मुल्ला दाउद- सूफी कवि मुल्ला दाउद की रचना 'चन्दायन' है। इस ग्रंथ की रचना 1379 ई0 में हुई थी। यह प्रेमाख्यानक परम्परा का दूसरा काव्य है।

कुतुबन- कुतुबन की रचना 'मृगावती' है। जिसका रचना काल 1503 ई0 है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे, तथा जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित थे। यह ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखा गया है।

निर्गुण काव्य की विशेषता

जैसा कि आप सभी जानते हैं भक्तिकाल में काव्य की दो प्रधान धाराएँ प्रचलित हुई - निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा की भी दो शाखाएं बनी - ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा।

ज्ञानाश्रयी शाखा को संतों ने पोषित किया और नतीजा यह हुआ कि काव्य की यह धारा जन - जन में जीवन को पवित्र बनाने वाली सिद्ध हुई।. डॉ. श्यामसुंदर दास का मत है - संत कवियों में अपनी निर्गुण भक्ति द्वारा जनता के हृदय में अपूर्व आशा उत्पन्न की .उसे कुछ अधिक समय तक विपति की अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी। संत कवियों ने समाज में फैले हुए विभिन्न आडम्बरों, रुढियों, अंध विश्वासों आदि का पर्दाफाश किया और जनता के सच्चे एवं अच्छे मार्ग की ओर अग्रसर किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा या संत काव्यधारा में हम निम्नलिखित विशेषताएँ या प्रवृत्तियों को देख सकते हैं–

• **निजी धार्मिक सिद्धांतों का अभाव**–संत साहित्य में निजी सिद्धांतों का अभाव है .ब्रह्म, जीव, माया, संसार आदि के सम्बन्ध में इन कवियों ने जिन बातों का वर्णन किया है, वे पूर्ववर्ती आचार्यो और कवियों की देन है।

• **आचार पक्ष की प्रधानता**–संत कवियों ने अपने काव्यों में असंयम, अनाचार और आडम्बर का विरोध किया है। इनमे खानपान, आचार -विचार, शुद्धता और सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है। इनकी सहज साधना और सहज आचारों को पालन करने की साधना है। इन्ही आचारों के आधार पर अनेक पंथ बने हैं। आज भारत में नानक, कवीर पंथ, दादू पंथ आदि बने हैं। इनमें मौलिक एकता है।

• **गुरु के प्रति श्रद्धा**–संत कवियों ने अपनी रचनाओं में गुरु को सबसे ऊँचा स्थान दिया है। इन्होने ईश्वर प्राप्ति हेतु सद्गुरु को आवश्यक बताया है। सद्गुरु अनंत प्रकार से शिष्य का उपकार करता है। वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति के सहारे जीव को ब्रह्म का अलौकिक दर्शन कराता रहेगा।

• **निम्न जाति के कवि**–निर्गुण काव्यधारा के अधिकांश कवि निम्न जाति में उत्पन्न हुए। समाज के निचले स्तर की गिरी जातियों में जन्म लेने के कारण इन्हें उंच नीच सम्बन्धी कटु अनुभव था। इन कवियों में कबीर जुलाहा, रैदास चमार, सेन नाई, दादू धुनिया, सदन कसाई, नाभा दास डोम के घर में जन्मे थे।

• **सामाजिक कुरितियों के विरोधी**–इन कवियों ने एक स्वर से जाति पाति उंच नीच आदि कुरितियों का व्यापक पैमाने पर विरोध किया है। समाज के निचले स्तर से आने के कारण इन कवियों के लिए ज्ञान प्राप्ति के दरवाजे बंद थे। ज्ञान की प्यास बुझाने हेतु इन कवियों ने अनेक दरवाजे खटखटाया किन्तु कोई भी पंडित या महात्मा इन्हें शिक्षा देने के लिए तैयार न था।

• **शिक्षा की कमी**–संत कवि अधिक पढ़े - लिखे नहीं थे। कबीर के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा जाता है -

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।

इसका परिणाम यह हुआ है कि, इन कवियों के ज्ञान का भण्डार पंडितों, महात्माओं, संतों तथा स्थान भ्रमण की देन है .इनके काव्य में मन की गुनी, कान की सुनी और आँख की देखी बातों की चर्चा है .

• **काव्य रूप**–निर्गुण धारा का समस्त साहित्य मुक्तक रूप में लिखा गया है। इनमें प्रबंध का अभाव हैं। अधिकाँश रचनाएँ दोहे और पद में लिखी गयी है। इन कवियों में अक्कहृद पन और मस्तमौला स्वभाव के अनुकूल पद और दोहे स्वछंद होते थे।

• **भाषा**–संत कवियों की भाषा खिचड़ी या सधुक्कड़ी है। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटक - भटक कर स्थान - स्थान की भाषा ग्रहण करते थे, कारण इनका भाषा भंडार विविधता से भरा था। यह सधुक्कड़ी भाषा अनगढ़ और अपरिमार्जित है। कहीं - कहीं गूढ़ ज्ञान के कारण भाषा क्लिष्ट हो गयी है। किन्तु यह सत्य है कि, इन कवियों का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है।

सगुण काव्य धारा

सगुण काव्य धारा के कवि ईश्वर के सगुण अर्थात साकार रूप की आराधना करते थे। इनमें भी मुख्यत: दो शाखाएँ थीं- (क) राम भक्ति काव्य धारा (ख) कृष्ण भक्ति काव्य धारा।

राम काव्य धारा के प्रमुख कवि

तुलसीदास- तुलसीदास को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। इन्होंने रामकथा को अवधी रूप दे कर घर घर में प्रसारित कर दिया।इनका जन्म काल विवादित रहा है। इनके कुल 13 ग्रंथ मिलते हैं – दोहावली 2. कवितावली 3. गीतावली 4.कृष्ण गीतावली 5. विनय पत्रिका 6. राम लला नहछू 7. वैराग्य-संदीपनी 8.बरवै रामायण 9. पार्वती मंगल 10. जानकी मंगल 11.हनुमान बाहुक 12. रामाज्ञा प्रश्न 13. रामचरितमानस।

नाभादास- अग्रदास जी के शिष्य, बड़े भक्त और साधुसेवी थे। संवत् 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनकी 3 रचनाएँ उपलब्ध हैं– रामाष्टयाम 2. भक्तमाल 3. रामचरित संग्रह।

स्वामी अग्रदास- अग्रदास जी कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे जो रामानंद की परंपरा के थे। सन् 1556 के लगभग वर्तमान थे। इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है। प्रमुख -तियां है–1. हितोपदेश 2. उपखाणाँ बावनी ध्यानमंजरी 3. रामध्यानमंजरी 4. राम-अष्ट्याम

कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि

सूरदास- ये कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। सूरदास नेत्रहीन थे। इनका जन्म 1478 में हुआ था तथा मृत्यु 1573 में हुई थी। इनके पद गेय हैं। इनकी रचनाएं 3 पुस्तकों में संकलित हैं। सूर सारावली–इसमें 1103 पद हैं। 2. साहित्य लहरी 3. सूरसागर–इसमें 12 स्कंध हैं और सवा लाख पद थे किंतु अब 45000 पद ही मिलते हैं। इसका आधार श्रीमद भागवत पुराण है।

कुंभनदास- यह अष्टछाप के प्रमुख कवि हैं। जिनका जन्म 1468 में गोवर्धन, मथुरा में हुआ था तथा मृत्यु 1582 में हुई थी। इनके फुटकल पद ही मिलते हैं।

नंददास- ये 16वी शती के अंतिम चरण के कवि थे। इनका जन्म 1513 में रामपुर में हुआ था तथा मृत्यु 1583 में हुई थी। इनकी भाषा ब्रज थी। इनकी 13 रचनाएं प्राप्त हैं। 1. रासपंचाध्यायी 2. सिद्धांत पंचाध्यायी 3. अनेकार्थ मंजरी 4. मानमंजरी 5. रूपमंजरी 6. विरहमंजरी 7. भँवरगीत 8. गोवर्धनलीला 9. श्यामसगाई 10. रुक्मिणीमंगल 11. सुदामाचरित 12. भाषादशम-स्कंध 13. पदावली।

रसखान- इनका असली नाम सैय्यद इब्राहिम था। इनका जन्म हरदोई में 1533 से 1558 के बीच हुआ था। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्णभक्ति को समर्पित कर दिया था। इन्हें प्रेम रस की खान कहा जाता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं सुजान रसखान 2. प्रेमवाटिका।

मीरा- मीराबाई स्वयं ही एक लोकनायिका हैं।इनका जन्म1498 में हुआ था तथा मृत्यु 1547 में। इन्होंने मध्य काल में स्त्रियों की पराधीन बेड़ियों को तोड़ कर स्वतंत्र हो कर कृष्णप्रेम का प्रदर्शन करने का साहस किया। इन्होंने सामाजिक और पारिवारिक दस्तूरों का बहादुरी से मुकाबला किया और कृष्ण को अपना पति मानकर उनकी भक्ति में लीन हो गयीं। उनके ससुराल पक्ष ने उनकी कृष्ण भक्ति को राजघराने के अनुकूल नहीं माना और समय-समय पर उनपर अत्याचार किये। मीरा स्वयं को कृष्ण की प्रेयसी मानती हैं, तथा अपने सभी पदों में उसी तरह व्यवहार करती हैं। इनके मृत्यु को ले कर कई किवंदतियां प्रसिद्ध हैं। इनके सभी पद गेय हैं। इनकी रचनाएँ मीराबाई पदावली में संग्रहित हैं।

सगुण भक्ति काव्य की विशेषता

भक्तिकाल अथवा पूर्व मध्यकाल हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण काल है जिसे 'स्वर्णयुग' विशेषण से विभूषित किया जाता है। इस काल की समय सीमा विद्वानों द्वारा संवत 1375 से 1700 तक मान्य है।राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं सांस्–तिक दृष्टि से अंतर्विरोधों से परिपूर्ण होते हुए भी इस काल में भक्ति की ऐसी धारा प्रवाहित हुयी कि विद्वानों ने एकमत से इसे भक्ति काल कहा।

सगुण भक्ति का अर्थ है- आराध्य के रूप–गुण, आकार की कल्पना अपने भावानुरूप कर उसे अपने बीच व्याप्त देखना. सगुण भक्ति में ब्रह्म के अवतार रूप की प्रतिष्ठा है और अवतारवाद पुराणों के साथ प्रचार में आया. इसी से विष्णु अथवा ब्रह्म के दो अवतार राम और कृष्ण के उपासक जन-जन के हृदय में बसने

लगे। राम और कृष्ण के उपासक उन्हें विष्णु का अवतार मानने की अपेक्षा परब्रह्म ही मानते हैं, इसकी चर्चा यथास्थान की जाएगी।

भक्तिकाल की सगुण काव्य द्यरा के अंतर्गत आराध्य देवताओं में श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। वेदों में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है। ऋगवेद में कृष्ण (आंगिरस) का उल्लेख है। पुराणों तक आते- आते राम और कृष्ण अवतार रूप में प्रतिष्ठित हो गए। श्रीमद्भाग्वद्पुराण में उन्हें पूर्ण ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है।

भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार कृष्ण की जन्म एवं लीलाभूमि में व्यापक रूप में हुआ वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में वल्लभाचार्य–पुष्टिमार्ग. निम्बार्काचार्य–निम्बार्क, श्री हितहरिवंश–राधावल्लभ, स्वामी हरिदास- हरिदासी, चैतन्य महाप्रभु-गौडीय संप्रदाय सभी सम्प्रदायों में पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण तथा श्री राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति की उपासना की गयी। सत, चित, आनंद स्वरुप श्री कृष्ण नन्द और यशोदा के आँगन में विभिन्न बाल लीलाओं के माध्यम से समस्त गोकुलवासियों को आनंद प्रदान करते है। बाल रूप में ही राक्षस-राक्षसियों का विनाश कर अपने दिव्य रूप को सहज ग्राह्य बना देते हैं। वे ही सर्वव्यापक, अविनाशी, अजर, अमर, अगम आदि विशेषणों से युक्त होते हुए भी ब्रज के प्रत्येक प्राणी को उसके भावानुरूप आनंद प्रदान करते है।

हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति पर आधारित काव्यों की लम्बी परंपरा है (आदिकालीन कृष्ण काव्य में चंदवरदाई और विद्यापति उल्लेखनीय है) भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों पर महाप्रभु वल्लभाचार्य का विशेष प्रभाव है। उन्होंने श्रीकृष्ण के बाल एवं किशोर रूप की लीलाओं का गायन किया तथा गोवर्धन पर श्रीनाथ जी को प्रतिष्ठित कर एक मंदिर बनवाया। उन्होंने भगवान के अनुग्रह की महत्ता पर बल दिया।

दर्शन के क्षेत्र में विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत का प्रभाव इन पर दिखाई देता है। अपने इस भक्ति मार्ग को उन्होंने पुष्टिमार्ग कहा और अनेक शिष्यों को कृष्ण भक्ति का मन्त्र देकर दीक्षित भी किया। जिन्हें अष्टछाप के कवि अथवा अष्ट सखा कहा गया। इनमें सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास-चार श्री बल्लभाचार्य के शिष्य और गोविन्दस्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास-चार बल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ के शिष्य थे। आठ की संख्या होने से इन्हें अष्ट छाप कहा गया।

इन सभी भक्त कवियों ने श्रीमदभागवत के आधार पर ही कृष्ण लीला गान किया है। इनके लिए अपने आराध्य श्रीकृष्ण की –पा से प्राप्त भगवत प्रेम ही महत्वपूर्ण है। पुष्टिमार्ग का अनुयायी भक्त आत्मसमर्पण युक्त रसात्मक प्रेम द्वारा भगवान की लीला में तल्लीन हो आनन्दावस्था को प्राप्त होता है।

सभी कृष्ण भक्त कवियों की रचनाएँ भक्ति, संगीत और कवित्व का समन्वित रूप है। लीलामय श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति के आवेश में इन अष्टछाप कवियों के हृदय से गीतिकाव्य की जो निर्झरिणी प्रस्फुटित हुई उसने भगवदभक्तों को आकंठ निमग्न कर दिया।

हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल'

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है। इसे स्वर्णकाल या स्वर्ण युग कहने का बहुत बड़ा अर्थ और अभिप्राय है। इस काल में ही शताब्दियों से चली आती हुई दासता को तोड़ने के लिए आत्मचेतना के प्रेरक कवियों और समाज सुधारकों का उदय हुआ। रामानंद, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, शंकराचार्य, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, दादूदयाल, रैदास, तुकाराम, रसखान, रहीम आदि ने देशभक्ति की लहरों को जगाते हुए मानवतावाद का दिव्य सन्देश दिया। इस काल में ही राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक जागृति की अभूतपूर्व आँधी आयी। उसने गुलामी की झाड़ झंखड़ों को कंपाते हुए तोड़ने, झुकाना शुरू कर दिया। समग्र राष्ट्र का स्वतंत्र रूप सामने आने लगा। एक प्रकार से वैचारिक क्रान्ति की ध्वनि गूँजित होने लगी। भाषा साहित्य की पहचान के द्वारा नैराश्यमय अन्धवातावरण धीरे धीरे छिन्न भिन्न होने लगा और समाज स्वावलम्बन की दिशा में आगे बढ़ने लगे।

भक्तिकाल में धार्मिक भावनाओं से उत्प्रेरित विभिन्न मतवादी काव्य साधनाओं का जन्म हुआ। इस प्रकार मतवादों का प्रवाह दक्षिण भारत में आलवार भक्तों के द्वारा प्रवाहित हुआ था। आलवारों के बाद दक्षिण में आचार्यों की परम्परा में विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, द्वैत और अद्वैताद्वैत वाद का प्रतिपादन हुआ। विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक रामानुजाचार्य हुए। रामानुजाचार्य की ही परम्परा में रामानन्द जी हुए थे। रामानन्द की लम्बी शिष्य श्रृंखला थी। उसमें कबीरदास जुलाहा, भवानन्द ब्राह्मण, पीपा राजपूत धन्ना जाट, सेना नाई, रैदास चमार तथा सदना कसाई थे। इस प्रकार रामानन्द ने जात पात के भेदों को दूर करके मानवतावाद की स्थापना की थी। रामानन्द के शिष्यों में कबीर सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय हुए थे।

कबीरदास का निर्गुण मत का प्रचार प्रसार बहुत तेजी से हुआ था। विष्णु स्वामी की परम्परा में महाप्रभु बल्लभाचार्य का प्रभाव स्थापित हुआ। उन्होंने पुष्टिमार्ग की स्थापना की। इसकी स्थापना के बाद यह सम्प्रदाय अष्टछाप के नाम से जाना गया। इसे यह नाम इसलिए दिया गया कि उसमें आठ कवियों सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास, छीतस्वामी, गोबिन्द स्वामी और चतुर्भुज दास का योगदान था। इनमें सर्वाधिक ख्यातिलब्ध रचनाकार महाकवि सूरदास जी हुए थे। इन्हें सगुण काव्यधारा कृष्णभक्ति मार्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में मान्यता दी गई है।

रामभक्ति के वास्तविक प्रर्क्तक तो रामानन्द जी ही थे। क्योंकि इनसे प्रचारित भक्तिधारा का स्त्रोत निर्गुण अैर सगुण दोनों ही रूपों में प्रस्फुटित हुआ था। निर्गुण धारा में कबीर, रैदास, दादूदयाल, पीपा, धन्ना आदि प्रवाहित हुए थे। इसी रामानन्द की भक्ति परम्परा में सगुण भक्ति काव्यधारा के रामाश्रयी शाखा के सर्वप्रधान कवि तुलसीदास जी हुए, जिन्होंने रामोपासना के विभिन्न ग्रन्थों के द्वारा लोक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली।

भक्ति काव्यधारा में निर्गुण भक्ति शाखा के प्रेममार्गी काव्य रचना के शिरोमणि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए, जिनमें अपनी काव्य रचनाओं के द्वारा भक्ति दिखाई पड़ती है, जो निम्नलिखित हैं-

1. गुरू महिमा–भक्तिकाल में सबसे अधिक गुरूमहत्व पर प्रकाश डाला गया है। कबीरदास ने अपनी साखी रचना में कहा है-

गुरू गोबिन्द दोऊ, खड़े, काके लागो पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोबिन्द दियो बताय॥

इसी तरह तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई जायसी आदि ने गुरू महत्व को बतलाया है।

2. इष्टदेव का महत्वांकन–भक्तिकाल के सभी कवियों ने अपने अपने इष्टदेव के महत्व को अंकित किया है। तुलसीदास ने अपनी महाकाव्य -ति रामचरितमानस में स्पष्ट लिखा है-

रामहिं केवल मोहिं पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा।

3. नाम की महिमा–भक्तिकाल के कवियों ने अपने इष्ट के नाम का प्रतिपादन सबसे बढ़कर किया है। इस संदर्भ में तुलसीदास जी ने स्पष्टतः कहा कि-

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
कहाँ कहा कहि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

4. अपार भक्तिधारा–भक्ति का आग्रह या भक्ति की अपार धारा इस काल में कहीं भी देखी जा सकती है। इसकी प्रधानता के कारण ही इस काल का नाम भक्तिकाल रखना सर्वथा उचित और न्यायसंगत लगता है।

5. सत्संगति का महत्वोल्लेख–सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा करके समाज में इसकी आवश्यकता पर बल दिया–

कबीरा संगति साधु की, हरै पाव और व्याधि।
संगति बुरी असाधु, की बढ़ै कोटि अपराधि॥

6. आडम्बरों का खण्डन विरोध–भक्तिकाल में सभी प्रकार के आडम्बरों का खंडन करते हुए मानवतावाद की स्थापना की गयी। कबीरदास ने मूर्ति पूजा के विरोध में कहा–

कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

भक्तिकाल की विशेषताओं को चरितार्थ करने वाले रचनाकारों के ग्रन्थों में तुलसीदासकृत रामचरितमानस, विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, वरवै, रामायण, वैराग्य संदीपनी, हनुमान बाहुक, सूरदास जी कृत सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी कबीरदास जी कृत साखी, सबद, रमैनी, मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावतु, अखरावट और आखिरी कलाम आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में भक्ति सम्बन्धित रचनाओं के साथ साथ काव्य के आवश्यक अंग जैसे–रस, छंद, अलंकार, बिम्ब प्रतीक, योजना, रूपक, भाव आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इस प्रकार से भक्तिकाल का महत्व साहित्य और भक्ति भावना दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक है। इससे सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना को अपेक्षित दिशाबोध प्राप्त हुआ। इसी कारण इस काल को स्वर्ण युग कहा जाता है।

रीति काल में हिंदी साहित्य

उत्तर मध्य काल हिंदी साहित्य का इतिहास या रीतिकाल साहित्य (1650 ई0 - 1850 ई0)– नामांकरण की दृष्टि से उत्तर-मध्यकाल हिंदी साहित्य के इतिहास में विवादास्पद है। इसे मिश्र बंधु ने -अलंकृत काल, तथा रामचंद्र शुक्ल ने -रीतिकाल, और विश्वनाथ प्रसाद ने -शृंगार काल कहा है। रीतिकाल के उदय

के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है- इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रय दाताओं की रूचि थी, जिसके लिए वीरता और अकर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।

'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है। संस्कृत साहित्य में रीति 'काव्य की आत्मा' मानने वाला एक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अ पने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति काव्य की आत्मा है और काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी रीति है, यह मान्यता इस सिद्धान्त की है। वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी रीतियाँ हैं। रीति का आधार गुण है। संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह धारणा हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गयी है। परन्तु रीति की काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ- 'ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो।' इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में सर्वप्रधान रही, वह काल 'रीतिकाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रीतिकालीन कविता में लक्ष्मण ग्रंथ, नायिका भेद, शृंगारिकता आदि की जो प्रवृतियां मिलती है उसकी परंपरा संस्कृत साहित्य से चली आ रही थी। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्रा-त, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत के प्राचीन साहित्य विशेषता रामायण और महाभारत से यदि भक्तिकाल के कवियों ने प्रेरणा ली तो रीतिकाल के कवियों ने उत्तर कालीन संस्कृत साहित्य से प्रेरणा व प्रभाव लिया। लक्ष्मण ग्रंथ, नायिका भेद, अलंकार और संचारी भावों के पूर्व निर्मित वर्गीकरण का आधार लेकर यह कवि बधी सधी बोली में बंधे सदे भाव की कवायद करने लगे।।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में शृंगार की प्रधानता रही।

यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए। कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही जिसके फलस्वरूप इसमें चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्रा तो मिलती है परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई।

समृद्धि और विलासिता का काल

रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि, इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। नवाब, जागीरदार, मनसबदार, सामन्त-सभी का उद्देश्य विलासिता और समृद्धि का जीवन था। इस समृद्धि के जीवन के लिए साधन किसी भी प्रकार के क्यों न हों, समृद्धि का अर्जन ही सामर्थ्य की सार्थकता थी। ये उच्च वर्ग के लोग कला और कविता के संरक्षक थे। कुछ तो स्वयं कवि एवं कलाकार थे। इस प्रकार इस काव्य में ऐहिक जीवन के सुख-भोग पर बल दिया गया। यह जीवन की क्षणभंगुरता को भुलाकर नहीं, वरन् इसलिए कि इस क्षणभंगुर जीवन में जितने ही दिन सुख-भोग के बीत सकें, उतना ही अच्छा।

शृंगारिक साहित्य

सजाव-शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। उपासना के लिए जिन राम और कृष्ण का चरित्र भक्तिकाल में अत्युत्-ष्ट रूप में चित्रित हुआ, उनमें भी शृंगारिकता का आरोप कर शृंगारिक स्वरूप के उद्घाटन में प्रतिभा को लगाया गया। लोकैषणा का सीमित और भोग्य रूप इस काल के यथार्थवादी धरातल का संकेत करता है। पर यह यथार्थवाद सामाजिक क्रान्ति के बीज बोने वाले आधुनिक यथार्थवाद से भिन्न था। वह कला और कारीगरी का यथार्थ है, चिन्तना, ठेस, असन्तोष की चिनगारी बिखेरने वाला यथार्थ नहीं। इस काल की कलात्मक उपलब्धियों में एकरसता है, विविधता नहीं।

रीतिकाल के कवियो का इतिहास

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरारी थे अर्थात राजाओं के दरबार में अपनी कविता किया करते थे जिससे उनकी कविता आम लोगो तक सही से नहीं मुखर हो पायी -

रीतिकाल के कवि	उनका दरबार
1. केशवदास	ओरछा
2. प्रताप सिंह	चरखारी
3. बिहारी	जयपुर, आमेर
4. मतिराम	बूँदी
5. भूषण	पन्ना
6. चिंतामणि	नागपुर
7. देव	पिहानी
8. भिखारीदास	प्रतापगढ़-अवध
9. रघुनाथ	काशी
10. बेनी	किशनगढ़
11. गंग	दिल्ली
12. टीकाराम	बड़ौदा
13. ग्वाल	पंजाब
14. चन्द्रशेखर बाजपेई	पटियाला
15. हरनाम	कपूरथला
16. कुलपति मिश्र	जयपुर
17. नेवाज	पन्ना
18. सुरति मिश्र	दिल्ली
19. कवीन्द्र उदयनाथ	अमेठी
20. ऋषिनाथ	काशी
21. रतन कवि	श्रीनगर-गढ़वाल
22. बेनी बन्दीजन	अवध
23. बेनी प्रवीन	लखनऊ
24. ब्रह्मदत्त	काशी
25. ठाकुर बुन्देलखण्डी	जैतपुर
26. बोधा	पन्ना
27. गुमान मिश्र	पिहानी

अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य साहित्य का आरंभ

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई।

केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य की शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि, - ' केशवदास जी ने काव्य के सब अंगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया यह नि:सन्देह है कि, काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया' हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया ' के प्राय:पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं' वे कहते है कि-हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिवेदी से चली, अत:रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्रय से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों

के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्र इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आ-ष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि, अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की

सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे।' पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है–

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं।

ऐहलौकिकता, श्रृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार–प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्राय: सब कवियों ने ब्रज–भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में – विशेषकर श्रृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में – सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव–पक्ष की अपेक्षा कला–पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द–शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुएकृ केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति–काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग का नामकरण हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर किया गया है। भारतेंदु युग की प्रवृत्तियां नवजागरण, सामाजिक, चेतना, भक्ति भावना, श्रृंगारिकता रीति निरूपण समस्या पूर्ति थी। हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग में भारतेंदु को केंद्र में रखते हुए अनेक –ति साहित्यकारों का एक उज्जवल मंडल प्रस्तुत हुआ जिसे भारतेंदु मंडल के नाम से जाना गया। इसमें भारतेंदु के समान धर्मा रचनाकार थे। इस मंडल के रचनाकारों ने भारतेंद्र से प्रेरणा ग्रहण की और हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि का काम किया।

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र पत्रिका' भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई।

नवजागरण काल – भारतेंदु काल को 'नवजागरण काल' भी कहा गया है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक और प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था, उनका भी धीरे-धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था।

प्रारंभ के 25 वर्षों (1843 से 1869) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा, किन्तु सन 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इसलिए इस युग को 'भारतेन्दु युग' भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रजभाषा में भक्ति और शृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे।

भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई। शृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया।

भारतेंदु युग के प्रमुख रचनाकार

भारतेंदु मंडल के प्रमुख रचनाकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमघन), बालकृष्ण भट्ट, अंबिकादत्त व्यास, राधा चरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास दास, सुधाकर द्विवेदी, राधा कृष्ण दास आदि थे।

द्विवेदी युग

हिंदी साहित्य में दिवेदी युग बीसवीं सदी के पहले दो दशकों का युग है। द्विवेदी युग का समय सन 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी

के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा।

भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं। दो दशकों के कालखंड में हिंदी कविता को शृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढ़ि से स्वच्छंदता के द्वार पर ला खड़ा किया। द्विवेदी युग को जागरण सुधार काल भी कहा जाता है। द्विवेदी युग के पथ प्रदर्शक विचारक और सर्व स्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम द्विवेदी युग रखा गया है।

सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया।

इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं- ' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, ' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ' रामचरित उपाध्याय, ' जगन्नाथदास 'रत्नाकर', ' गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', ' श्रीधर पाठक, ' रामनरेश त्रिपाठी, ' मैथिलीशरण गुप्त, ' लोचन प्रसाद पाण्डेय, ' सियारामशरण गुप्त।

द्विवेदी युग की विशेषताएँ-

'द्विवेदी युग' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. अशिक्षा, गरीबी, अनाचार, अत्याचार आदि से छुटकारा दिलाने की कामना।
2. देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता का सन्देश।
3. नारी के प्रति सहानुभूति की भावना।
4. समाज सुधार के प्रयास।
5. नैतिकता एवं आदर्शवाद की पुष्टि।
6. सत्यम, शिवम, सुन्दरम का विधान।
7. मनोरम प्र-ति चित्रण।
8. सरल, सुबोध एवं सरस खड़ी बोली में काव्य की रचना।

छायावादी युग

हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद युग के वास्तविक अर्थ को लेकर विद्वानों में विभिन्न मतभेद है। छायावाद का अर्थ मुकुटधर पांडे ने 'रहस्यवाद, सुशील कुमार ने 'अस्पष्टता' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अन्योक्ति पद्धति' रामचंद्र शुक्ल ने 'शैली बैचित्र्य 'नंददुलारे बाजपेई ने 'आध्यात्मिक छाया का भान' डॉ नगेंद्र ने 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोहष्बताया है।

'द्विवेदी युग' के बाद के समय को छायावाद युग कहा जाता है। बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध छायावादी कवियों का उत्थान काल था। इस युग को जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रनंदन पंत जैसे छायावादी प्र-ति उपासक-सौन्दर्य पूजक कवियों का युग कहा जाता है। 'द्विवेदी युग' की प्रतिक्रिया का परिणाम ही 'छायावादी युग' है।

इस युग में हिन्दी साहित्य में गद्य गीतों, भाव तरलता, रहस्यात्मक और मर्मस्पर्शी कल्पना, राष्ट्रीयता और स्वतंत्र चिन्तन आदि का समावेश होता चला गया। इस समय की हिन्दी कविता के अंतरंग और बहिरंग में एकदम परिवर्तन हो गया। वस्तु निरूपण के स्थान पर अनुभूति निरूपण को प्रधानता प्राप्त हुई थी। प्र-ति का प्राणमय प्रदेश कविता में आया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा 'छायावादी युग' के चार प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं।

'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं।

रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर को भी 'छायावाद' ने प्रभावित किया। किंतु रामकुमार वर्मा आगे चलकर नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हुए, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी धारा की ओर रहे, बच्चन ने प्रेम के राग को मुखर किया और दिनकर जी ने विद्रोह की आग को आवाज दी।

अन्य कवियों में हरिकृष्ण 'प्रेमी', जानकी वल्लभ शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'आंचल' के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

रचना की द्रष्टि से छायावाद के कवि

समालोचक- आचार्य द्विवेदी जी, पद्म सिंह शर्मा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डाक्टर रामकुमार वर्मा, श्यामसुंदर दास, डॉ रामरतन भटनागर आदि हैं।

कहानी लेखक–प्रेमचंद, विनोद शंकर व्यास, प्रसाद, पंत, गुलेरी, निराला, कौशिक, सुदर्शन, जैनेंद्र, हृदयेश आदि।

उपन्यासकार–प्रेमचंद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, प्रसाद, उग्र, हृदयेश, जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, वृंदावन लाल वर्मा, गुरुदत्त आदि।

नाटककार–प्रसाद, सेठ गोविंद दास, गोविंद वल्लभ पंत, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदय शंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा आदि हैं।

निबंध लेखक–आचार्य द्विवेदी, माधव प्रसाद शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास, पद्म सिंह, अध्यापक पूर्णसिंह आदि।

कवि क्रम अनुसार छायावादी रचनाएँ

जयशंकर प्रसाद (1889-1936 ई.) के काव्य- 'चित्रधार' (ब्रज भाषा में रचित कविताएँ), 'कानन-कुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' और 'कामायनी।'

सुमित्रनंदन पंत (1900-1977ई.) के काव्य- 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगान्तर', 'उत्तरा', 'रजत-शिखर', 'शिल्पी', 'प्रतिमा', 'सौवर्ण', 'वाणी', 'चिदंबरा', 'रश्मिबंध', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'अभिषेकित', 'हरीश सुरी सुनहरी टेर', 'लोकायतन', 'किरण वीणा।'

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1898-1961 ई.) के काव्य - 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'आराधना', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नए पत्ते', 'बेला', 'अर्चना।'

महादेवी वर्मा (1907-1988 ई.) की काव्य रचनाएँ- 'रश्मि', 'निहार', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'यामा।'

डॉ. रामकुमार वर्मा की काव्य रचनाएँ- 'अंजलि', 'रूपराशि', 'चितौड़ की चिता', 'चंद्रकिरण', 'अभिशाप', 'निशीथ', 'चित्ररेखा', 'वीर हमीर', 'एकलव्य।'

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की काव्य रचनाएँ- 'आखों में', 'अनंत के पथ पर', 'रूपदर्शन', 'जादूगरनी', 'अग्निगान', 'स्वर्णविहान।'

छायावादी युग में कवियों का एक वर्ग ऐसा भी था, जो सूरदास, तुलसीदास, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभा संपन्न काव्य-धारा को जीवित रखने के लिए ब्रजभाषा में काव्य रचना कर रहे थे।

'भारतेंदु युग' में जहाँ ब्रजभाषा का काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया, वहीं छायावाद आते-आते ब्रजभाषा में गौण रूप से काव्य रचना लिखी जाती रहीं। इन कवियों का मत था कि ब्रजभाषा में काव्य की लंबी परम्परा ने उसे काव्य के अनुकूल बना दिया है।

छायावादी युग में ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले कवियों में रामनाथ जोतिसी, रामचंद्र शुक्ल, राय कृष्णदास, जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', दुलारे लाल भार्गव, वियोगी हरि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अनूप शर्मा, रामेश्वर 'करुण', किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' प्रमुख हैं।

रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में 'रामचंद्रोदय' मुख्य है। इसमें रामकथा को युग के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य पर केशव की 'रामचंद्रिका' का प्रभाव लक्षित होता है। विभिन्न छंदों का सफल प्रयोग हुआ है।

रामचंद्र शुक्ल, जो मूलत: आलोचक थे, ने 'एडविन आर्नल्ड' के आख्यान काव्य 'लाइट ऑफ एशिया' का 'बुद्धचरित' शीर्षक से भावानुवाद किया। शुक्ल जी की भाषा सरल और व्यावहारिक है।

राय कृष्णदास कृत 'ब्रजरस', जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' द्वारा रचित 'कवित्त-सवैये' और दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे-दोहावली' इस काल की प्रमुख व उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में राष्ट्रीय भावनाओं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अनेक स्फुट रचनाएँ लिखीं। लेकिन इनका ब्रजभाषा का वैशिष्टय 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में लक्षित होता है, जहाँ इन्होंने उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्रण किया है।

अनूप शर्मा के चम्पू काव्य 'फेरि-मिलिबो' (1938) में कुरुक्षेत्र में राधा और कृष्ण के पुनर्मिलन का मार्मिक वर्णन है।

रामेश्वर 'करुण' की 'करुण-सतसई' (1930) में करुणा, अनुभूति की तीव्रता और समस्यामूलक अनेक व्यंग्यों को देखा जा सकता है।

किशोरी दास वाजपेयी की 'तरंगिणी' में रचना की दृष्टि से प्राचीनता और नवीनता का सुंदर समन्वय देखा जा सकता है।

उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' की रचनाओं में भी भाषा और संवेदना की दृष्टि से नवीनता दिखाई पड़ती है।

इन रचनाओं में नवीनता और छायावादी काव्य की सूक्ष्मता प्रकट हुई है, यदि इस भाषा का काव्य परिमाण में अधिक होता तो यह काल ब्रजभाषा का छायावाद साबित होता।

आधुनिक काल की विशेषता आधुनिक काल की प्रवृत्तियाँ

आधुनिक काल रीतिकाल के बाद का काल है। सन 1857 से लेकर अब तक आधुनिक काल कहलाता है। सन 1857 में एक ऐसी घटना घटी कि सारा देश हिल और सिहर गया और उसका परिणाम अति दूरगामी सिद्ध हुआ – यह थी प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटना। इसके बाद भारत में एक नयी चेतना जागी और रीतिकाल के विलासितापूर्ण मादक प्रभाव से मुक्त होकर वह नवयुग की अंगडाई लेने लगा और सन 1857 ई. में आधुनिक काल का जन्म हुआ। इस समय भारतेंदु हरिश्चंद्र जो आधुनिक गद्य के निर्माता और जनक कहे जाते हैं, 7 वर्ष के थे और कविता करने लगे। इस काल में धर्म, साहित्य, कला तथा दर्शन के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ। यह आधुनिक काल विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संपर्क और समन्वय का परिणाम है। इस काल की साहित्यिक प्रवृतियाँ तथा विशेषताओं में काफी विविधता है। इसमें भारतेंदु युग से लेकर नयी कविता तक का काल समाविष्ट है, किन्तु इतने दीर्घकाल में अनेक काव्यधाराओं के बाद भी कुछ सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं, जो कि निम्नलिखित है–

1. राष्ट्रीयता एवं अतीत का गौरवगान–राष्ट्रीयता हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। आधुनिक काल के प्रारंभ से हिंदी कवियों ने भारत माता तथा उसकी संतानों की दुर्दशा में छटपटाते देखा। उनका हृदय भक्ति, रीति और श्रृंगार परंपरा से हटकर राष्ट्र प्रेम की ओर मुड़ गया। इन कवियों ने देशवासियों को उनके अतीत गौरव याद दिलाकर उनमें उत्साह का भाव भरा। भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग और बाद में भी यह भावना बनी रही। भारतेंदु हरिश्चंद, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर श्यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों ने देश का अतीत गौरव गाकर राष्ट्रीयता की धारा प्रवाहित की है।

2. छायावाद–भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में रीतिकालीन श्रृंगार धारा जो क्षीण हो गयी थी, छायावाद नामक एक नयी प्रवृत्ति के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के बाद उभरी। इसमें व्यक्तिगत धरातल पर प्रभाव और कल्पना लोक में प्र-ति प्रेम और नारी सौन्दर्य को चित्रित किया गया है। इस प्रवृत्ति में कवियों का अतृप्त प्रणय भावना वेदना से रो पड़ी है। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि इस धारा के कवि हैं।

3. रहस्यवाद–छायावादी काव्य की ही यह एक उपधारा है। भक्तिकालीन कवियों के रहस्यवाद से इसमें बड़ी भिन्नता है। प्रकृत्ति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप ही रहस्यवाद है। कतिपय भिन्नता के कारण इसे नवीन रहस्यवाद भी कहा जाता है। वह आधुनिक काल में छायावादी कवियों में पल्लवित हुई और बाद तक चलती आई है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, अज्ञेय आदि कवियों के काव्य में यह धारा देखी जा सकती है।

4. प्रगतिवाद–प्रगतिवाद, पूंजीवाद व्यवस्था के विरोध में दीन हीन मजदूरों एवं शोषितों के समर्थन की एक प्रवृत्ति है। इसमें छायावादी सौन्दर्य भावना, रूढ़िवादी संस्–ति, आदर्शवाद आदि का भी विरोध पाया जाता है। सन 1936 के बाद हिंदी में यह प्रवृत्ति पनपी। निराला, पन्त, आंचल, अश्क, नागार्जुन, रामविलाश शर्मा, अमृत राय, यशपाल, राजेन्द्र यादव आदि ने इस प्रवृत्ति को विकसित करने का सराहनीय कार्य किया है।

5. प्रयोगवाद–इस काव्य प्रवृत्ति के नवीन काव्य शिल्प में जीवन के नए मूल्यों तथा यथार्थवादी प्रवृत्तियों को चित्रित किया गया। इस कार्य के लिए अज्ञेय ने सन 1943 में तार सप्तक का सम्पदन किया, सन 1953 तक यह प्रवृत्ति तेजी के साथ विकसित होती रही। बौद्धिकता, मनोविश्लेषन, नवीन जीवन मूल्य तथा नवीन शिल्प प्रयोग इस धारा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि इस धारा के प्रमुख साहित्यकार है।

6. नव लेखन–नव लेखन आधुनिक साहित्यकार की नवीनतम प्रवृत्ति है। नव लेखन की प्रवृत्ति कविता में नयी कविता, नाटक में नए नाटक, कहानी के क्षेत्र में नयी कहानी, उपन्यास के क्षेत्र में नया उपन्यास तथा आलोचना के क्षेत्र में नयी आलोचना है। इसमें मानवता के स्थान पर व्यापक मानवता, बौद्धिकता के स्थान पर शुद्ध बौद्धिकता, व्यंग के स्थान पर तीखा व्यंग और यथार्थ आदि है।

7. अन्य विशेषताएं–हालावाद, यथार्थवाद, प्रतीकवाद, आदर्शवाद आदि साहित्यिक प्रवृतियों का भी आधुनिककाल में उदय और विकास हुआ है। ये सभी विशेषताएँ कुछ समय तक ही अस्तित्त्व में रही हैं।

8. खड़ीबोली का विकास–इस युग में खड़ीबोली का विकास गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से हुआ। इस युग में ब्रज, अवधी आदि भाषाएँ लुप्त होती चली गयीं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य का विकास

आधुनिक काल में लिखी जाने वाली कविता को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. नवजागरण काल (भारतेन्दु युग) - 1850 ई. से 1900 ई. तक
2. सुधार काल (द्विवेदी युग) - 1900 ई. से 1920 ई. तक
3. छायावादी युग - 1920 ई. से 1936 ई. तक
4. प्रगतिवाद-प्रयोगवाद - 1936 ई. से 1953 ई. तक
5. नई कविता व समकालीन कविता - 1953 ई. से अब तक

नवजागरण काल (भारतेन्दु युग)

इस काल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, यह पहली बार जन-जीवन की समस्याओं से सीधे जुड़ती है। इसमें भक्ति और श्रंगार के साथ साथ समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई। पारंपरिक विषयों की कविता का माध्यम ब्रजभाषा ही रही, लेकिन जहाँ ये कविताएँ नवजागरण के स्वर की अभिव्यक्ति करती हैं, वहाँ इनकी भाषा हिन्दी हो जाती है। कवियों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्त्व प्रधान रहा। उन्हें नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान की वकालत की। अन्य कवियों में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुधार काल (द्विवेदी युग)

हिन्दी कविता को नया रंगरूप देने में श्रीधर पाठक का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्हें 'प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि' कहा जाता है। उनकी 'एकांत योगी' और 'कश्मीर सुषमा' खड़ी बोली की सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रामनरेश द्विवेदी ने अपने 'पथिक मिलन' और 'स्वप्न' महाकाव्यों में इस धारा का विकास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' को खड़ी बोली का पहला महाकाव्य माना गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में अनेक काव्यों की रचना की। इन काव्यों में 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' और 'जयभारत' आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी 'भारत भारती' में स्वाधीनता आंदोलन की ललकार है। राष्ट्रीय प्रेम उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है। इस काल के अन्य कवियों में सियाराम शरण गुप्त,

सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी युग

कविता की दृष्टि से इस काल में एक दूसरी धारा भी थी, जो सीधे-सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', श्रीकृष्ण सरल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग की प्रमुख -तियों में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और 'आँसू', सुमित्रानंदन पंत का 'पल्लव', 'गुंजन' और 'वीणा', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'गीतिका' और 'अनामिका', तथा महादेवी वर्मा की 'यामा', 'दीपशिखा' और 'सांध्यगीत' आदि -तियाँ महत्वपूर्ण हैं। 'कामायनी' को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है। छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी काव्य में आत्मपरकता, प्र-ति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्व मानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इसी काल में मानव मन सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिन्दी भाषा में विकसित हुई।

प्रगतिवाद

वर्ष 1936 के आस-पास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। युग की मांग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकरजी ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के नाम उल्लेखनीय हैं। इस धारा में समाज के शोषित वर्ग मजदूर और किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गयी और हिन्दी कविता एक बार फिर खेतों और खलिहानों से जुड़ी गई।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकार किया गया। सन 1943 में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग किये। अत: 'तार सप्तक' को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित 'प्रतीक' में इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

5

हिन्दी के विविध रूप

हिन्दी हिंदुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हालाँकि, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में कोई भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया था। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में आमतौर पर एक सरल रूप में समझी जानेवाली भाषा है। हिन्दी का कभी-कभी नौ भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिंदी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिंदवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिंदुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिंदी के अन्य नाम हैं, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं।

लिपि

हिन्दी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे नागरी नाम से भी पुकारा जाता है। देवनागरी में 11 स्वर और 33 व्यंजन हैं और अनुस्वार, अनुनासिक एवं विसर्ग होता है तथा इसे बायें से दाईं ओर लिखा जाता है।

'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी शब्द का सम्बंध संस्कृत शब्द सिंधु से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिंधु शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू', हिंदी और फिर 'हिंद' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिंद शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिन्दईक) 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी' के 'जफरनामा'(1424) में मिलता है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने ' हिंदी एवं उर्दू का अद्वैत ' शीर्षक आलेख में हिंदी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि, ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स' को 'ह' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफगानिस्तान के बाद सिंधु नदी के इस पार हिंदुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में भी 'हिंद', 'हिंदुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसका मतलब है 'हिन्द को। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका', लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में भारत (हिंद) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी', पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी

बोलने वालों ने 'जबान-ए-हिंदी', 'हिंदी जबान' अथवा 'हिंदी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। भारत के गैर-मुस्लिम लोग तो इस क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषा-रूप को 'भाखा' नाम से पुकारते थे, 'हिंदी' नाम से नहीं।

हिन्दी एवं उर्दू

भाषाविद हिन्दी ब्लॉग एवं उर्दू को एक ही भाषा समझते है। हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर अधिकांशत: संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करती है। उर्दू, फारसी लिपि में लिखी जाती है और शब्दावली के स्तर पर उस पर फारसी और अरबी भाषाओं का प्रभाव अधिक है। व्याकरणिक रूप से उर्दू और हिन्दी में लगभग शत-प्रतिशत समानता है। केवल कुछ विशेष क्षेत्रों में शब्दावली के स्रोत (जैसा कि ऊपर लिखा गया है) में अंतर होता है। कुछ विशेष ध्वनियाँ उर्दू में अरबी और फारसी से ली गयी हैं और इसी प्रकार फारसी और अरबी की कुछ विशेष व्याकरणिक संरचना भी प्रयोग की जाती है। उर्दू और हिन्दी को खड़ी बोली की दो शैलियाँ कहा जा सकता है।

हिन्दी का मानकीकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हिन्दी और देवनागरी के मानकीकरण की दिशा में निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रयास हुये हैं –

1. हिन्दी व्याकरण का मानकीकरण।
2. वर्तनी का मानकीकरण।

शिक्षा मंत्रालय के निर्देश पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा देवनागरी का मानकीकरण

1. वैज्ञानिक ढंग से देवनागरी लिखने के लिये एकरूपता के प्रयास
2. यूनिकोड का विकास

हिन्दी की शैलियाँ

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) उच्च हिन्दी–हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द है, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई

शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (खास तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी–उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आसपास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेखता–उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू–हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ीबोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है।

हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा,

पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि। किन्तु हिन्दी के मुख्य दो भेद हैं – पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी।

शब्दावली

हिन्दी शब्दावली में मुख्यत: दो वर्ग हैं–

प्रथम वर्ग

तत्सम शब्द– ये वे शब्द हैं जिनको संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है। जैसे अग्नि, दुग्ध दन्त, मुख। (परन्तु हिन्दी में आने पर ऐसे शब्दों से विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे– संस्कृत 'नाम:' हिन्दी में केवल 'नाम' हो जाता है।

तद्भव शब्द– ये वे शब्द हैं जिनका जन्म संस्कृत या प्राकृत में हुआ था, लेकिन उनमें काफी ऐतिहासिक बदलाव आया है। जैसे– आग, दूध, दाँत, मुँह।

द्वितीय वर्ग

देशज शब्द– देशज का अर्थ है – 'जो देश में ही उपजा या बना हो। तो देशज शब्द का अर्थ हुआ जो न तो विदेशी भाषा का हो और न किसी दूसरी भाषा के शब्द से बना हो। ऐसा शब्द जो न संस्कृत का हो, न संस्कृत–शब्द का अपभ्रंश हो। ऐसा शब्द किसी प्रदेश (क्षेत्र) के लोगों द्वारा बोल–चाल में यों ही बना लिया जाता है। जैसे– खटिया, लुटिया

विदेशी शब्द– इसके अलावा हिन्दी में कई शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से भी आये हैं। इन्हें विदेशी शब्द कहते हैं।

जिस हिन्दी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द लगभग पूरी तरह से हटा कर तत्सम शब्दों को ही प्रयोग में लाया जाता है, उसे 'शुद्ध हिन्दी' या 'मानकीकृत हिन्दी' कहते हैं।

हिन्दी और कम्प्यूटर

कम्प्यूटर और इन्टरनेट ने पिछले वर्षों में विश्व में सूचना क्रांति ला दी है। आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर (तथा कम्प्यूटर सदृश अन्य उपकरणों) से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती। कम्प्यूटर के विकास के आरम्भिक काल में अंग्रेजी को छोड़कर विश्व की अन्य भाषाओं के कम्प्यूटर पर प्रयोग की दिशा

में बहुत कम ध्यान दिया गया जिससे कारण सामान्य लोगों में यह गलत धारणा फैल गयी कि कम्प्यूटर अंग्रेजी के सिवा किसी दूसरी भाषा (लिपि) में काम ही नहीं कर सकता। किन्तु यूनिकोड के पदार्पण के बाद स्थिति बहुत तेजी से बदल गयी। 19 अगस्त 2009 में गूगल ने कहा की हर 5 वर्षों में हिन्दी कि सामग्री में 94% बढ़ोतरी हो रही है।

हिन्दी की इंटरनेट पर अच्छी उपस्थिति है। गूगल जैसे सर्च इंजन हिन्दी को प्राथमिक भारतीय भाषा के रूप में पहचानते हैं। इसके साथ ही अब अन्य भाषा के चित्र में लिखे शब्दों का भी अनुवाद हिन्दी में किया जा सकता है। फरवरी 2018 में एक सर्वेक्षण के हवाले से खबर आयी कि इंटरनेट की दुनिया में हिंदी ने भारतीय उपभोक्ताओं के बीच अंग्रेजी को पछाड़ दिया है। यूथ4वर्क की इस सर्वेक्षण रिपोर्ट ने इस आशा को सही साबित किया है कि, जैसे-जैसे इंटरनेट का प्रसार छोटे शहरों की ओर बढ़ेगा, हिंदी और भारतीय भाषाओं की दुनिया का विस्तार होता जाएगा।

इस समय हिन्दी में सजाल, चिट्ठे, विपत्र, गपशप, खोज, सरल मोबाइल सन्देश तथा अन्य हिन्दी सामग्री उपलब्ध हैं। इस समय अन्तरजाल पर हिन्दी में संगणन के संसाधनों की भी भरमार है और नित नये कम्प्यूटिंग उपकरण आते जा रहे हैं। लोगों में इनके बारे में जानकारी देकर जागरूकता पैदा करने की जरूरत है ताकि अधिकाधिक लोग कम्प्यूटर पर हिन्दी का प्रयोग करते हुए अपना, हिन्दी का और पूरे हिन्दी समाज का विकास करें। शब्दनगरी जैसी नयी सेवाओं का प्रयोग करके लोग अच्छे हिन्दी साहित्य का लाभ अब इंटरनेट पर भी उठा सकते हैं।

हिन्दी और जनसंचार

हिन्दी सिनेमा का उल्लेख किये बिना हिन्दी का कोई भी लेख अधूरा होगा। मुम्बई में स्थित 'बॉलीवुड' हिन्दी फिल्म उद्योग पर भारत के करोड़ो लोगों की धड़कनें टिकी रहती हैं। हर चलचित्र में कई गाने होते हैं। हिन्दी और उर्दू (खड़ीबोली) के साथ साथ अवधी, बम्बइया हिन्दी, भोजपुरी, राजस्थानी जैसी बोलियाँ भी संवाद और गानों में उपयुक्त होती हैं। प्यार, देशभक्ति, परिवार, अपराध, भय, इत्यादि मुख्य विषय होते हैं। अधिकतर गाने उर्दू शायरी पर आधारित होते हैं।

अब मोबाइल कंपनियां ऐसे हैंडसेट बना रही हैं, जो हिंदी और भारतीय भाषाओं को सपोर्ट करते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां हिंदी जानने वाले कर्मचारियों को वरीयता दे रही हैं। हॉलीवुड की फिल्में हिंदी में डब हो रही हैं और हिंदी फिल्में देश के बाहर देश से अधिक कमाई कर रही हैं। हिंदी, विज्ञापन उद्योग की पसंदीदा भाषा बनती जा रही है। गूगल, ट्रांसलेशन, ट्रांस्लिटरेशन, फोनेटिक टूल्स, गूगल असिस्टैन्ट आदि के क्षेत्र में नई नई रिसर्च कर अपनी सेवाओं को बेहतर कर रहा है। हिंदी और भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का डिजिटलीकरण जारी है।

फेसबुक और व्हाट्सएप हिंदी और भारतीय भाषाओं के साथ तालमेल बिठा रहे हैं। सोशल मीडिया ने हिंदी में लेखन और पत्रकारिता के नए युग का सूत्रपात किया है और कई जनान्दोलनों को जन्म देने और चुनाव जिताने-हराने में उल्लेखनीय और हैरान करने वाली भूमिका निभाई है। सितम्बर 2018 में प्रकाशित हुई एक अमेरिकी रपट के अनुसार हिन्दी में ट्वीट करना अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। रपट में कहा गया है कि, पिछले वर्ष सबसे अधिक पुनः ट्वीट किए गये 15 सन्देशों में से 11 हिन्दी के थे। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का बाजार इतना बड़ा है कि, अनेक कम्पनियाँ अपने उत्पाद और वेबसाइटें हिन्दी और स्थानीय भाषाओं में ला रहीं हैं।

हिन्दी का वैश्विक प्रसार

सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1997 में 'सैन्सस ऑफ इंडिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषा से अधिक है, किन्तु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है, किन्तु हिन्दी भाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

विश्वभाषा बनने के सभी गुण हिन्दी में विद्यमान हैं। बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। हिंदी एशिया के व्यापारिक जगत् में धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिंबित कर भविष्य की अग्रणी भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की मांग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएं लगभग नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ-एम' सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिन्दी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है उसमें हिन्दी भी एक है। इसी प्रकार 'कोर लैंग्वेजेज' नामक साइट ने 'दस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषाओं' में हिन्दी को स्थान दिया था। के-इण्टरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिये सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त नौ भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है।

हिन्दी का एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गयी थी। संयुक्त राष्ट्र रेडियो अपना प्रसारण हिन्दी में भी करना आरम्भ किया है। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाये जाने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र ने साप्ताहिक हिन्दी समाचार बुलेटिन आरम्भ किया है।

6

हिन्दी : क्षेत्र एवं विकास

किसी भी भाषा-क्षेत्र में एक ओर भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के आधार पर अनेक भेद होते हैं (यथा—बोली और भाषा) तो दूसरी ओर सामाजिक भिन्नताओं के आधार पर भाषा की वर्गगत बोलियाँ होती हैं। भाषा-व्यवहार अथवा भाषा-प्रकार्य की दृष्टि से भी भाषा के अनेक भेद होते हैं। (यथा- मानक भाषा, उपमानक भाषा अथवा शिष्टेतर भाषा, अपभाषा, विशिष्ट वाग्व्यवहार की शैलियाँ, साहित्यिक भाषा आदि)। विशिष्ट प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्रयोजनमूलक भाषा के अनेक रूप होते हैं जिनकी चर्चा लेखक ने प्रकार्यात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में की है।

जब भिन्न भाषाओं के बोलने वाले एक ही क्षेत्र में निवास करने लगते हैं तो भाषाओं के संसर्ग से विशिष्ट भाषा प्रकार विकसित हो जाते हैं। (यथा -पिजिन, क्रिओल)। भाषा के असामान्य रूपों के उदाहरण गुप्त भाषा एवं -त्रिम भाषा आदि हैं। इस आलेख का उद्देश्य भाषा-क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट करना तथा हिन्दी भाषा-क्षेत्र के विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के सम्बंध में विवेचना करना है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस सम्बंध में न केवल सामान्य व्यक्ति के मन में अनेक भ्रामक धारणाएँ बनी हुई हैं प्रत्युत हिन्दी भाषा के कतिपय अध्येताओं, विद्वानों तथा प्रतिष्ठित आलोचकों का मन भी तत्सम्बंधित भ्रांतियों से मुक्त नहीं है। हिन्दी कभी अपने भाषा-क्षेत्र की सीमाओं में नहीं सिमटी। यह हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और द्वारका से लेकर कटक तक

भारतीय लोक चेतना की संवाहिका रही। सम्पर्क भाषा हिन्दी की एक अन्य विशिष्टता यह रही कि यह किसी बँधे बँधाए मानक रूप की सीमाओं में नहीं जकड़ी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, केवल बोलचाल की भाषा में ही यह प्रवृत्ति नहीं है, साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

हिन्दी साहित्य की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा रही है। हिन्दी की इस समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को जानना बहुत जरूरी है तथा इसे आत्मसात करना भी बहुत जरूरी है तभी हिन्दी क्षेत्र की अवधारणा को जाना जा सकता है और जो ताकतें हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र रच रही हैं तथा हिन्दी की ताकत को समाप्त करने के षड़यंत्र कर रही हैं उन ताकतों के षड़यंत्रों को बेनकाब किया जा सकता है तथा उनके कुचक्रों को ध्वस्त किया जा सकता है।

वर्तमान में हम हिन्दी भाषा के इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हुए हैं। आज बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। आज हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के जो प्रयत्न हो रहे हैं सबसे पहले उन्हे जानना और पहचानना जरूरी है और इसके बाद उनका प्रतिकार करने की जरूरत है। यदि आज हम इससे चूक गए तो इसके भयंकर परिणाम होंगे। मुझे सन् 1993 के एक प्रसंग का स्मरण आ रहा है। मध्य प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री को मध्य प्रदेश में 'मालवी भाषा शोध संस्थान' खोलने तथा उसके लिए अनुदान का प्रस्ताव भेजा था। उस समय भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह थे जिनके प्रस्तावक से निकट के सम्बंध थे। मंत्रालय ने उक्त प्रस्ताव केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक होने के नाते लेखक के पास टिप्पणी देने के लिए भेजा। लेखक ने सोच समझकर टिप्पणी लिखा– "भारत सरकार को पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है"। मुझे पता चला कि उक्त टिप्पणी के बाद प्रस्ताव को ठंढे बस्ते में डाल दिया गया।

एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण-भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग हिन्दी के विरुद्ध साजिश रच रहे हैं। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान

भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले, हिन्दी की रोजी, खाने रोटी वाले हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि, हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं जैसे वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमादा हैं।

सन् 2009 में, लेखक ने नामवर सिंह का यह वक्तव्य पढ़ा

"हिंदी समूचे देश की भाषा नहीं है वरन वह तो अब एक प्रदेश की भाषा भी नहीं है। उत्तरप्रदेश, बिहार जैसे राज्यों की भाषा भी हिंदी नहीं है। वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ यथा अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि हैं"। इसको पढ़कर मैने नामवर सिंह के इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज कराने तथा हिन्दी के विद्वानों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लेख लिखा। हिन्दी के प्रेमियों से लेखक का यह अनुरोध है कि, इस लेख का अध्ययन करने की अनुकंपा करें जिससे हिन्दी के कथित बड़े विद्वान एवं आलोचक डॉ. नामवर सिंह जैसे लोगों के हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ डालने के मंसूबे ध्वस्त हो सकें तथा ऐसी ताकतें बेनकाब हो सकें।

भाषा क्षेत्र

एक भाषा का जन-समुदाय अपनी भाषा के विविध भेदों एवं रूपों के माध्यम से एक भाषिक इकाई का निर्माण करता है। विविध भाषिक भेदों के मध्य सम्भाषण की सम्भाव्यता से भाषिक एकता का निर्माण होता है। एक भाषा के समस्त भाषिक-रूप जिस क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं उसे उस भाषा का 'भाषा-क्षेत्र' कहते हैं। प्रत्येक 'भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, भाषा की भिन्नताओं का आधार प्रायः वर्णगत एवं धर्मगत नहीं होता। एक वर्ण या एक धर्म के व्यक्ति यदि भिन्न भाषा क्षेत्रों में निवास करते हैं तो वे भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं। हिन्दू मुसलमान आदि सभी

धर्मावलम्बी तमिलनाडु में तमिल बोलते हैं तथा केरल में मलयालम। इसके विपरीत यदि दो भिन्न वर्णों या दो धर्मा के व्यक्ति एक भाषा क्षेत्र में रहते हैं तो उनके एक ही भाषा को बोलने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व आदि सभी वर्णों के व्यक्ति हिन्दी का प्रयोग करते हैं। यह बात अवश्य है कि, विशिष्ट स्थितियों में वर्ण या धर्म के आधार पर भाषा में बोलीगत अथवा शैलगत प्रभेद हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसी भी स्थितियाँ विकसित हो जाती हैं जिनके कारण एक भाषा के दो रूपों को दो भिन्न भाषाएँ समझा जाने लगता है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, हम यह किस प्रकार निर्धारित करें कि उच्चारण के कोई दो रूप एक ही भाषा के भिन्न रूप हैं अथवा अलग-अलग भाषाएँ हैं ? इसका एक प्रमुख कारण यह है कि, भाषिक भिन्नताएँ सापेक्षिक होती हैं तथा दो भिन्न भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई सीधी एवं सरल विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। यही कारण है कि, भाषिक-भूगोल पर कार्य करते समय बहुधा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत का भाषा-सर्वेक्षण करते समय इसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव ग्रियर्सन को हुआ था। उन्होंने लिखा है कि, '' सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह निश्चित करने में कठिनाई पड़ी कि वास्तव में एक कथित भाषा स्वतंत्र भाषा है, अथवा अन्य किसी भाषा की बोली है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निर्णय देना जिसे सब लोग स्वीकार कर लेंगे, कठिन है। भाषा और बोली में प्रायः वही सम्बन्ध है, जो पहाड़ तथा पहाड़ी में है। यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि, एवरेस्ट पहाड़ है और हालबर्न एक पहाड़ी, किन्तु इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना कठिन है।-- - - सच तो यह है कि, दो बोलियों अथवा भाषाओं में भेदीकरण केवल पारस्परिक वार्ता सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है।

व्यावहारिक दृष्टि से जिस क्षेत्र में भाषा के विभिन्न भेदों में पारस्परिक बोधगम्यता होती है, वह क्षेत्र उस भाषा के विभिन्न भेदों का 'भाषा-क्षेत्र' कहलाता है। भिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति परस्पर विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार जब एक व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से दूसरे भाषा-भाषी को भाषा के स्तर पर अपने विचारों, भावनाओं, कल्पनाओं, संवेदनाओं का बोध नहीं करा पाता, तब ऐसी स्थिति में उन दो व्यक्तियों के भाषा रूपों को

अलग-अलग भाषाओं के नाम से अभिहित किया जाता है। यह बात इस तथ्य से समझा जा सकता है कि, जब कोई ऐसा तमिल-भाषी व्यक्ति जो पहले से हिन्दी नहीं जानता, हिन्दी-भाषी व्यक्ति से बात करता है, तो वह हिन्दी-भाषी व्यक्ति द्वारा कही गई बात को भाषा के माध्यम से नहीं समझ पाता, भले ही वह कही गई बात का आशय संकेतो, मुख मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं के माध्यम से समझ जाए। इसके विपरीत यदि कन्नौजी बोलने वाला व्यक्ति अवधी बोलने वाले से बातें करता है, तो दोनों को विचारों के आदान-प्रदान करने में कठिनाइयाँ तो होती हैं, किन्तु फिर भी वे किसी न किसी रूप में विचारों का आदान-प्रदान कर लेते हैं।

भाषा रूपों की भिन्नता अथवा एकता का यह व्यावहारिक आधार है।भिन्न भाषा रूपों को एक ही भाषा के रूप में अथवा अलग अलग भाषाओं के रूप में मान्यता दिलाने में ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्–तिक, मनोवैज्ञानिक एवं उन भाषिक रूपों की संरचना एवं व्यवस्था आदि कारण एवं तथ्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, तथा कभी-कभी 'पारस्परिक बोधगम्यता' अथवा 'एक तरफा बोधगम्यता' के व्यावहारिक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक निर्णायक हो जाते हैं। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।ऐतिहासिक कारणों से वैनिशन तथा सिसिली को इटाली भाषा की बोलियाँ माना जाता है, यद्यपि इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। इसी प्रकार लैपिश को एक ही भाषा माना जाता है। इसके अन्तर्गत परस्पर अबोधगम्य भाषिक रूप समाहित हैं। इसके विपरीत राजनैतिक कारणों से डेनिश, नार्वेजियन एवं स्वेडिश को अलग-अलग भाषाएँ माना जाता है। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत वैनिशन तथा सिसिली के पारस्परिक बोधगम्यता के प्रतिशत से कम नहीं है।

भारतवर्ष के संदर्भ में हिन्दी भाषा के पश्चिमी वर्ग की उप-भाषाओं तथा बिहारी वर्ग की उप-भाषाओं के मध्य बोधगम्यता का प्रतिशत कम है। 'बिहारी वर्ग' की उप-भाषाओं पर कार्य करने वाले भाषा-वैज्ञानिकों ने उनमें संरचनात्मक भिन्नताएँ भी पर्याप्त मानी हैं। इतना होने पर भी सांस्–तिक, राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक कारणों से भोजपुरी एवं मगही बोलने वाले अपने को हिन्दी भाषा-भाषी मानते हैं। ये भाषिक रूप हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित हैं। इसके विपरीत यद्यपि असमिया एक बांग्ला में पारस्परिक बोधगम्यता एवं संरचनात्मक साम्यता का प्रतिशत कम नहीं है तथापि ऐतिहासिक, सांस्–तिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से इनके बोलने वाले इन भाषा रूपों को भिन्न भाषाएँ मानते

हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों का मत है कि, भाषा-क्षेत्र उस क्षेत्र के प्रयोक्ताओं की मानसिक अवधारणा है। भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों के प्रयोक्ता अपने अपने भाषिक-रूप की पहचान उस भाषा के रूप में करते हैं। विशेष रूप से जब वे किसी भिन्न भाषा-भाषी-क्षेत्र में रहते हैं तो वे अपनी अस्मिता की पहचान उस भाषा के प्रयोक्ता के रूप में करते हैं।

यदि दो भाषा-क्षेत्रों के मध्य कोई पर्वत या सागर जैसी बड़ी प्रा-तिक सीमा नहीं होती अथवा उन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के अलग अलग क्षेत्रों में उनके सामाजिक सम्पर्क को बाधित करने वाली राजनैतिक सीमा नहीं होती तो उन भाषा क्षेत्रों के मध्य कोई निश्चित एवं सरल रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक दो भाषाओं के मध्य प्राय: ऐसा 'क्षेत्र' होता है जिसमें निवास करने वाले व्यक्ति उन दोनों भाषाओं को किसी न किसी रूप में समझ लेते हैं। ऐसे क्षेत्र को उन भाषाओं का 'संक्रमण-क्षेत्र कहते हैं।

जिस प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी के बीच किसी एक वर्ष की 'काल रेखा' निर्धारित नहीं की जा सकती, फिर भी एक युग 'अपभ्रंश-युग' कहलाता है और दूसरा हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि 'नव्यतर भारतीय आर्य भाषाओं का युग' कहलाता है उसी प्रकार यद्यपि हिन्दी और मराठी के बीच (अथवा अन्य किन्हीं दो भाषाओं के बीच) हम किलोमीटर या मील की कोई रेखा नहीं खींच सकते फिर भी एक क्षेत्र हिन्दी का कहलाता है और दूसरा मराठी का। ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश और हिन्दी के बीच एक 'सन्धि-युग' है, जो इन दो भाषाओं के काल-निर्धारण का काम करता है। संकालिक दृष्टि से दो भाषाओं के बीच 'संक्रमण-क्षेत्र' होता है, जो उन भाषाओं के क्षेत्र को निर्धारित करता है।

प्रत्येक भाषा-क्षेत्र में भाषिक भेद होते हैं। हम किसी ऐसे भाषा क्षेत्र की कल्पना नहीं कर सकते जिसके समस्त भाषा-भाषी भाषा के एक ही रूप के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हों। यदि हम वर्तमानकाल में किसी ऐसे भाषा-क्षेत्र का निर्माण कर भी लें जिसकी भाषा में एक ही बोली हो तब भी कालान्तर में उस क्षेत्र में विभिन्नताएँ विकसित हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि, किसी भाषा का विकास सम्पूर्ण क्षेत्र में समरूप नहीं होता। परिवर्तन की गति क्षेत्र के अलग-अलग भागों में भिन्न होती है। विश्व के भाषा-इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण प्राप्त नहीं है जिसमें कोई भाषा अपने सम्पूर्ण क्षेत्र में समान रूप से परिवर्तित हुई हो।

भाषा और बोली के युग्म पर विचार करना सामान्य धारणा है। सामान्य व्यक्ति भाषा को विकसित और बोली को अविकसित मानता है। सामान्य व्यक्ति भाषा को शिक्षित, शिष्ट, विद्वान एवं सुजान प्रयोक्ताओं से जोड़ता है और बोली को अशिक्षित, अशिष्ट, मूर्ख एवं गँवार प्रयोक्ताओं से जोड़ता है। भाषाविज्ञान इस धारणा को अतार्किक और अवैज्ञानिक मानता है। भाषाविज्ञान भाषा को निम्न रूप से परिभाषित करता है – 'भाषा अपने भाषा-क्षेत्र में बोली जाने वाली समस्त बोलियों की समष्टि का नाम है।'

हम आगे भाषा-क्षेत्र के समस्त सम्भावित भेद-प्रभेदों की विवेचना करेंगे।

व्यक्तिगत बोलियाँ

एक भाषा क्षेत्र में 'एकत्व' की दृष्टि से एक ही भाषा होती है, किन्तु 'भिन्नत्व' की दृष्टि से उस भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले निवास करते हैं उसमें उतनी ही भिन्न व्यक्ति-बोलियाँ होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति भाषा के द्वारा समाज के व्यक्तियों से सम्प्रेषण-व्यवहार करता है। भाषा के द्वारा अपने निजी व्यक्तित्त्व का विकास एवं विचार की अभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक व्यक्ति के निजी व्यक्तित्त्व का प्रभाव उसके अभिव्यक्तिकरण व्यवहार पर भी पड़ता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अनुभवों, विचारों, आचरण पद्धतियों, जीवन व्यवहारों एवं कार्यकलापों की निजी विशेषताएँ होती हैं। समाज के सदस्यों के व्यक्तित्त्व की भेदक भिन्नताओं का प्रभाव उनके व्यक्तिगत-भाषा-रूपों पर पड़ता है और इस कारण प्रत्येक व्यक्ति बोली में निजी भिन्नताएँ अवश्य होती हैं। व्यक्ति बोली के धरातल पर एक व्यक्ति की जिस प्रकार बोलता है, ठीक उसी प्रकार दूसरा कोई व्यक्ति नहीं बोलता। यही कारण है कि, हम किसी व्यक्ति भले ही न देखें मगर मात्र उसकी आवाज को सुनकर उसको पहचान लेते हैं।

प्रत्येक उच्चारित एवं व्यवहृत भाषा की बोलियाँ होती हैं। किसी भाषा में बोलियों की संख्या दो या तीन होती है तो किसी में बीस-तीस भी होती है। कुछ भाषाओं में बोलियों का अन्तर केवल कुछ विशिष्ट ध्वनियों के उच्चारण की भिन्नताओं तथा बोलने के लहजे मात्र का होता है। जबकि कुछ भाषाओं में बोलियों की भिन्नताएँ भाषा के समस्त स्तरों पर प्राप्त हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, बोलियों में ध्वन्यात्मक, ध्वनिग्रामिक, रूपग्रामिक, वाक्यविन्यासीय, शब्दकोषीय एवं अर्थ सभी स्तरों पर अन्तर हो सकते हैं। कहीं-कहीं ये भिन्नताएँ इतनी अधिक

होती हैं कि, एक सामान्य व्यक्ति यह बता देता है कि, अमुक भाषिक रूप का बोलने वाला व्यक्ति अमुक बोली क्षेत्र का है।

किसी-किसी भाषा में क्षेत्रगत भिन्नताएँ इतनी व्यापक होती हैं तथा उन भिन्न भाषिक-रूपों के क्षेत्र इतने विस्तृत होते हैं कि, उन्हें सामान्यतः भाषाएँ माना जा सकता है। इसका उदाहरण चीन देश की मंदारिन भाषा है, जिसकी बोलियों के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हैं तथा उनमें से बहुत-सी परस्पर अबोधगम्य भी हैं। जब तक यूगोस्लाविया एक देश था तब तक क्रोएशियाई और सर्बियाई को एक भाषा की दो बोलियाँ माना जाता था। यूगोस्लाव के विघटन के बाद से इन्हें भिन्न भाषाएँ माना जाने लगा है। ये उदाहरण इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि, पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धांत की अपेक्षा कभी-कभी सांस्-तिक एवं राजनैतिक कारण अधिक निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

हिन्दी भाषा क्षेत्र में भी 'राजस्थानी' एवं 'भोजपुरी' के क्षेत्र एवं उनके बोलने वालों की संख्या संसार की बहुत सी भाषाओं के क्षेत्र एवं बोलने वालों की संख्या से अधिक है। 'हिन्दी भाषा-क्षेत्र' में, सामाजिक-सांस्-तिक समन्वय के प्रतिमान के रूप में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी सामाजिक जीवन में परस्पर आश्रित सहसम्बन्धों की स्थापना करती है। सम्पूर्ण हिन्दी भाषा क्षेत्र में मानक अथवा व्यावहारिक हिन्दी के उच्च प्रकार्यात्मक सामाजिक मूल्य के कारण ये भाषिक रूप 'हिन्दी भाषा' के अन्तर्गत माने जाते हैं।

भाषा-क्षेत्र की क्षेत्रगत भिन्नताओं के सम्भावित स्तर

अभी तक हमने किसी भाषा-क्षेत्र में तीन भाषिक स्तरों की विवेचना की है--

(1) व्यक्ति-बोली
(2) बोली
(3) भाषा।

व्यक्ति-बोलियों के समूह को 'बोली' तथा बोलियों के समूह को 'भाषा' कहा गया है। जिस प्रकार किसी भाषा के व्याकरण में शब्द एवं वाक्य के बीच अनेक व्याकरणिक स्तर हो सकते हैं उसी प्रकार भाषा एवं बोली एवं व्यक्ति-बोली के बीच अनेक भाषा स्तर हो सकते हैं। इन अनेक स्तरों के निम्न में से कोई एक अथवा अनेक आधार हो सकते हैं–

i. भाषा क्षेत्र का विस्तार एवं फैलाव
ii. उस भाषा क्षेत्र के विविध उपक्षेत्रों की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्–तिक, राजनैतिक स्थितियाँ
iii. भाषा–क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक और भावात्मक सम्बन्ध

उपभाषा

यदि किसी भाषा में बोलियों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा उस भाषा का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो पारस्परिक बोधगम्यता अथवा अन्य भाषेतर कारणों से बोलियों के वर्ग बन जाते हैं। इनको 'उप भाषा' के स्तर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

उपबोली

यदि एक बोली का क्षेत्र बहुत विशाल होता है तो उसमें क्षेत्रगत अथवा वर्गगत भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इनको बोली एवं व्यक्ति–बोली के बीच 'उपबोली' का स्तर माना जाता है। उपबोली को कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने पेटवा, जनपदीय बोली अथवा स्थान–विशेष की बोली के नाम से पुकारना अधिक संगत माना है।

इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि, किसी भाषा क्षेत्र में भाषा की संरचक उपभाषाएँ, उपभाषा के संरचक बोलियाँ, बोली के संरचक उपबोलियाँ तथा उपबोली के संरचक व्यक्ति बोलियाँ हो सकती हैं। व्यक्ति–बोली से लेकर भाषा तक अनेक वर्गीकृत स्तरों का अधिक्रम हो सकता है।

हिन्दी भाषा–क्षेत्र के क्षेत्रीय भाषिक–रूप

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि, अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, ब्रज, कन्नौजी, खड़ी बोली को बोलियाँ माने या उपभाषाएँ?

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि, इनके क्षेत्र तथा इनके बोलने वालों की संख्या काफी विशाल है तथा इनमें बहुत अधिक भिन्नताएँ हैं जिनके कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है। उदाहरण के रूप में यदि बुन्देली को उपभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है तो पंवारी, लोधान्ती, खटोला, भदावरी, सहेरिया तथा 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' आदि रूपों को बुन्देली उपभाषा की

बोलियाँ माना जा सकता है। इन बोलियों में एक या एक से अधिक बोलियों की अपनी उपबोलियाँ हैं। उदाहरण के रूप में बुन्देली उपभाषा की 'छिन्दवाड़ा बुन्देली' बोली की पोवारी, गाओंली, राघोबंसी, किरारी आदि उपबोलियाँ है। इस प्रकार बुन्देली के संदर्भ में व्यक्तिगत बोली, उपबोली, बोली, एवं उपभाषा रूप प्राप्त हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, जिस प्रकार बुन्देली में बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ मिलती हैं उसी प्रकार कन्नौजी की बोलियाँ एवं उनकी उपबोलियाँ अथवा हरियाणवी की बोलियाँ एवं उपबोलियाँ प्राप्त नहीं होती। किन्तु हरियाणवी एवं कन्नौजी को भी वही दर्जा देना पड़ेगा जो हम बुन्देली को देंगे। यदि हम बुन्देली को हिन्दी की एक उपभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं तो कन्नौजी एवं हरियाणवी भी हिन्दी की उपभाषाएँ हैं। इस दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्रगत रूपों के स्तर वर्गीकरण में कहीं उपभाषा एवं बोली के अलग-अलग स्तर हैं तथा कहीं उपभाषा एवं बोली का एक ही स्तर हैं। यह बहुत कुछ इसी प्रकार है जिस प्रकार मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों में वाक्य एवं उपवाक्य के स्तर अलग-अलग होते हैं, किन्तु सरल वाक्य में एक ही उपवाक्य होता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि, क्या उपभाषा एवं भाषा के बीच भी कोई स्तर स्थापित किया जाना चाहिए अथवा नहीं।इसका कारण यह है कि, जिन भाषा रूपों को हमने उपभाषाएँ कहा है उन उपभाषाओं को ग्रियर्सन ने भाषा-सर्वेक्षण में ऐतिहासिक सम्बंधों के आधार पर 5 वर्गों में बाँटा है तथा प्रत्येक वर्ग में एकाधिक उपभाषाओं को समाहित किया है। ये पाँच वर्ग निम्नलिखित है–

(1) पश्चिमी हिन्दी,
(2) पूर्वी हिन्दी,
(3) राजस्थानी,
(4) बिहारी,
(5) पहाड़ी।

इस सम्बंध में संकालिक भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं है। जो विद्वान ग्रियर्सन के ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से इन वर्गों को कोई नाम देना ही चाहते हैं तो वे हिन्दी के सन्दर्भ में उपभाषा एवं भाषा के बीच उपभाषा की समूह गत इकाइयों को अन्य किसी नाम के अभाव में 'उपभाषावर्ग' के नाम से पुकार सकते हैं।

इस प्रकार जिस भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा होता है वहाँ भाषा के केवल 3 क्षेत्रगत स्तर होते हैं–

1. व्यक्ति बोली
2. बोली
3. भाषा

हिन्दी जैसे विस्तृत भाषा-क्षेत्र में निम्नलिखित क्षेत्रगत स्तर हो सकते हैं–

1. व्यक्ति बोली
2. उपबोली
3. बोली
4. उपभाषा
5. उपभाषावर्ग
6. भाषा

मैथिली भाषा

मैथिली को अलग भाषा का दर्जा दे दिया गया है हॉलाकि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में अभी भी मैथिली कवि विद्यापति पढ़ाए जाते हैं तथा जब नेपाल में मैथिली आदि भाषिक रूपों के बोलने वाले मधेसी लोगों पर दमनात्मक कार्रवाई होती है तो वे अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार मुम्बई में रहने वाले भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अवधी आदि बोलने वाले अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में करते हैं।

छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी

जबसे मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी को अलग भाषाओं का दर्जा मिला है तब से भोजपुरी को भी अलग भाषा का दर्जा दिए जाने की माँग प्रबल हो गई है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का सिलसिला मैथिली एवं छत्तीसगढ़ी से आरम्भ हो गया है। मैथिली पर टिप्पण लिखा जा चुका है। छत्तीसगढ़ी एवं भोजपुरी के सम्बंध में कुछ विचार प्रस्तुत हैं। जब तक छत्तीसगढ़ मध्य प्रदेश का हिस्सा था तब तक छत्तीसगढ़ी को हिन्दी की बोली माना जाता था। रायपुर विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. रमेश चन्द्र महरोत्र का सन् 1976 में एक आलेख रायपुर से भाषिकी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें हिन्दी की 22 बोलियों के अंतर्गत छत्तीसगढ़ी समाहित है।

बहुत से विद्वान यह तर्क देते हैं कि, डॉ. उदय नारायण तिवारी ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' शीर्षक ग्रंथ में 'भोजपुरी' को भाषा माना है। इस सम्बंध में, लेखक विद्वानों को इस तथ्य से अवगत करना चाहता है कि, हिन्दी में प्रकाशित उक्त ग्रंथ उनके डी. लिट्. उपाधि के लिए स्वीकृत अंग्रेजी भाषा में लिखे गए शोध-प्रबंध का हिन्दी रूपांतर है। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने कलकत्ता में सन् 1941 ईस्वी में पहले 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' में एम. ए. की परीक्षा पास की तथा सन् 1942 ईस्वी में डी. लिट्. उपाधि के लिए शोध-प्रबंध पूरा करके इलाहाबाद लौट आए तथा उसे परीक्षण के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जमा कर दिया। आपने अपना शोध-प्रबंध अंग्रेजी भाषा में डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के निर्देशन में सम्पन्न किया तथा डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त होने के बाद इसका प्रकाशन 'एशियाटिक सोसाइटी' से हुआ। इस शोध-प्रबंध का शीर्षक है - 'ए डाइलेक्ट ऑफ भोजपुरी'। डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस तथ्य को स्वयं अपने एक लेख अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी

"श्रीमद्जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत "विश्व शान्ति एवं अहिंसा" विषय पर व्याख्यान देने सन् 1987 ईस्वी में लेखक का कलकत्ता (कोलकोता) जाना हुआ था। वहाँ श्री सरदारमल जी कांकरिया के निवास पर लेखक का संवाद राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए आन्दोलन चलाने वाले तथा राजस्थानी में "धरती धौरां री" एवं "पातल और पीथल" जैसी -तियों की रचना करने वाले कन्हैया लाल सेठिया जी से हुआ। उनका आग्रह था कि राजस्थानी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिलना चाहिए। लेखक ने उनसे अपने आग्रह पर पुनर्विचार करने की कामना व्यक्त की और मुख्यत: निम्न मुद्दों पर विचार करने का अनुरोध किया–

(1) ग्रियर्सन ने ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। स्वाधीनता आन्दोलन में हमारे राष्ट्रीय नेताओं के कारण हिन्दी का जितना प्रचार प्रसार हुआ उसके कारण हमें ग्रियर्सन की दृष्टि से नहीं अपितु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषाविदों की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

(2) राजस्थानी भाषा जैसी कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। राजस्थान में निम्न क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं–

1. मारवाड़ी
2. मेवाती
3. जयपुरी
4. मालवी (राजस्थान के साथ-साथ मध्य-प्रदेश में भी)

राजस्थानी जैसी स्वतंत्र भाषा नहीं है। इन विविध भाषिक रूपों को हिन्दी के रूप मानने में क्या आपत्ति हो सकती है।

(3) यदि आप राजस्थानी का मतलब केवल मारवाड़ी से लेंगे तो क्या मेवाती, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती, शेखावाटी आदि अन्य भाषिक रूपों के बोलने वाले अपने अपने भाषिक रूपों के लिए आवाज नहीं उठायेंगे।

(4) भारत की भाषिक परम्परा रही है कि, एक भाषा के हजारों भूरि भेद माने गए हैं मगर अंतरक्षेत्रीय सम्पर्क के लिए एक भाषा की मान्यता रही है।

(5) हिन्दी साहित्य की संश्लिष्ट परम्परा रही है। इसी कारण हिन्दी साहित्य के अंतर्गत रास एवं रासो साहित्य की रचनाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

(6) राजस्थान की पृष्ठभूमि पर आधारित हिन्दी कथा साहित्य एवं हिन्दी फिल्मों में जिस राजस्थानी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग होता है उसे हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग का रहने वाला समझ लेता है।

(7) मारवाड़ी लोग व्यापार के कारण भारत के प्रत्येक राज्य में निवास करते हैं तथा अपनी पहचान हिन्दी भाषी के रूप में करते हैं। यदि आप राजस्थानी को हिन्दी से अलग मान्यता दिलाने का प्रयास करेंगे तो राजस्थान के बाहर रहने वाले मारवाड़ी व्यापारियों के हित प्रभावित हो सकते हैं।

(8) भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व एवं महत्व को अंग्रेजी से खतरा है। संसार में अंग्रेजी भाषियों की जितनी संख्या है उससे अधिक संख्या केवल हिन्दी भाषियों की है। यदि हिन्दी के उपभाषिक रूपों को हिन्दी से अलग मान लिया जाएगा तो भारत की कोई भाषा अंग्रेजी से टक्कर नहीं ले सकेगी और धीरे धीरे भारतीय भाषाओं के अस्तित्त्व का संकट पैदा हो जाएगा।

पहाड़ी

डॉ. सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'पहाड़ी' समुदाय के अन्तर्गत बोले जाने वाले भाषिक रूपों को तीन शाखाओं में बाँटा–

(अ) पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली
(आ) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी
(इ) पश्चिमी पहाड़ी।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि, हिन्ब्दी भाषा के अन्तर्गत मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी की उत्तराखंड में बोली जाने वाली 1. कुमाऊँनी 2. गढ़वाली तथा पश्चिमी पहाड़ी की हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिन्हें आम बोलचाल में ' पहाड़ी ' नाम से पुकारा जाता है।

नामकरण करना अथवा नाम रखना

(क) व्यक्ति का नामकरण–घर में जब किसी शिशु का जन्म होता है, वह भगवान के घर से कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। उसका `नामकरण' होता है। उसका हम नाम रखते हैं। उसके लिए नाम बनाते नहीं हैं। उसके लिए नाम गढ़ते नहीं हैं। जो नाम रखते हैं, वह समाज में उस शिशु के लिए प्रचलित हो जाता है। लोक उसे उसके रखे नाम से पहचानता है। नाम व्यक्तित्त्व का अंग हो जाता है। नाम व्यक्ति से जुड़ जाता है।

(ख) नई व्यवस्था, नई वस्तु, नए आविष्कार के लिए नामकरण–भारत ने गुलामी की जंजीरों को काटकर स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वाधीन होने के पहले से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने स्वतंत्र भारत के संविधान के लिए 'संविधान सभो का गठन कर दिया था। हमारे देश की संविधान सभा ने राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र को ध्यान में रखकर संविधान बनाया। राजतंत्र में सर्वोच्च पद राजा का होता है। लोकतंत्र के लिए उन्होंने `राष्ट्रपति' का पद बनाया। राष्ट्रपति शब्द इस कारण प्रचलित हो गया। उसके लिए कोई दूसरा शब्द जनता में प्रचलित नहीं था। पद ही नहीं था तो उसका वाचक कैसे होता। लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में इसी कारण बहुत से नए शब्दों का नामकरण किया। उनके लिए लोक में कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। आपने अपने टिप्पण में जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें से अधिकतर इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ अन्य उदाहरण देखें– (1) भारत की सरकार ने जब पद्म पुरस्कारों की नई योजना बनाई तो पुरस्कारों की तीन श्रेणियाँ बनाई तथा उनके नाम रखे–(अ) पद्म विभूषण (आ) पद्म भूषण (इ) पद्म श्री। इसके लिए कोई अन्य नाम प्रचलित नहीं थे। प्रचलित नहीं थे, क्योंकि ये पुरस्कार ही नहीं थे।

इस कारण रखे गए नाम चले। इनका प्रचलन हो गया। (2) भारत की सरकार ने जब पूर्वोत्तर भारत में नए राज्यों का गठन किया तो उनके लिए नाम रखे। (अ) अरुणाचल प्रदेश (आ) मणिपुर (इ) मेघालय (ई) मिजोरम (उ) नगालैण्ड आदि। इन नए गठित राज्यों के लिए पहले से कोई शब्द नहीं थे। शब्द इस कारण नहीं थे क्योंकि राज्य ही नहीं थे। इन नए राज्यों का नामकरण किया गया। इन राज्यों को सब इनके नाम से पुकारते हैं। (3) अभी हाल में 'आन्ध्र प्रदेश को दो भागों में बाँटा गया है। एक राज्य का नामकरण किया गया–तेलंगाना। दूसरे राज्य का नामकरण किया गया सीमान्ध्र। ये नाम चलेंगे। लोक प्रचलित हो जाएँगे। (4) भारत के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'चन्द्रयाने तथा मंगल पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष प्रेक्षण उपग्रह का नाम 'मंगलयाने रखा। इनका नामकरण 'चन्द्रयान' एवं 'मंगलयान' किया। ये नाम चल रहे हैं। संसार की किसी भी देश का वैज्ञानिक जब किसी भी भाषा में इनका उल्लेख करेगा तो उसे 'चन्द्रयाने एवं 'मंगलयाने शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा।

शब्द बनाना अथवा शब्द गढ़ना

शब्द बनाने अथवा शब्द गढ़ने को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। अंग्रेजों ने भारत में 'रेलवे नेटकर्क शुरु किया। रेल की पटरियों का जाल बिछाने का काम किया। रेल से जुड़े अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द जन प्रचलित हो गए। उदाहरण देखें- (1) इंजन (2) रेलवे (3) एक्सप्रेस (4) केबिन (5) गॉर्ड (6) स्टेशन (7) जंक्शन (8) टाइम टेबिल (9) टिकट (10) टिकट कलेक्टर (11) डीजल इंजन (12) प्लेटफॉर्म (13) बोगी (14) बुकिंग (15) सिग्नल (16) स्टेशन मास्टर।

इन जैसे जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर इनके लिए नए शब्द बनाने अथवा गढ़ने वालों से लेखक सहमत नहीं हो सकता। भारतीय भाषाविज्ञान की महान परम्परा के अध्ययन के बाद लेखक को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसके आधार पर वह यह बात कह रहा है। आचार्य रघुवीर जी ने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है मगर उन्होंने भी अंग्रेजी के जन प्रचलित शब्दों के स्थान पर जिन शब्दों को गढ़ा है उनसे सहमत नहीं हूँ। उदाहरण के लिए रेलगाड़ी के स्थान पर उन्होंने संस्कृत की धातुओं एवं परसर्गों एवं विभक्तियों की सहायता से शब्द बनाया जो उपहास का कारक बना। ऐसे ही उदाहरणों के कारण 'रघुवीरी हिन्दी'

हास्यास्पद हो गई। लोक में रेल ही चलता है और चलेगा। गढ़ा शब्द नहीं चलेगा। इसी संदर्भ में, लेखक का मत है कि, जो शब्द जन-प्रचलित हैं उनके स्थान पर शब्द गढ़े नहीं। आप नया आविष्कार करें और उसका नामकरण करें, यह ठीक है। जो शब्द जन-प्रचलित हो गए हैं उनके स्थान पर नए शब्द बनाना अथवा गढ़ना श्रम का अपव्यय है। हमें किसी विचार शाखा से अपने को जकड़ना नहीं चाहिए। भाषा की प्रवाहशील प्र-ति को आत्मसात करना चाहिए।

संस्कृत भाषा तथा हिन्दी भाषा

संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाएँ भिन्न कालों की भाषाएँ हैं। एक काल की भाषा पर दूसरे काल की भाषा के नियमों को नहीं थोपा जा सकता। संस्कृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं के अन्तर को हमें जानना चाहिए। किसी भाषा के व्याकरण के नियमों को दूसरी किसी अन्य भाषा पर थोपना गलत है।भाषाविज्ञान का यह सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नियम है। लेखक ने लिखा कि 'भाषा की प्र-ति नदी की धारा की तरह होती है' इस पर कुछ विद्वानों ने सवाल उठाया कि क्या नदी की धारा को अनियंत्रित, अमर्यादित एवं बेलगाम हो जाने दें। लेखक का उत्तर है - नदी की धारा अपने तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा अपने व्याकरण की व्यवस्था एवं संरचना के तटों के द्वारा मर्यादित रहती है। भाषा में बदलाव एवं ठहराव दोनों साथ साथ रहते हैं। 'शब्दावली' गतिशील एवं परिवर्तनशील है। व्याकरण भाषा को ठहराव प्रदान करता है। ऐसा नहीं है कि, 'व्याकरण' कभी बदलता नहीं है। बदलता है मगर बदलाव की रफतार बहुत धीमी होती है। 'शब्द' आते जाते रहते हैं। हम विदेशी अथवा अन्य भाषा से शब्द तो आसानी से ले लेते हैं मगर उनको अपनी भाषा की प्र-ति के अनुरूप ढाल लेते हैं। 'शब्द' को अपनी भाषा के व्याकरण की पद रचना के अनुरूप विभक्ति एवं परसर्ग लगाकर अपना बना लेते हैं। हम यह नहीं कहते कि मैंने चार 'फिल्म्स' देखीं, हम कहते हैं कि, मैंने चार फिल्में देखीं।

"संस्कृत भाषा का महत्व और पाणिनी तथा पतंजलि का भाषावैज्ञानिक चिंतन" लेख को पढ़कर जिन विद्वानों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, उनमें से कुछ विद्वानों ने लेखक को संस्कृत की व्याकरण परम्परा के महत्व से परिचित कराना चाहा। लेखक सम्प्रति यह निवेदन करना चाहता है कि, वह संस्कृत के महान वैयाकरणों एवं निरुक्तकारों के योगदान से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है। वह इससे

अवगत है कि, प्रातिशाख्यों तथा शिक्षा-ग्रंथों में भाषाविज्ञान और विशेष रूप से ध्वनि विज्ञान से सम्बंधित कितना सूक्ष्मदर्शी और गहन विचार सन्निहित है। भारतीय भाषाविज्ञान की परम्परा बड़ी समृद्ध है और उसमें न केवल वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के भाषाविद् समाहित हैं अपितु प्रा-तों एवं अपभ्रंशों के भाषाविद् भी समाहित है।

पाणिनी ने अपने काल के पूर्व के 10 आचार्यों का उल्लेख किया है। उन आचार्यों ने वेदों के काल की छान्दस् भाषा पर कार्य किया था। पाणिनी ने वैदिक काल की छान्दस भाषा को आधार बनाकर अष्टाध्यायी की रचना नहीं की। उन्होंने अपने काल की जन-सामान्य भाषा संस्कृत को आधार बनाकर व्याकरण के नियमों का निर्धारण किया। वाल्मीकीय रामायण में इस भाषा के लिए 'मानुषी विशेषण का प्रयोग हुआ है। पाणिनी के समय संस्कृत का व्यवहार एवं प्रयोग बहुत बड़े भूभाग में होता था। उसके अनेक क्षेत्रीय भेद-प्रभेद रहे होंगे। पाणिनी ने भारत के उदीच्य भाग के गुरुकुलों में बोली जानेवाली भाषा को आधार बनाया। पाणिनी के व्याकरण का महत्व सर्वविदित है। उस सम्बंध में लिखना अनावश्यक है। पाणिनी के व्याकरण की विशिष्टता को अनेक विद्वानों ने रेखांकित किया है। संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए पाणिनी के सूत्र बीजगणित के जटिल सूत्रों की भाँति हैं।

पतंजलि ने भाषा प्रयोग के मामले में भाषा के वैयाकरण से अधिक महत्व सामान्य गाड़ीवान (सारथी) को दिया। महाभाष्यकार पतंजलि के 'पतंजलिमहाभाष्य' से एक प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें उन्होंने भाषा के प्रयोक्ता का महत्व प्रतिपादित किया है। प्रयोक्ता व्याकरणिक नियमों का भले ही जानकार नहीं होता किन्तु वह अपनी भाषा का प्रयोग करता है। व्याकरणिक नियमों के निर्धारण करने वाले तथा भाषा का प्रयोग करनेवाले का पतंजलि-महाभाष्य में रोचक प्रसंग मिलता है। वैयाकरण तथा रथ चलानेवाले के बीच के संवाद का प्रासंगिक अंश उद्धृत है-"वैयाकरण ने पूछा-इस रथ का 'प्रवेता कौन है?

सारथी का उत्तर-आयुष्मान्, मैं इस रथ का 'प्राजिता हूँ।

(प्राजिन् = सारथी, रथ-चालक, गाड़ीवान)

वैयाकरण-'प्राजिता' अपशब्द है।

सारथी का उत्तर-(देवानां प्रिय) आप केवल 'प्राप्तिज्ञ हैं, 'इष्टिज्ञ नहीं।

(श्प्राप्तिज्ञ = नियमों का ज्ञाताय 'इष्टिज्ञ = प्रयोग का ज्ञाता)

वैयाकरण-यह दुष्ट 'सूते हमें 'दुरुत' (कष्ट पहुँचाना) रहा है।

सूत- आपका `दुरुत' प्रयोग उचित नहीं है। आप निंदा ही करना चाहते हैं तो `दुःसूत' शब्द का प्रयोग करें।

प्रत्याहार, गणपाठ, विकरण, अनुबंध आदि की विपुल तकनीक से अलंकृत पाणिनीय सूत्र उनकी अद्वितीय प्रतिभा को प्रमाणित करते हैं।

उत्तर-वैदिक काल में संस्कृत भारत की सभी दिशाओं में चारों ओर फैलती गई। संस्कृत का यह प्रसार केवल भौगोलिक दिशाओं में ही नहीं हो रहा था, सामाजिक स्तर पर मानक संस्कृत से भिन्न अनेक आर्य एवं अनार्य भाषाओं के बोलने वाले समुदायों में भी हो रहा था।

संस्कृत भाषा के भारत के विभिन्न भागों एवं विभिन्न सामाजिक समुदायों में व्यवहार एवं प्रसार के कारण दो बातें घटित हुईं–

1. संस्कृत ने अपने प्रसार के कारण भारत के प्रत्येक क्षेत्र की भाषा को प्रभावित किया।
2. संस्कृत भाषा स्वयं भी भारत में अन्य भाषा-परिवारों की भाषाओं से तथा संस्कृत युग में भारतीय आर्य परिवार की संस्कृतेतर अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं से प्रभावित हुई। लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि, संस्कृत काल में अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं का व्यवहार होता था।

संस्कृत के प्रभाव से तो संस्कृत के विद्वान परिचित हैं मगर संस्कृत पर संस्कृतेतर अन्य लोक भाषाओं/जनभाषाओं के प्रभाव से शायद परिचित नहीं हैं अथवा इस पक्ष को अनदेखा कर जाते हैं। लेखक ने इन दोनों पक्षों पर अपनी पुस्तक में विस्तार से लिखा है। यह भी विवेचित किया है कि, पाणिनी के बाद के संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त किन धातुओं का (शब्दों का नहीं) प्रयोग हुआ है जिनका उल्लेख पाणिनी की अष्टाध्यायी में नहीं हुआ है। वस्तुतः संसार की प्रत्येक भाषा में अन्य भाषा/भाषाओं से आगत शब्दों का व्यवहार होता है। हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो रहा है। संसार की प्रत्येक भाषा अन्य भाषा से शब्द ग्रहण करती है और उसे अपनी भाषा में पचा लेती है। संसार की प्रत्येक प्रवाहशील भाषा में परिवर्तन होता है।

हिन्दी के समाचार पत्रों, टी. वी. चैनलों एवं फिल्मों की भाषा

समाचार पत्रों में तथा टी. वी. के हिन्दी चैनलों एवं हिन्दी की फिल्मों में उस भाषा का प्रयोग हो रहा है जिसे हमारी संतति बोल रही है। भविष्य की हिन्दी

का स्वरूप हमारे प्रपौत्र एवं प्रपौत्रियों की पीढ़ी के द्वारा बोली जानेवाली हिन्दी के द्वारा निर्धारित होगा जिसका निर्धारण उनके अपने काल में भाषा के वैयाकरण करेंगे।। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान एवं एककालिक अथवा संकालिक भाषाविज्ञान की दृष्टियाँ समान नहीं होती। उनमें अन्तर होता है। शब्द प्रयोग के संदर्भ में जब ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाता है तो यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि, भाषा के शब्द का स्त्रोत कौन सी भाषा है। शब्द प्रयोग के संदर्भ में जब एककालिक अथवा संकालिक भाषाविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाता है तो भाषा का प्रयोक्ता जिन शब्दों का व्यवहार करता है, वे समस्त शब्द उसकी भाषा के होते हैं। उस धरातल पर कोई शब्द स्वदेशी अथवा विदेशी नहीं होता। प्रत्येक जीवन्त भाषा में अनेक स्त्रोतों से शब्द आते रहते हैं और उस भाषा के अंग बनते रहते हैं।भाषा में शुद्ध एवं अशुद्ध का, मानक एवं अमानक का, सुसंस्कृत एवं अपशब्द का तथा आजकल भाषा के मानकीकरण एवं आधुनिकीकरण के बीच वाद-विवाद होता रहा है और होता रहेगा। भारत में ऐसे विद्वानों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, जो केवल मानक भाषा की अवधारणा से परिचित हैं। जो भाषाएँ इन्टरनेट पर अधिक विकसित एवं उन्नत हो गयीं हैं, उनके भाषाविद् मानक भाषा से ज्यादा महत्व भाषा के आधुनिकीकरण को देते हैं। वैयाकरण प्रयोक्ता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को आधार मानकर व्याकरण के नियमों का निर्धारण करता है।

परम्परा से चिपके रहने वालों की नजर में कुछ शब्द सुसंस्कृत होते हैं एवं कुछ अपशब्द होते हैं। भाषा की प्र-ति बदलती है। भाषा बदलती है। परम्परावादियों को बदली भाषा भ्रष्ट लगती है। मगर उनके लगने से भाषा अपने प्रवाह को, अपनी गति को, अपनी चाल को रोकती नहीं है। बहती रहती है। बहना उसकी प्र-ति है। इसी कारण कबीर ने कहा था - 'भाखा बहता नीरे।भाषा का अन्तिम निर्णायक उसका प्रयोक्ता होता है। दूसरे काल की भाषा के आधार पर उस काल का वैयाकरणिक संकालिक भाषा के व्याकरण के पुनः नए नियम बनाता है। व्याकरण के नियमों में भाषा को बाँधने की कोशिश करता है। भाषा गतिमान है। पुनः पुनः नया रूप धारण करती रहती है।भाषा वह है, जो भाषा के प्रयोक्ताओं द्वारा बोली जाती है। लेखक इस बात को दोहराना चाहता है कि, भविष्य में हिन्दी भाषा का रूप वह होगा जो लेखक के एवं हिन्दी समाज के प्रपौत्रों तथा प्रपौत्रियों के काल की पीढ़ी द्वारा बोला जाएगा। भाषा का मूल आधार उस के समाज के पढ़े लिखे द्वारा बोली जानेवाली भाषा ही होती है। इसी के

आधार पर किसी काल का वैयाकरण मानक भाषा के नियमों का निर्धारण करता है।

सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली सरल, बोधगम्य हिन्दी का प्रयोग

यहाँ इसको रेखांकित करना अप्रसांगिक न होगा कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दीतर भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने जहाँ देश की अखंडता एवं एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार की अनिवार्यता की पैरोकारी की वहीं भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एकमतेन सरल एवं सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी का प्रयोग करने एवं हिन्दी उर्दू की एकता पर बल दिया था। इसी प्रसंग में, मेरा मानना है कि, प्रजातंत्र में शुद्ध हिन्दी, क्लिष्ट हिन्दी, संस्कृत गर्भित हिन्दी जबरन नहीं चलाई जानी चाहिए। जनतंत्र में ऐसा करना सम्भव नहीं है। ऐसा फासिस्ट शासन में ही सम्भव है। हमें सामान्य आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनको अपना लेना चाहिए। यदि वे शब्द अंग्रेजी से हमारी भाषाओं में आ गए हैं, हमारी भाषाओं के अंग बन गए हैं तो उन्हें भी अपना लेना चाहिए। यह सर्वविदित है कि, प्रेमचन्द जैसे महान रचनाकार ने भी प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उनकी रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अपील, ऑफिसर, इंस्पैक्टर, एक्टर, एजेंट, एडवोकेट, कलर, कमिश्नर, कम्पनी, कॉलिज, कांस्टेबिल, कैम्प, कौंसिल, गजट, गवर्नर, गैलन, गैस, चेयरमेन, चौक, जेल, जेलर, टिकट, डाक्टर, डायरी, डिप्टी, डिपो, डेस्क, ड्राइवर, थियेटर, नोट, पार्क, पिस्तौल, पुलिस, फंड, फिल्म, फैक्टरी, बस, बिस्कुट, बूट, बैंक, बैंच, बैरंग, बोतल, बोर्ड, ब्लाउज, मास्टर, मिनिट, मिल, मेम, मैनेजर, मोटर, रेल, लेडी, सरकस, सिगरेट, सिनेमा, सिमेंट, सुपरिन्टेंडैंट, स्टेशन आदि हजारों शब्द इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द जैसे हिन्दी के महान साहित्यकार ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अंग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग करने में कोई झिझक नहीं दिखाई है। जब प्रेमचंद ने उर्दू से आकर हिन्दी में लिखना शुरु किया था तो उनकी भाषा को देखकर छायावादी संस्कारों में रँगे हुए आलोचकों ने बहुत नाक भौंह सिकौड़ी थी तथा प्रेमचंद को उनकी भाषा के लिए पानी पी पीकर कोसा था। मगर प्रेमचंद की भाषा खूब चली। खूब इसलिए चली क्योंकि उन्होंने प्रसंगानुरूप किसी भी शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं किया। उन्होंने शब्दावली आयोग की तरह

इसके लिए विशेषज्ञों को बुलाकर यह नहीं कहा कि पहले इन अंग्रेजी के शब्दों के लिए शब्द गढ़ दो ताकि मैं अपना साहित्य सृजित कर सकूँ। उनके लेखन में अंग्रेजी के ये शब्द ऊधारी के नहीं हैं, जनजीवन में प्रयुक्त शब्द भंडार के आधारभूत, अनिवार्य, अवैकल्पिक एवं अपरिहार्य अंग हैं। फिल्मों, रेडियो, टेलिविजन, दैनिक समाचार पत्रों में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है वह जनप्रचलित भाषा है। जनसंचार की भाषा है।

पुरानी फिल्मों में प्रयुक्त होनेवाले चुटीले संवादों तथा फिल्मी गानों की पंक्तियाँ जैसे पुरानी पीढ़ी के लोगों की जबान पर चढ़कर बोलती थीं वैसे ही आज की युवा पीढ़ी की जुबान पर आज की फिल्मों में प्रयुक्त संवादों तथा गानों की पंक्तियाँ बोलती हैं। फिल्मों की स्क्रिप्ट के लेखक जनप्रचलित भाषा को परदे पर लाते हैं। उनके इसी प्रयास का परिणाम है कि, फिल्मों को देखकर समाज के सबसे निचले स्तर का आम आदमी भी फिल्म का रस ले पाता है। यदि साहित्यकार, फिल्म के संवादों तथा गीतों के लेखक, समाचार पत्रों के रिपोर्टर जनप्रचलित हिन्दी का प्रयोग कर सकते हैं तो भारत सरकार का शासन`प्रशासन की राजभाषा हिन्दी' को जनप्रचलित क्यों नहीं बना सकता। विचारणीय है कि, हिंदी फिल्मों की भाषा ने गाँवों और कस्बों की सड़कों एवं बाजारों में आम आदमी के द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली जाने वाली बोलचाल की भाषा को एक नई पहचान दी है। फिल्मों के कारण हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार हुआ है उतना किसी अन्य एक कारण से नहीं हुआ। आम आदमी जिन शब्दों का व्यवहार करता है उनको हिन्दी फिल्मों के संवादों एवं गीतों के लेखकों ने बड़ी खूबसूरती से सहेजा है।

राजभाषा के संदर्भ में यह संवैधानिक आदेश है कि, संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्-ति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्र-ति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे। भारत सरकार का शासन राजभाषा का तदनुरूप विकास कर सका है अथवा नहीं यह सोचने विचारने की बात है। इस दृष्टि से भी लेखक फिल्मों में कार्यरत सभी रचनाकारों एवं कलाकारों का अभिनंदन करता है।हिन्दी

सिनेमा ने भारत की सामाजिक संस्–ति के माध्यम की निर्मिति में अप्रतिम योगदान दिया है। बंगला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं एवं हिन्दी की विविध उपभाषाओं एवं बोलियों के आंचलों तथा विभिन्न पेशों की बस्तियों के परिवेश को सिनेमा की हिन्दी ने मूर्तमान एवं रूपायित किया है।

भाषा तो हिन्दी ही है मगर उसके तेवर में, शब्दों के उच्चारण के लहजे में, अनुतान में तथा एकाधिक शब्द-प्रयोग में परिवेश का तड़का मौजूद है। भाषिक प्रयोग की यह विशिष्टता निंदनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय है। लेखक को प्रसन्नता है कि, देर आए दुरुस्त आए, राजभाषा विभाग ने प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाने की दिशा में कदम उठाने शुरु कर दिए हैं। जैसे प्रेमचन्द ने जनप्रचलित अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने से परहेज नहीं किया वैसे ही प्रशासनिक हिन्दी में भी प्रशासन से सम्बंधित ऐसे शब्दों को अपना लेना चाहिए जो जन-प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एडवोकेट, ओवरसियर, एजेंसी, प्लाट, चौक, अपील, स्टेशन, प्लेटफार्म, एसेम्बली, ऑडिट, केबिनेट, केम्पस, कैरियर, केस, कैश, बस, सेंसर, बोर्ड, सर्टिफिकेट, चालान, चेम्बर, चार्जशीट, चार्ट, चार्टर, सर्किल, इंस्पेक्टर, सर्किट हाउस, सिविल, क्लेम, क्लास, क्लर्क, क्लिनिक, क्लॉक रूम, मेम्बर, पार्टनर, कॉपी, कॉपीराइट, इन्कम, इन्कम टैक्स, इंक्रीमेंट, स्टोर आदि। इसी प्रसंग में, लेखक भारत सरकार के राजभाषा विभाग को यह सुझाव भी देना चाहता है कि, जिन संस्थाओं में सम्पूर्ण प्रशासनिक कार्य हिन्दी में शतकों अथवा दशकों से होता आया है वहाँ की फाइलों में लिखी गई हिन्दी भाषा के आधार पर प्रशासनिक हिन्दी को सरल बनाएँ। जब कोई रोजाना फाइलों में सहज रूप से लिखता है तब उसकी भाषा का रूप अधिक सरल और सहज होता है बनिस्पत जब कोई सजग होकर भाषा को बनाता है। सरल भाषा बनाने से नहीं बनतीय सहज प्रयोग करते रहने से बन जाती है, ढल जाती है।

अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

ऐसा नहीं है कि, केवल हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में ही अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता है और अंग्रेजी बिल्कुल अछूती है। अंग्रेजी में संसार की उन सभी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं जिन भाषाओं के बोलने वालों से अंग्रेजो का सामाजिक सम्पर्क हुआ। चूँकि अंग्रेजों का भारतीय समाज से भी सम्पर्क हुआ, इस कारण अंगेजी ने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आदान किया है। यदि ब्रिटेन में इंडियन रेस्तरॉ में अंग्रेज समोसा, इडली, डोसा, भेलपुरी

खायेंगे, खाने में 'करी', 'भुना आलू' एवं 'रायता' मागेंगे तो उन्हें उनके वाचक शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि भारत का 'योग' करेंगे तो उसके वाचक शब्द का भी प्रयोग करना होगा और वे करते हैं, भले ही उन्होंने उसको अपनी भाषा में 'योगा' बना लिया है जैसे हमने 'हॉस्पिटल' को 'अस्पताल' बना लिया है। जिन अंग्रेजों ने भारतविद्या एवं धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है उनकी भाषा में अवतार, अहिंसा, कर्म, गुरु, तंत्र, देवी, नारद, निर्वाण, पंडित, ब्राह्मण, बुद्ध, भक्ति, भगवान, भजन, मंत्र, महात्मा, महायान, माया, मोक्ष, यति, वेद, शक्ति, शिव, संघ, समाधि, संसार, संस्कृत, साधू, सिद्ध, सिंह, सूत्र, स्तूप, स्वामी, स्वास्तिक, हनुमान, हरि, हिमालय आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भारत में रहकर जिन अंग्रेजों ने पत्र, संस्मरण, रिपोर्ट, लेख आदि लिखे उनकी रचनाओं में तथा वर्तमान इंगलिश डिक्शनरी में अड्डा, इज्जत, कबाब, कोरा, कौड़ी, खाकी, खाट, घी, चक्कर, चटनी, चड्डी, चमचा, चिट, चोटी, छोटू, जंगल, ठग, तमाशा, तोला, धतूरा, धाबा, धोती, नबाब, नमस्ते, नीम, पंडित, परदा, पायजामा, बदमाश, बाजार, बासमती, बिंदी, बीड़ी, बेटा, भाँग, महाराजा, महारानी, मित्र, मैदान, राग, राजा, रानी, रुपया, लाख, लाट, लाठी चार्ज, लूट, विलायती, वीणा, शाबास, सरदार, सति, सत्याग्रह, सारी(साड़ी), सिख, हवाला एवं हूकाह(हुक्का) जैसे शब्दों को पहचाना जा सकता है।

हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप वाक्य रचना

राजभाषा हिन्दी का प्रयोग करते समय वाक्य रचना अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप नहीं होनी चाहिए। यह रचना हिन्दी की प्र-ति के अनुरूप होनी चाहिए। भारत सरकार के मंत्रालय के राजभाषा अधिकारी का काम होता है कि, वह अंग्रेजी के मैटर का आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली में अनुवाद कर दे। अधिकांश अनुवादक शब्द की जगह शब्द रखते जाते हैं। हिन्दी भाषा की प्र-ति को ध्यान में रखकर वाक्य नहीं बनाते। इस कारण जब राजभाषा हिन्दी में अनुवादित सामग्री पढ़ने को मिलती है तो उसे समझने के लिए कसरत करनी पड़ती है। लोकतंत्र में राजभाषा आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। सरकारी अधिकारियों ने इस बात पर जोर दिया है कि, राजभाषा सामान्य भाषा से अलग दिखनी चाहिए। वह गरिमामय लगनी चाहिए। उसको सुनकर सत्ता का आधिपत्य परिलक्षित होना चाहिए। राजभाषा अधिकारी हिन्दी में अंग्रेजी की सामग्री का अनुवाद अधिक करता है। मूल टिप्पण हिन्दी में नहीं लिखा जाता।

मूल टिप्पण अंग्रेजी में लिखा जाता है। अनुवादक जो अनुवाद करता है, वह अंग्रेजी की वाक्य रचना के अनुरूप अधिक होता है। हिन्दी भाषा की रचना-प्र-ति अथवा संरचना के अनुरूप कम होता है। उदाहरणार्थ, जब कोई पत्र मंत्रालय को भेजते हैं तो उसकी पावती की भाषा की रचना निम्न होती है–

'पत्र दिनांक - - -, क्रमांक - - - प्राप्त हुआ'।

सवाल यह है कि, क्या प्राप्त हुआ। क्रमांक प्राप्त हुआ अथवा दिनांक प्राप्त हुआ अथवा पत्र प्राप्त हुआ। अंग्रेजी की वाक्य रचना में क्रिया पहले आती है। हिन्दी की वाक्य रचना में क्रिया बाद में आती है। इस कारण जो वाक्य रचना अंग्रेजी के लिए ठीक है उसके अनुरूप रचना हिन्दी के लिए सहज, सरल एवं स्वाभाविक नहीं है। क्रिया (प्राप्त होना अथवा मिलना) का सम्बंध दिनांक से अथवा क्रमांक से नहीं है। पत्र से है। एक विद्वान को इसमें कोई दोष नजर नहीं आता। लेखक उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता है कि, हिन्दी एवं अंग्रेजी की वाक्य संरचना में अन्तर हैं। हिन्दी एवं अंग्रेजी के व्यतिरेकी अध्ययन पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है। उन ग्रंथों को पढ़ा जा सकता है। सामान्य पाठक के लिए लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि, उपर्युक्त उदाहरण की वाक्य रचना हिन्दी की रचना प्र-ति के हिसाब से निम्न होनी चाहिए -`आपका दिनांक - - - का लिखा पत्र प्राप्त हुआ। उसका क्रमांक है - - - - '।

हिन्दी की वाक्य रचना भी दो प्रकार की होती है। एक रचना सरल होती है। दूसरी रचना जटिल एवं क्लिष्ट होती है। सरल वाक्य रचना में वाक्य छोटे होते हैं। संयुक्त एवं मिश्र वाक्य बड़े होते हैं। सरल वाक्य रचना वाली भाषा सरल, सहज एवं बोधगम्य होती है। संयुक्त एवं मिश्र वाक्यों की रचना वाली भाषा जटिल होती है, कठिन लगने लगती है, क्लिष्ट लगने लगती है और इस कारण अबोधगम्य हो जाती है।

अंत में, लेखक यह निवेदन करना चाहता है कि, हिन्दी के विकास के लिए सरल, सहज, पठनीय, बोधगम्य भाषा-शैली का विकास करना अपेक्षित है। इससे हिन्दी लोक में प्रिय होगी। लोकप्रचलित होगी।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास एवं हिन्दी

अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दबाव के कारण आज प्रौद्योगिकी की आवश्यकता पहले से और अधिक बढ़ गई है। प्रौद्योगिकीय गतिविधियों को बनाए रखने के लिए, लोकतंत्रात्मक दर्शन एवं मूल्यों के अनुरूप

सामान्य नागरिक एवं शासनतंत्र के बीच सार्थक संवाद के लिए ई-गवर्नेंस के प्रसार तथा सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के समाधान के लिए भारतीय जन मानस में वैज्ञानिक चेतना एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग का विकास अनिवार्य है। देश की सम्पर्क भाषा हिन्दी में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान के सतत विकास और प्रसार के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन एवं प्रौद्योगिकी विकास के लिए वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकविदों एवं हिन्दी भाषा के विशेषज्ञों को मिलकर निरन्तर कार्य करना होगा।

7

हिन्दी की उपभाषाएँ

अक्सर 'उपभाषा' किसी भाषा के क्षेत्रीय प्रकारों को कहा जाता है, उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ी, हरयाणवी, मारवाड़ी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी की कुछ क्षेत्रीय उपभाषाएँ हैं। लेकिन कभी-कभी किसी सामजिक वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाली भाषा की किस्म को भी 'उपभाषा' कह दिया जाता है। कभी-कभी उपभाषा को बोली भी कहते हैं, हालाँकि यह शब्द मानक भाषाओं के लिए भी इस्तेमाल होता है। उपभाषा किसी भाषा के ऐसे विशेष रूप को बोलते हैं जिसे उस भाषा के बोलने वाले लोगों में एक भिन्न समुदाय प्रयोग करता हो।

उपभाषा की पहचान

कोई उपभाषा अपने व्याकरण, शब्दावली, लहजे और उच्चारण से जानी जाती है। उदाहरण के लिए मानक हिन्दी और बुंदेलखंड की खड़ीबोली में शब्दों और व्याकरण का अंतर दिखता है–

मानक हिन्दी–चिड़ियों को तंग मत कर। दाना छाँव में डाल देना। वह शाम को नहीं आएँगी।

खड़ीबोली–चिड़ियों कु दिक मति करे। दाना छाँ में धर दीजीयो। वो शाम कु ना आने की हैं।

इसी तरह साधारण पंजाबी भाषा और पंजाबी की हिन्दको उपभाषा में अंतर देखे जा सकते हैं–

1. हिन्दी वाक्य–हमारी माँ कहाँ हैं? वह किसी काम के लिए बाहर गई हैं।
2. साधारण पंजाबी–साड्डी माँ कित्थे ऐ? ओ किसी कम्म लई बाश्र गए ने।
3. हिन्दको पंजाबी–अस्साँ दी माँ कित्थे ए? ओ किसी कम्मे आस्ते बाअर गई दीन।

मानक भाषा और उपभाषा का अंतर

भाषाविज्ञान का एक कथन है कि, 'फौज और नौसेना वाली उपभाषा को भाषा कहते हैं', यानि अगर किसी उपभाषा को बोलने वाले अपना राज्य या साम्राज्य बनाने में सफल हो जाएँ तो उसे एक 'मानक भाषा' का दर्जा दे देते हैं और उस से सम्बंधित अन्य बोलियों को उस मानक भाषा की उपभाषा कहने लगते हैं। इसी प्रक्रिया से मानक हिन्दी एक भाषा मानी जाती है। जबकि ब्रजभाषा एक उपभाषा कहलाती है। अक्सर किसी बोली को उपभाषा तब बुलाया जाता है। जब–

1. उसे बोलने वालों का कोई अपना अलग स्वशासित राज्य, प्रांत या देश न हो।
2. उसका लिखाई में कम प्रयोग हो और उसमें साहित्य उपलब्ध न हो।
3. समाज में उसे बोलने से प्रतिष्ठा कम हो।
4. उसमें मानकीकरण कम हो और उसे बोलने वाले शब्दों के कई रूप प्रयोग करें।

भारत का उत्तर और मध्य क्षेत्र बहुत समय पहले से हिंदी-क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी-प्रयोग-क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गो में विभक्त किया गया है। जॉर्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है।

हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और स्रोत-आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि, अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यत: पाँच उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं–पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र-विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

कौरवी–प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी-बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी-बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी-बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि, खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ भाषाविदों का कहना है कि, खड़ी-पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी-बोली नाम पड़ा है।

वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ.प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुनानगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ–

क्रिया रूप अकारांत होता है, यथा–आना, खाना, दौड़ना, हँसना, फैलना और सींचना आदि।

कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।

कहीं-कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का प्रयोग मिलता है।

इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।

अरबी और फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

ब्रजभाषा–

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त सहित्य रचा गया

है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यत: रचना होती थी। रीतिकाल में ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वी-ति मिली थी। विशेष महत्त्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगता वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है।

इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है।

इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं–

पद-रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है, जैसे–

खाया खायौ गया गयो या गयौ।

बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है, यथा–लोग झ लागनय बात झ बातन।

'उ' विपर्यय रूप मिलता है, जैसे–कुछ कछु।

संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं–मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो, आदि।

तद्भव शब्दों की बहुलता है।

वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

इसके प्रमुख कवि हैं– सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

हरियाणवी–

इसे बाँगारू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। किन्तु अब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती हैं। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गो में विभक्त कर सकते हैं।

केन्द्रीय हरियाणवी–इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्राय: इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारण 'न' के स्थान पर प्राय: 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ'

विशेष ध्वनि सुनाई देती है, यथा–बालक झ बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता है।

ब्रज हरियाणवी –फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है, यथा- खायौ, खायोरू गयो, गयोय नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है–काला झ कारा, बिजली झ बिजुरी आदि।

मेवाती हरियाणवी–मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।

अहीरवाटी हरियाणवी–रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ हैं। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है, यथा- था झ थो।

बागड़ी हरियाणवी–इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान सकते है। बहुवचन रचना में आँ' प्रत्यय का योग मिलता है, यथा- बात झबाताँ। लोप का बहुल रूप सामने आता है, जैसे-अहीर झ हीर, अनाज ठाना, नाज, उठाना।

कौरवी हरियाणवी–कौरवी क्षेत्र से जुड़े हरियाणा के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता हैं। आकारांत शब्दों का बहुत प्रयोग मिलता है, यथा- खाना, धोना, सोना आदि।

अबदालवी हरियाणवी–अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है- हाथ झ हात, साथ झसात।

लोप की बहुलता भी दिखाई देती है- कृपया झ कृप्या, मिनट झ मिन्ट।

कन्नौजी–कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ है। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य है। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

बुंदेली–बुंदेलखंड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गयी हैं इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

पूर्वी हिंदी–पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी-दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवाँ आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियाँ हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधी–'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं–

इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है- शंकर > संकर, शाम > साम आदि।

इसमें 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे वन > बन, वाहन > बाहन आदि।

3ण् 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है। इ आगम-स्कूल झ इस्कूल, स्त्री > इस्त्री उ आगम-सूर्य > सूरज > सूरूजु

'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायः 'न' का प्रयोग होता है।

ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

भक्तिकाल में समृठ्ठ साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानव' और जायसी कृत 'पद्‌मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य-धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बघेली–इस बोली का केन्द्र रीवाँ है। मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

छत्तीसगढ–'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं-कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है।अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं।

बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है, यथा- लोग > लागनि, लोगन सर्वमान के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं- तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं–

इससे मुख्यत: तीन बोली भागो में विभक्त करते हैं।

भोजपुरी–भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में पूर्ण या आंशिक रूप में और बिहार के छपरा, चम्पारन तथा सारन में प्रयोग होता है। इस भाषा में अवधी की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

इसमें 'र' ध्वनि का प्राय: लाप हो जाता है, यथा- लरिका > लरका (लड़का), करया > कइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है, जैसे खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है। समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मैथिली–मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरपुर, मद्युबनी और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते है। इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं, यथा- छथि, छल आदि। इ, उ बहुला रूप अवधी के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दाबली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और आकर्षक

साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

मगही–'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते है। कारक-चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते है, यथा- संप्रदान-ला, लेन, आधिकरण-मों। शब्दों में तद्भव या बहुल तद्भव रूप मिलते है, यथा- बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। इसमें टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता होती है, यथा- ड, ड़, ण, ळ। महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने की भी प्रवृत्ति है। बहुबचन परिवर्तन में मुख्यत: 'आँ' का प्रयोग होता है। तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

मेवाती–मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर-पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारण इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवती में समृठ्ठ लोक-साहित्य है।

जयपुरी–इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसर्गो में कर्म-संप्रदान-नै, कैय करण-अपादान-सूं, सौय अधिकरण-मै, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

मारबाड़ी–इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुराने मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध कवि नरपति नाल्ह,

चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं। इसमे 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है। अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग के साथ तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

मालवी- मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिन्दी और उसका विकास

इसमें 'ड़' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है। इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है। विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य मिलता है।

पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथिलता के कारण भाषा में विविधता का होना स्वाभाविक था। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी। पश्चिमी पहाड़ी- इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती है। यहाँ की बोलियों की संख्या तीस से अधिक है। ये मुख्यत: टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है। मध्य पहाड़ी- नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते है। इसमें समृठ्ठ लोक-साहित्य और संक्षिप्त-साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्भव शब्द है। आर्यो का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजराज और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में, हिंदी दक्षिण के प्रांतो में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय सें दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्‌भव–विकास–चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद–बिन–तुगलक था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद–बिन–तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल न होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह–यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी–संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि उवश्य मिली, किन्तु इससे दक्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी–बोली, ब्रज, अवधी, पंजावी आदि के मिश्रित रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंन्दी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ. परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है–''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14 वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरियाणवी एवं खड़ी–बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।'' डा. श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों–पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्ही दो वर्गो की अवधी और ब्रज

दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य-रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधि और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य-सृजन में अपनाई जाती रही हैं और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत' की रचना ठेठ अवधि में की है।

'प्रेमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्ति काल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ-मागधी से हुआ।

पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं-कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ है–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र-तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।

पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।

पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-बालक > बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती है।

पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा-और > क अउर ऐनक > अइनक।

पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा-कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा-केला > केरा, फर > फल आदि।

पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्राय: 'स' के रूप में प्रयुक्त होती है, यथा-शंकर > संकर, शेर > सेर। पश्चिमी हिंदी में प्राय: मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्राय: 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा-वन > बन, आशीर्वाद > आसीर्वाद आदि।

पश्चिमी हिंदी में प्राय: मूल रूप प्रयुक्त होता है।

पूर्वी हिंदी में कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।

पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हम सब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्राय: एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।

पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र-तत्र 'ब' का प्रयोग होता है-चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकार रूप सामने आता है—चलना झ चलनों, करना > करनो।

क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारण में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किन्तु पूर्वी हिंदी में रूप-विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि, हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं-पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियाँ की शब्द-संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द-संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियो की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप-भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्त्व स्वत: सिद्ध है।

बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ के अनुसार, ये रूप प्रमुखत: चार धारों पर आधारित हैं- इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्परिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का प्रसार होता है। दूसरे शब्दों में, आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुए व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से जाना जाता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

साधारणत: हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। शिक्षित हिन्दी भाषी अक्सर औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में अध्ययन, रेडियो वार्ता, लेख आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, दोस्तों में गपशप करते समय) प्राय: हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिन्दुस्तानी के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है

जिसमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं और दूसरे में अगृहीत अंग्रेजी शब्द का प्रचलन है। बोलचाल की हिन्दी में ये सारी शैलियाँ मौजूद रहती हैं। अर्थात् इसमें सरल बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चाहे वह तत्सम प्रधान हिन्दी हो या परिचित उर्दू अथवा अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी, व्याकरण तो हिन्दी का ही रहता है।

बोलचाल की भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। भक्तों द्वारा, साधु-संतों द्वारा, व्यापारियों के जरिए, तीर्थस्थानों में, मेला-महोत्सव में, रेल के डिब्बों में, सेना द्वारा, शिक्षितों में, मजदूर और मालिक के बीच, किसान और जमींदार के बीच बोलचाल की भाषा बड़ी तेजी से फैलने लगती है। यह प्रेम की, भाई-चारे की, इस मिट्टी की तथा हमारी संस्-ति की भाषा है। चूंकि भारतीय संस्-ति सामाजिक संस्-ति के रूप में समूचे विश्व में शुमार होती है, इसमें भाषाई अनेकरूपता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। हमारी संस्-ति की भाँति हमारी भाषा हिन्दी भी अनेकता को अपने में समाहित कर राष्ट्रीय एकता की पहचान कराती है। बहुभाषी राष्ट्र की विविधता, सांस्-तिक विशालता एवं भौगोलिक वैभिन्न्य के कारण सृष्ट बहुविध शब्दों में से कई मधुर क्षेत्रीय शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में समाये हुए हैं। इससे सहजता, बोधगम्यता के साथ-साथ एक अपनापन भी अनायास आ जाता है। संसार की प्रत्येक बोलचाल की भाषा आगे चलकर मानक भाषा बन जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सहजता और सरलता। मौखिक प्रयोग के कारण कहीं कहीं शुद्धता भले ही न हो, पर बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता में यह सबसे आगे है। जो भाषा जितनी सम्प्रेषणीय है, वह उतनी ही समर्थ है। सम्प्रेषणीयता के बिना भाषा की उपयोगिता कहाँ रह जायगी ? सच पूछिये तो भाषा दूसरे के लिए अभिप्रेत है। वक्ता और श्रोता के बिना भाषा की कोई परिचिति नहीं है। इसी सम्प्रेषण के चलते मनुष्य अपने आसपास से लेकर सारे संसार से जुड़ता है। अपने को अच्छी तरह अभिव्यक्त करने हेतु वह अन्यन्त प्रभावशाली ढंग से भाषा का प्रयोग करता है।

सतत परिवर्तनशील होने के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है। भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव को भी झूठलाया नहीं जा सकता। लेकिन यह भी सत्य है कि, भाषा की इन विविधताओं के बावजूद उसका एक मानक रूप होता है। फिर भी 'भाषा बहता नीर' कभी स्थिर कैसे रह सकता है। जन-जन तक फैलकर सबसे घुलमिल कर उसका एक मौखिक रूप सदा बरकरार रहता है, जो सरल, सहज, बोधगम्य और मधुर भी है।

8

खड़ी बोली की उत्पत्ति एवं इतिहास

खड़ी से अर्थ है खरी अर्थात शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली। शुद्ध अथवा ठेठ हिंदी बोली या भाषा को उस समय खरी या खड़ी बोली के नाम से सम्बोधित किया गया जबकि हिंदुस्तान में अरबी फारसी और हिंदुस्तानी शब्द मिश्रित उर्दू भाषा का चलन था या दूसरी तरफ अवधी या ब्रज भाषा का। ठेठ या शुद्ध हिंदी का चलन न था। यह लगभग 18वी शताब्दी के आरम्भ का समय था जब कुछ हिंदी गद्यकारों ने ठेठ हिंदी में लिखना शुरू किया। इसी ठेठ हिंदी को खरी हिंदी या खडी हिंदी बोली कहा गया।

खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। गाजियाबाद, हापुड़ ग्रेटर नोएडा में ब्रजभाषा प्रभावित खडी बोली बोली जाती है मेरठ व मुजफ्फरनगर(पूर्वी भाग) की खड़ी बोली आदर्श खड़ी बोली मानी जाती है जिससे आधुनिक हिंदी भाषा का जन्म हुआ वही दूसरी ओर मुजफ्फरनगर(पश्चिमी भाग) व सहारनपुर, बागपत में खड़ी बोली में हरयाणवी की झलक देखने को मिलती है अंबाला तथा पचंकूला जिलों में खड़ी बोली उपभाषा है, जो ग्रामीण जनता के द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है।

खड़ी बोली वह बोली है जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो, ठेंठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप, इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है।

'खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिंदी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्राय: दिल्ली और उसके पूर्वी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाषा तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आसपास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16 वीं शताब्दी में कोई-कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं-कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्राय: नहीं के समान थी।

अधिकांश कविता बराबर अवधी और व्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताव्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में और तभी से मानो वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृतप्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

साहित्यिक सन्दर्भ

साहित्यिक संदर्भ में ब्रज, अवधी आदि बोलियों में साहित्य का पार्थक्य करने के लिए आधुनिक हिंदी साहित्य को खड़ी बोली साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। यह भारतवर्ष की सर्वाधिक प्रचलित, सरल तथा बोधगम्य भाषा है। बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं हरियाणा हिंदी (खड़ी बोली) भाषाभाषी राज्य हैं। परंतु इनके अतिरिक्त सुदूर दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़कर इसका प्रचार न्यूनाधिक समस्त देश में है।

नामकरण

खड़ी बोली अनेक नामों से अभिहित की गई है यथा–हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, रेखता, हिंदोस्तानी, हिंदुस्तानी आदि। डॉ. ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्युलर हिंदुस्तानी तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे जनपदीय हिंदुस्तानी का नाम दिया है। डॉ. चटर्जी खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को साधु हिंदी या नागरी हिंदी के नाम से अभिहित करते हैं। परंतु डॉ. ग्रियर्सन ने इसे हाई हिंदी का अभिधान प्रदान किया है। इसकी व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रूप से की है। इन विद्वानों के मतों की निम्नांकित श्रेणियाँ है–

(1) कुछ विद्वान खड़ी बोली नाम को बज्रभाषा सापेक्ष मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि, लल्लू जी लाल (1803 ई.) के बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुरता तथा कोमलता की तुलना में उस बोली को दिया गया था जिससे कालांतर में आदर्श हिंदी तथा उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान खड़ी शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि ग्रहण करते हैं।

(2) कुछ लोग इसे उर्दू सापेक्ष मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्रकृत शुद्ध, ग्रामीण ठेठ बोली मानते हैं।

(3) अनेक विद्वान खड़ी का अर्थ सुस्थित, प्रचलित, सुसंस्कृत, परिष्कृत या परिपक्व ग्रहण करते हैं।

(4) अन्य विद्वान् उत्तरी भारत की ओकारांत प्रधान ब्रज आदि बोलियों को पड़ी बोली और इसके विपरीत इसे खड़ी बोली के नाम से अभिहित करते हैं, जबकि कुछ लोग रेखता शैली को पड़ी और इसे खड़ी मानते हैं। खड़ी बोली को खरी बोली भी कहा गया है। संभवतः खड़ी बोली शब्द का

सर्वप्रथम प्रयोग लल्लू जी लाल द्वारा प्रेमसागर में किया गया है। किंतु इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर खरी शब्द ही मुद्रित है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत

अत्यंत प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश कहा जाता है, जो भारतीय संस्–ति तथा सभ्यता का केंद्रबिंदु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल की) शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालांतर में कदाचित् खड़ी बोली (हिंदी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यिक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरांत भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुण धारा के संत कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि, मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्त्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिंदी की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूर्वी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में वे लिखते हैं कि, यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था जिसका आविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर में किया।

लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परंतु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परंपरा के संबंध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेख्ता' कहते थे, कविता की है। यह परंपरा 18वीं 19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणत: लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्यशैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्र-तियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।

हिंदी भारतीय गणराज्य की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से खड़ी बोली शब्द का प्रयोग दिल्ली - मेरठ के समीपस्थ ग्रामीण समुदाय की ग्रामीण बोली के लिए होता है। ग्रियर्सन ने इसे

'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' तथा सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' कहा है। खड़ी बोली नागरी लिपि में ही लिखी जाती है। हिंदी की रूपरेखा जानने के लिए खड़ी बोली का ज्ञान अति आवश्यक है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से खड़ी बोली ही स्टैण्डर्ड हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी की मूलाधार बोली है। साहित्यिक सन्दर्भ में कभी-कभी अवधी, ब्रज आदि बोलियों के साहित्य से अलगाव करने के लिए आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'खड़ी बोली सहित्य' से अभिहित किया जाता है और इस प्रसंग में खड़ी बोली शब्द 'स्टैण्डर्ड हिन्दी' का समानार्थक हो जाता है। प्रथम को हम 'खड़ी बोली' शब्द का विशिष्ट अर्थ और द्वितीय को सामान्य अर्थ कह सकते हैं। किंतु 'खड़ी बोली' शब्द के आरम्भिक अर्थ तथा नामकरण और उसके रूप, अर्थ, प्रयोग के विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में मतवैभिन्य दिखाई पड़ता है। 'खड़ी बोली' नाम की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है। उन विद्वानों की विचार-धाराओं को निम्नलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं-

कुछ विद्वान् 'खड़ी बोली' नाम को ब्रजभाषा-सापेक्ष्य मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि, लल्लू लालजी (1803 ई.) से बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुर मिठास की तुलना में उस बोली को दिया गया था, जिससे कालांतर में स्टैण्डर्ड हिन्दी और उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान् 'खड़ी' शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि अर्थ लेते हैं।

कुछ लोग इसे उर्दू - सापेक्ष्य मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्र-त, 'शुद्ध', ग्रामीण ठेठबोली मानते हैं।

कुछ खड़ी का अर्थ 'सुस्थिर, सुप्रचलित, सुसंस्कृत, 'परिष्कृत या परिपक्व से मानते हैं।

कुछ लोग उत्तरी भारत की ओकारांत ब्रज आदि बोलियों को 'पड़ी बोली' और उसके विरोध में इसे 'खड़ी बोली' मानते हैं।

जब कि कुछ लोग रेखता शैली को 'पड़ी' और इसे 'खड़ी' मानते हैं।

खड़ी बोली का इतिहास

भारतेन्दु पूर्व युग

खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक रचनाकारों में फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर दो रचनाकारों सदासुख लाल 'नियाज' (सुखसागर) व इंशा अल्ला खाँ

(रानी केतकी की कहानी) तथा फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के दो भाषा मुंशियों लल्लू लालजी (प्रेम सागर) व सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान) के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु पूर्व युग में मुख्य संघर्ष हिंदी की स्वीकृति और प्रतिष्ठा को लेकर था। इस युग के दो प्रसिद्ध लेखकों राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' व राजा लक्ष्मण सिंह ने हिंदी के स्वरूप निर्धारण के सवाल पर दो सीमान्तों का अनुगमन किया। राजा शिव प्रसाद ने हिंदी का गँवारुपन दूर कर उसे उर्दू-ए-मुअल्ला बना दिया तो राजा लक्ष्मण सिंह ने विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिंदी का समर्थन किया।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-1900 ई.)

इन दोनों के बीच सर्वमान्य हिंदी गद्य की प्रतिष्ठा कर गद्य साहित्य की विविध विधाओं का ऐतिहासिक कार्य भारतेन्दु युग में हुआ। हिंदी सही मायने में भारतेन्दु के काल में 'नई चाल में ढली' और उनके समय में ही हिंदी के गद्य के बहुमुखी रूप का सूत्रपात हुआ। उन्होंने न केवल स्वयं रचना की बल्कि अपना एक लेखक मंडल भी तैयार किया, जिसे 'भारतेन्दु मंडल' कहा गया। भारतेन्दु युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि गद्य रचना के लिए खड़ी बोली को माध्यम के रूप में अपनाकर युगानुरूप स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय दिया। लेकिन पद्य रचना के मसले में ब्रजभाषा या खड़ी बोली को अपनाने के सवाल पर विवाद बना रहा, जिसका अन्त द्विवेदी के युग में जाकर हुआ।

द्विवेदी युग (1900 ई.-1920 ई.)

खड़ी बोली और हिंदी साहित्य के सौभाग्य से 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन का भार सम्भाला। वे सरल और शुद्ध भाषा के प्रयोग के हिमायती थे। वे लेखकों की वर्तनी अथवा त्रुटियों का संशोधन स्वयं करते चलते थे। उन्होंने हिंदी के परिष्कार का बीड़ा उठाया और उसे बखूबी अन्जाम दिया। गद्य तो भारतेन्दु युग से ही सफलतापूर्वक खड़ी बोली में लिखा जा रहा था, अब पद्य की व्यावहारिक भाषा भी एकमात्र खड़ी बोली प्रतिष्ठित होनी लगी। इस प्रकार ब्रजभाषा, जिसके साथ में 'भाषा' शब्द जुड़ा हुआ है, अपने क्षेत्र में सीमित हो गई अर्थात् 'बोली' बन गई। इसके मुकाबले में खड़ी बोली, जिसके साथ 'बोली' शब्द लगा है, 'भाषा बन गई', और इसका सही नाम हिंदी हो गया। अब खड़ी बोली दिल्ली के आसपास की मेरठ-जनपदीय बोली नहीं रह गई, अपितु यह समस्त उत्तरी भारत के साहित्य का माध्यम बन गई।

द्विवेदी युग में साहित्य रचना की विविध विधाएँ विकसित हुई।। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्याम सुन्दर दास, पद्म सिंह शर्मा, माधव प्रसाद मिश्र, पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि के अवदान विशेषत: उल्लेखनीय हैं।

इसी दौरान वर्ष 1918 में इन्दौर में गांधी जी की अध्यक्षता में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' आयोजित हुआ और उसी में पारित एक प्रस्ताव के द्वारा हिन्दी राष्ट्रभाषा मानी गयी। इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिये दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की भी स्थापना हुई जिसका मुख्यालय मद्रास में था।

छायावाद युग (1920 ई.-1936 ई. एवं उसके बाद)

साहित्यिक खड़ी बोली के विकास में छायावाद युग का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा और राम कुमार आदि ने महती योगदान किया। इनकी रचनाओं को देखते हुए यह कोई नहीं कह सकता कि खड़ी बोली सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में ब्रजभाषा से कम समर्थ है। हिंदी में अनेक भाषायी गुणों का समावेश हुआ। अभिव्यजंना की विविधता, बिंबों की लाक्षणिकता, रसात्मक लालित्य छायावाद युग की भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं। हिंदी काव्य में छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद युग (1936 ई.-1946 ई.) प्रयोगवाद युग (1943) आदि आए। इस दौर में खड़ी बोली का काव्य भाषा के रूप में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

पद्य के ही नहीं, गद्य के सन्दर्भ में भी छायावाद युग साहित्यिक खड़ी बोली के विकास का स्वर्ण युग था। कथा साहित्य (उपन्यास व कहानी) में प्रेमचंद, नाटक में जयशंकर प्रसाद, आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जो भाषा-शैलियाँ और मर्यादाएँ स्थापित कीं, उनका अनुसरण आज भी किया जा रहा है। गद्य साहित्य के क्षेत्र में इनके महत्त्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि, गद्य-साहित्य के विभिन्न विधाओं के इतिहास में कालों का नामकरण इनके नाम को केन्द्र में रखकर ही किया गया है। जैसे उपन्यास के इतिहास में प्रेमचंद–पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग, नाटक के इतिहास में प्रसाद–पूर्व युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग, आलोचना के इतिहास में शुक्ल–पूर्व युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग।

खड़ी बोली ही क्यों

वास्तव में 'खड़ीबोली' में प्रयुक्त 'खड़ी' शब्द गुणबोधक विशेषण है और किसी भाषा के नामाकरण में गुण-अवगुण-प्रधान दृष्टिकोण अधिकांशः अन्य भाषा-सापेक्ष्य होती है। अपभ्रंश और उर्दू आदि इसी श्रेणी के नाम हैं, अतएव 'खड़ी' शब्द अन्य भाषा सापेक्ष्य अवश्य है, किंतु इसका मूल खड़ी है अथवा खरी? और इसका प्रथम मूल अर्थ क्या है? इसके लिए शब्द के इतिहास की खोज आवश्यक है। बोली के अर्थ में इस नाम का उल्लेख हमें मध्यमकाल में कहीं नहीं मिलता है। निश्चित रूप से इस शब्द का प्रयोग 19वीं शती के प्रथम दशाब्द में लल्लूजी लाल ने 2 बार, सदल मिश्र ने 2 बार, गिलकाइस्ट ने 6 बार किया है।

लल्लूलाल जी और सदल मिश्र ने 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' नागरी लिपी में लिखा था। इन ग्रंथों में खड़ी बोली ही शब्द मिलता है, जिसका उच्चारण निश्चय ही खड़ी रहा होगा। इस प्रकार हिंदू लेखकों में खड़ीबोली शब्द ही प्रचलित रहा होगा, किंतु रोमनलिपि में 'प्रेमसागर' के मुखपृष्ठ पर खरी ही मुद्रित है। रोमनलिपि में हिंदी के ड़ या डः को त या त से प्रकट करते हैं। इसी से हिंदी 'खड़ी' को खरी लिखा गया है। सम्भवतः विदेशी अंग्रेजों में 'खरी' शब्द ही अधिक प्रचलित हुआ। आज का सामान्य अंग्रेज 'खड़ी' शब्द का उच्चारण खरी के आसपास ही करेगा।

भारतीय ध्वनि विकास में भी र और ड़ ध्वनि में परस्पर विनिमय होता रहा है। सम्भवतः उच्चारण की दृष्टि से 'खड़ी' और 'खरी' उस समय बहुत ही निकट के शब्द थे। इस शब्द के वास्तविक अर्थ ज्ञान के लिए हमें लल्लूलाल जी, सदल मिश्र और गिलक्राइस्ट के उद्धरणों पर पुनः गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। इन उद्धरणों से किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक 'कर्कश', 'कटु' होने के कारण इस बोली को यह नाम दिया गया। यदि उन्नीसवीं शती से बहुत पूर्व ही ब्रजभाषा के विरोध में यह नाम प्रचलित रहा होता तो स्टैण्डर्ड उर्दू, हिंदी, हिंदुस्तानी सबके लिए यह शब्द प्रयुक्त होता, क्योंकि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से तीनों की मूलाधार बोली यही है और 'प्रेमसागर' तथा 'बागो बहार' दोनों को खड़ी बोली का ग्रंथ कहा जाता है, किंतु ऐसा कहीं भी नहीं कहा गया। स्वयं लल्लूलाल जी ने 'लाल चंद्रिका' की भूमिका में अपने ग्रंथों की भाषा के तीन भेद किये हैं-

1. ब्रज
2. खड़ी बोली
3. रेखते की बोली (उर्दू)

यदि खड़ी बोली को ब्रजभाषा सापेक्ष्य समझते तो लल्लूलाल जी अपने ग्रंथों की भाषा के दो ही भाग करते। वास्तव में खड़ी बोली के लिए कर्कश, कटु आदि अर्थ भारतेंदु युग की देन है, जबकि हिंदी कविता के लिए ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रतियोगिता हो रही थी। सम्भवत: ब्रजभाषा पक्षवालों ने उसी युग में 'खडीबोली' का इस प्रकार अर्थ किया होगा। बेली महोदय के अनुसार 'खड़ी' ही मूल शब्द है, 'खरी' नहीं, जो खड़ा का स्त्रीलिंग रूप है। 'खड़ी' शब्द का अर्थ है 'उठी' और जब यह शब्द किसी भाषा के लिए प्रयुक्त होता होगा, तो तब इसका अर्थ 'प्रचलित' रहा होगा। इस प्रकार इसके अनुसार 'खड़ी' का अर्थ है 'परिपक्व', 'प्रचलित' या सुस्थिर। जयशंकर प्रसाद ने अपनी काव्य भाषा में खड़ी बोली का व्यापक रूप से प्रयोग किया है।

चंद्रबली पाण्डे ने अपने लेख 'खड़ी बोली की निरुक्ति' में बोली के परिपक्व, प्रचलित अर्थ का खंडन करते हुए यह प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है कि, खड़ी बोली सदल मिश्र की निजी या उनके यहाँ की प्रचलित बोली नहीं है। किंतु उनका खंडन मान्य नहीं, क्योंकि इस बोली का प्रचलन हिंदवी रूप में अंत:प्रांतीय व्यवहार के लिए बहुत पहले से था, अन्यथा सिंध, गुजरात के स्वामी प्राणनाथ (कुलजम स्वरूप) और लालदास (वीतक), पटियाला के रामप्रसाद निरंजनी (योगवाशिष्ठ), राजस्थान के दौलतराम (पद्मपुराण) और बिहार के सदल मिश्र इस बोली में रचना नहीं कर सकते। अतएव 'खड़ी' शब्द का अर्थ परिपक्व, प्रचलित मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। साथ ही इस बोली को 'खड़ी' (स्टैण्डर्ड केवल वाचार्थ लेकर) इसलिए मानना कि इसकी तुलना में उत्तर प्रदेश की 'ब्रजभाषा' आदि अन्य बोलियाँ 'पड़ी' बोलियाँ थीं, भी न्यायसंगत नहीं है।

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग आरम्भ में उसी भाषा शैली के लिए हुआ, जिसे 1823 ई. के बाद 'हिंदी' कहा गया। किंतु जब प्राचीन या प्रचलित शब्द ने 'खड़ी बोली' का स्थान ले लिया तो खड़ी बोली शब्द उस शैली के लिए बहुत कम प्रयुक्त हुआ, केवल साहित्यिक संदर्भ में कभी कभी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जब यह मत प्रसिद्ध हो गया कि हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी की मूलाधार बोली ब्रजभाषा नहीं वरन् दिल्ली और मेरठ की जनपदीय बोली है, तब

उस बोली का अन्य उपयुक्त नाम प्रचलित ना होने के कारण उसे 'खड़ी बोली' ही कहा जाने लगा। इस प्रकार खड़ी बोली का प्रस्तुत भाषाशास्त्रीय प्रयोग विकसित हुआ। प्राचीन कुरु जनपद से सम्बंध जोड़कर कुछ लोग अब इसे 'कौरवी बोली' भी कहने लगे हैं, किंतु जब तक पूर्णरूप से यह सिद्ध न हो जाए कि इस बोली का विकास उस जनपद में प्रचलित अपभ्रंश से ही हुआ है तब तक इसे कौरवी कहना वैज्ञानिक दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं।

खड़ी बोली बहुल क्षेत्र

खड़ी बोली निम्नलिखित स्थानों के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है- मेरठ, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग, रामपुर और मुरादाबाद। बाँगरू, जाटकी या हरियाणवी एक प्रकार से पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली ही हैं, जो दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार और पटियाला, नाभा, जींद के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है। खड़ी बोली क्षेत्र के पूर्व में ब्रजभाषा, दक्षिण पूर्व में मेवाती, दक्षिण पश्चिम में पश्चिमी राजस्थानी, पश्चिम में पूर्वी पंजाबी और उत्तर में पहाड़ी बोलियों का क्षेत्र है। बोली के प्रधानतः दो रूप मिलते हैं–

1. पूर्वी या पूर्वी खड़ी बोली
2. पश्चिमी या पश्चिमी खड़ी बोली।

साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली के आदि प्रयोग 'गोरखवाणी' तथा बाबा फरीद शररगंज की बानियों में मिलते हैं। मुसलमानों ने इस बोली को अपनाकर इसे अंतःप्रांतीय रूप दिया। निर्गुण संतों ने भी इसके प्रचार में सहयोग दिया। धीरे धीरे इस बोली में व्याकरण के क्षेत्र में तथा शब्द कोश में अन्य भाषाओं का मिश्रण होने लगा, जिससे हिंदी (आधुनिक अर्थ), उर्दू और हिंदुस्तानी का विकास हुआ। आज इस बोली के कुछ लोकगीत भी मिलते हैं, जो प्रकाशित भी हुए हैं।

9

राजस्थानी बोलियाँ

राजस्थानी बोली आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है, जिसका वास्तविक क्षेत्र वर्तमान राजस्थान प्रांत तक ही सीमित न होकर मध्यप्रदेश के कतिपय पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में और पाकिस्तान के वहावलपुर जिले तथा दूसरे पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी सीमा प्रदेशों में भी है।

राजस्थानी बोली का विकास, अधिकांश विद्वानों के मतानुसार, मध्यदेशीय प्राकृत या शौरसेनी से हुआ है, किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इसका विकास अशोककालीन सौराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं, जो 'शौरसेनी या मध्यदेशीय प्राकृत से कुछ विभिन्न थी।' इसी प्राकृत का क्षेत्र गुजरात प्रांत तथा मारवाड़ प्रांत था और यह बोली यहाँ मध्यप्रदेश से न आकर 'उत्तर-भारत के किसी और प्रांत या जनपद से आई थी। इसी आधार पर डॉ. चाटुर्ज्यां गुजराती मारवाड़ी को पश्चिमी पंजाब की लँहदा तथा सिंध की सिंधी से विशेष संबद्ध मानते हैं। वैसे इस प्रदेश की बोलियों को मध्ययुग में शौरसेनी ने काफी प्रभावित किया है। ईसा की तीसरी-चौथी सदियों में स्वात प्रदेश के गुर्जर गुजरात, राजस्थान तथा मालवा में आ बसे थे। पिछले दिनों इन लोगों ने यहाँ कई राज्य स्थापित किए और ये लोग ही वर्तमान अग्निवंशी राजपूतों में बदल गए। गुर्जर जाति की मूल बोलियों ने इस प्रदेश की प्राकृत को पर्याप्त प्रभावित किया है तथा अपभ्रंश के विकास में, खास तौर पर उसके शब्दकोश के विकास में, इस जाति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दंडी ने तो 'अपभ्रंश' भाषा को आभीरादि की ही बोलियाँ माना है। नागर अपभ्रंश के ही

परवर्ती रूप से, जिसे माकोबी जैसे विद्वान् गुर्जर अपभ्रंश या 'वेतांबर अपभ्रंश कहना अधिक ठीक समझते हैं, गुजराती-राजस्थानी का विकास हुआ है। गुजराती मूलतः राजस्थानी (पश्चिमी राजस्थानी) की ही एक विभाषा थी, जो सोलहवीं सदी तक अविभक्त थी, किंतु बाद में चलकर सांस्-तिक, प्रांतीय तथा साहित्यिक कारणों से स्वतंत्र भाषा बन बैठी। पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी जहाँ गुजराती और सिंधी के अधिक निकट है वहाँ पूर्वी राजस्थानी (जैपुरी हाड़ौती) ब्रजभाषा (पश्चिमी हिंदी) से पर्याप्त रूप में प्रभावित है। फिर भी पूर्वी राजस्थानी में भी स्पष्ट भेदक तत्त्व मौजूद हैं, जो इसे हिंदी की विभाषा मानने से इंकार करते हैं। राजस्थानी भाषा की भाषाशास्त्रीय स्थिति रिहारी तथा पहाड़ी की तरह उन भाषाओं में है, जिन्हें हिंदी की विभाषा नहीं माना जा सकता, किंतु हिंदी के सांस्-तिक तथा साहित्यिक इतिहास के साथ इसका गठबंधन इतना दृढ़ हो गया है कि, साहित्यिक दृष्टि से राजस्थानी भाषा की स्वतंत्र सत्ता न रह पाई और यह उसकी विभाषासी बन गई।

साहित्य

राजस्थानी में पर्याप्त प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। जैन कवि रामसिंह तथा हेमचंद्राचार्य के दोहे राजस्थानी गुजराती के अपभ्रंश कालीन रूप का परिचय देते हैं। इसके बाद भी पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में जैन कवियों के फागु, रास तथा चर्चरी काव्यों के अतिरिक्त अनेक गद्य -तियाँ उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध गुजराती काव्य पद्मनाभकविकृत 'कान्हडदेप्रबंध' वस्तुतः पुरानी पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी की ही -ति है। इसी तरह 'प्रा-तपैंगलम्' के अधिकांश छंदों की भाषा पूर्वी राजस्थानी की भाषा-प्र-ति का संकेत करती है। यदि राजस्थानी की इन साहित्यिक -तियों को अलग रख दिया जाए तो हिंदी और गुजराती के साहित्यिक इतिहास को मध्ययुग से ही शुरु करना पड़ेगा। पुरानी राजस्थानी की पश्चिमी विभाषा का वैज्ञानिक अध्ययन डॉ. एल. पी. तेस्सितोरी ने 'इंडियन एंटिववेरी' (1914-16) में प्रस्तुत किया था, जो आज भी राजस्थानी भाषाशास्त्र का अकेला प्रामाणिक ग्रंथ है। हिंदी में डॉ. चाटुर्ज्यां की 'राजस्थानी भाषा' (सूर्यमल्ल भाषणों) के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा के विषय में कोई प्रामाणिक भाषाशास्त्रीय -ति उपलब्ध नहीं है। वैसे दो तीन पुस्तकें और भी हैं, पर उनका दृष्टिकोण परिचयात्मक या साहित्यिक है, शुद्ध भाषाशास्त्रीय नहीं। ग्रियर्सन की लिंग्विस्टिक सर्वे में राजस्थानी बोलियों का विस्तृत परिचय अवश्य मिलता है।

पश्चिमी राजस्थानी का मध्ययुगीन साहित्य समृद्ध है। राजधानी की ही एक -त्रिम साहित्यिक शैली डिंगल है, जिसमें पर्याप्त चारण-साहित्य उपलब्ध है। 'ढोला मा डिग्री रा दोहा जैसे लोक-काव्यों ने और 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' जैसी अलंकृत काव्य -तियों ने राजस्थानी की श्रीवृद्धि में योग दिया है। भाषागत विकेंद्रीकरण की नीति ने राजस्थानी भाषाभाषी जनता में भी भाषा संबंधी चेतना पैदा कर दी है और इधर राजस्थानी में आधुनिक साहित्यिक रचनाएँ होने लगी है। राजस्थानी नागरी लिपि में लिखी जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ के पुराने लोगों में अब भी एक भिन्न लिपि प्रचलित है, जिसे 'बाण्याँ वाटी' कहा जाता है। इस लिपि में प्राय: मात्र-चिन्ह नहीं दिए जाते। राजस्थानी बनिये आज भी बहीखातों में इस लिपि का प्रयोग करते हैं। राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप डिंगल है और डिंगल साहित्य एक समृध साहित्य है डिंगल साहित्य में अनेको ग्रन्थ है इसका विकास 7-8 वीं सदी से शुरु हुआ था डिंगल को चारण सहित भी कहते है क्योंकि मध्य काल में मुख्यत: इसके रचना कार चारण ही थे।

राजस्थानी की बोलियाँ

डॉ. ग्रियर्सन ने राजस्थानी की पाँच बोलियाँ मानी हैं-

(1) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी),

(2) उत्तर पूर्वी राजस्थानी (मेवाती अहीरवाटी),

(3) मध्यपूर्वी (या पूर्वी) राजस्थानी (ढूँढाडी हाड़ौती),

(4) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी (मालवी),

(5) दक्षिणी राजस्थानी (निमाड़ी)। राजस्थान में बंजारा भाषा एक जैसी है ग्रियर्सन ने भीली और खानदेशी को स्वतंत्र भाषा वर्ग में माना है, किंतु डॉ. चाटुर्ज्या इन्हें 'राजस्थानी वर्ग' के ही अंतर्गत रखना चाहेंते हैं, जो अधिक समीचीन जान पड़ता है। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा आसपास की भीली बोलियों और खानदेशी की व्याकरणिक संघटना राजस्थानी से विशेष भिन्न नहीं है। वस्तुत: ये राजस्थानी के वे रूप हैं, जो क्रमश: गुजराती और मराठी तत्त्वों से मिश्रित हैं। राजस्थानी वर्ग के अंतर्गत पाकिस्तान तथा कश्मीर के सीमांत प्रदेश की गूजरी बोली और तमिलनाडु की सौराष्ट्र बोली भी आती है, जो पूर्वी राजस्थानी से विशेष संबद्ध जान पड़ती है। डॉ. चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन के राजस्थानी के पाँच बोली-भेदों को नहीं माना हे। वे मारवाड़ी और ढूँढाडी हाड़ौती को ही 'राजस्थानी' संज्ञा

देना ठीक समझते हैं। उनके अनुसार राजस्थानी के दो ही वर्ग है–

(1) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी),

(2) पूर्वी राजस्थानी (जैपुरी हाड़ौती)।

मेवाती, मालवी और निमाड़ी को वे पश्चिमी हिंदी की ही विभाषा मानने के पक्ष में हैं, यद्यपि इस संबंध में वे अंतिम निर्णय नहीं देते।

राजस्थानी भाषा की सामान्य विशेषताएँ

राजस्थानी भाषा की सामान्य विशेषताएँ निम्न हैं–

(1) राजस्थानी में 'ण', 'ड़' और (मराठी) 'ळ ' तीन विशिष्ट ध्वनियाँ पाई जाती हैं।

(2) राजस्थानी तद्भव शब्दों में मूल संस्कृत 'अ' ध्वनि कई स्थानों पर 'इ' तथा 'इ' 'उ' के रूप में परिवर्तित होती देखी जाती हैं-मिनक' (मनुष्य), हरण (हरिण), कष्मार (कुंभकार)।

(3) मेवाड़ी और मालवी में 'च, छ, ज, झ' का उच्चारण भीली और मराठी की तरह क्रमशः 'त्स, स, द्ज, ज' की तरह पाया जात है।

(4) संस्कृत हिंदी पदादि 'स-ध्वनि' पूर्वी राजस्थानी में तो सुरक्षित है, किंतु मेवाड़ी-मालवी-मारवाड़ी में अघोष 'हठ' हो जाती है। हि. सास, जैपुरी-हाडौती 'सासू', मेवाड़ी-मारवाड़ी।

(5) पदमध्यगत हिंदी शुद्ध प्राणध्वनि या महाप्राण ध्वनि की प्राणता राजस्थानी में प्रायः पदादि व्यंजन में अंतर्भुक्त हो जाती है-हिं. कंधा, रा. खाँदोय हि. पढना, रा. फढ-बो।

(6) राजस्थानी के सबल पुलिंग शब्द हिंदी की तरह आकारांत न होकर ओकारांत है –हि. घोड़ा, रा. घोड़ी, हिं. गधा, रा. गद्दो, हिं. मोटा, रा. मोटो।

(7) पश्चिमी राजस्थानी में संबंध कारक के परसर्ग 'रो-रा-री' हैं, किंतु पूर्वी राजस्थानी में ये हिंदी की तरह 'को-का-की' हैं।

(8) जैपुरी-हाड़ौती में 'नै' परसर्ग का प्रयोग कर्मवाच्य भूतकालिक कर्ता के अतिरिक्त चेतन कर्म तथा संप्रदान के रूप में भी पाया जाता है-छोरा नै छोरी मारी' (लड़के ने लड़की मारी)। 'म्हूँ छोरा नै मारस्यूँ' (मैं लड़के को पीटूँगा-चेतन कर्म)। 'यो लाडू छोरा नै दे दो' (यह लड्डू लड़के को दे दो-संप्रदान)।

(9) राजस्थानी में उत्तम पुरुष के श्रोतृ-सापेक्ष 'आपाँ-आपण' ओर श्रोतृ निरपेक्ष 'महे-म्हें-मे' दुहरे रूप पाए जाते हैं।

मारवाड़ी बोली

राजस्थान के पश्चिमी भाग में मुख्य रुप से मारवाड़ी बोली सर्वाधिक प्रयुक्त की जाती है। यह जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावटी में बोली जाती है। यह शुद्ध रुप से जोधपुर क्षेत्र की बोली है। बाड़मेर, पाली, नागौर और जालौर जिलों में इस बोली का व्यापक प्रभाव है।

मारवाड़ी बोली की कई उप-बोलियाँ भी हैं जिनमें ठटकी, थाली, बीकानेरी, बांगड़ी, शेखावटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, सिरोही, गौड़वाडी, नागौरी, देवड़ावाटी आदि प्रमुख हैं। साहित्यिक मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। डिंगल साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न बोली है।

मेवाड़ी बोली

यह बोली दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर, भीलवाड़ा और चित्तौड़गढ़ जिलों में मुख्य रुप से बोली जाती है। इस बोली में मारवाड़ी के अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। केवल ए और औ की ध्वनि के शब्द अधिक प्रयुक्त होते हैं।

बांगड़ी बोली

यह बोली डूंगरपूर व बांसवाड़ा तथा दक्षिणी-पश्चिमी उदयपुर के पहाड़ी क्षेत्रों में बोली जाती हैं। गुजरात की सीमा के समीप के क्षेत्रों में गुजराती-बाँगड़ी बोली का अधिक प्रचलन है।

❐❐❐